श्री कल्याण ग्रंथमाला पुष्प नं.

महाकवि रत्नाकरविरचित

भरतेश-वैभव

द्वितीय भाग.

दिग्विजय.

संपादक व अनुवादक,

विद्यावाचस्पति-न्याय-काव्यतीर्थ

पं. वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री.

(संपादक-जैनबोधक, मंत्री मुंबई परीक्षालय, श्री कुंथुसागर ग्रंथमाला आदि, कल्याणकारक (वैद्यक), दानशासन, शतकत्रय, कषायजयभावना, आदि ग्रंथोंके संपादक)

द्वितीयावृत्ति	वीर संवत् २४७६	मूल्य
१०००	सन् १९५०	पांच रूपये

✳ संपादकीय ✳

भरतेशवैभवके चारों भाग प्रकाशित होचुके हैं। महाकवि रत्नाकरकी इस सुंदरकृतिको साहित्यप्रेमी व स्वाध्यायप्रेमी दोनों क्षेत्रके बंधुवोंने अपनाया है। इसलिए इस वैभवने सबके चित्तको आकर्षित किया है यह सत्य है। प्रथम भाग और द्वितीय भागकी दो-दो आवृत्तियां निकली। द्वितीय भागकी प्रतियां वर्ष दो वर्ष पहिले ही समाप्त होगई थीं। परंतु अनेक असुविधावोंके कारण हम प्रकाशित नहीं कर सके। अब यह द्वितीयावृत्ति प्रकाशित कररहे हैं।

ग्रंथ व ग्रंथकर्ताके संबंधमें हम प्रथम भागके साथ विस्तृत विवेचन कर चुके हैं, अतएव इस भागमें अधिक नहीं लिखा है। स्त्रीरत्न संभोगसंधिके बादका एक प्रकरण अत्यधिक वर्णनात्मक होनेसे एवं बहुत ज्यादा उपयोगी न होनेसे नहीं लिया गया है। अत्यधिक श्रृंगार विषयक वर्णन भी हमने नहीं लिया है।

ग्रंथकर्ताने इस ग्रंथको भोगविजय, दिग्विजय, योगविजय, मोक्षविजय, और अर्ककीर्ति विजयके रूपमें विभक्तकर पंचकल्याण अभिधान किया है। प्रथम कल्याण भोगविजय है। यह दिग्विजय द्वितीयकल्याण है। आगे योगविजय, अर्ककीर्तिविजय और मोक्षविजय ये तीन कल्याण तीसरे व चौथे भागमें हैं।

इन पंच कल्याणोंके रूपमें विभक्त भरतेश्वरके अभ्युदयका अध्ययन कर जो भव्य अपनी आत्मजागृतिकी ओर अग्रसर होंगे वे अवश्य पंचकल्याणके भागी बनेंगे। इसमें कोई संदेह नहीं है। इसमें यदि कोई त्रुटि रही हो तो उसे विद्वद्गण सुधार लेवें व वह हमारा दोष समझें व कोई इसमें अच्छापना नजर आवे तो उसका श्रेय ग्रंथकर्ताको देवें यही निवेदन है। इति.

सोलापुर
१-८-१९५०

विनीत
वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री.
(विद्यावाचस्पति)

अनुक्रमणिका.

—=*=—

दिग्विजय.

भरतेश-वैभव

द्वितीय-भाग।

दिग्विजय।

नवरात्रि संधि।

करोडों सूर्य और चंद्रके किरण के समान प्रकाशमान उज्वल ज्ञानको धारण करनेवाले देवेंद्र चक्रवर्ति आदिसे पूज्य भगवान् आदिनाथ स्वामी हमारी रक्षा करें।

सज्जनोंके अधिपति सुज्ञान सूर्य, तीन लोकको आश्चर्यदायक एवं अष्टकर्म रूपी अष्ट दिशावोंको जीतकर (दिग्विजय) अखण्ड साम्राज्य को प्राप्त करनेवाले भगवान् सिद्ध परमात्मा हमें सुबुद्धि प्रदान करें।

कृतयुग के आदि में आदि तीर्थंकरके आदिपुत्र आदि (प्रथम) चक्रवर्ती भरत बहुत आनंदके साथ राज्यका पालन कर रहे हैं। उनके राज्य में किसी भी प्रजाको दुःख नहीं, चिंता नहीं, प्रजा अत्यंत सुखी है। रात्रिंदिन चक्रवर्ती भरतकी शुभ कामना करती है कि हमारे दयालु राजा भरत चिरकालतक राज्य करें। उनको पूर्ण सुख मिले।

भरतजीके मनमें भी कोई प्रमाद नहीं, बडे भारी राज्यभारको अपने शिरपर धारण किया है इस बातकी जरा भी उन्हे चिंता नहीं। किसी बातकी अभिलषा नहीं। प्रजाहित में आलस्य नहीं। सुत्राम (देवेंद्र) जिस प्रकार क्षेमके साथ स्वर्गका पालन करते हैं भरतेश उसी प्रकार प्रेम व क्षेमके साथ इस पृथ्वीको पालन कर रहे हैं। इस प्रकार बहुत आनंद व उल्लास के साथ भरत राज्यको पालन करते हुए आनंद से कालव्यतीत कर रहे हैं।

एक दिनकी बात है कि भरतजी आनंद से अपने भवन में विराजे हुए हैं। इतने में अकस्मात् बुद्धिसागर मंत्री उनके पास आये। उन्होंने

निम्न लिखित प्रार्थना भरतसे की जिससे भरतजी का आनंद द्विगुणित हुआ।

स्वामिन्! अब वर्षाकाल की समाप्ति होगई है, अब सेनाप्रयाणके लिए योग्य समय है। इस लिए आलस्य के परिहारके लिए दिग्विजय का विचार करना अच्छा होगा।

हे अरितिमिरसूर्य! शस्त्रालयमें भाल सूर्यके समान चक्ररत्नका उदय हुआ है। अब आप प्रस्थानका विचार करें।

राजन्! आप दुष्टोंको मर्दन करने में समर्थ हैं। शिष्ट ब्राह्मण, तपस्वी, व सदाचार पोषक धर्मकी रक्षा भी आपके द्वारा ही होती है। ऐसी अवस्थामें अब इस भूमिकी प्रदक्षिणा देकर सर्व राजाओंको वशमें करें।

स्वामिन्! आप जंबूद्वीपके दक्षिणभाग में सूर्य के समान हैं। अनेक द्वीपोंमें मदोन्मत्त होकर रहनेवाले राजसमूहोंको अपने चरण रजस्पर्श से पवित्र करें।

राजन्! गिरिदुर्ग, जलदुर्ग और वनदुर्ग में जो अहंकारी राजा हैं उनके अभिमानको मर्दनकर भरतषट्खण्डको वशमें करें जिससे आपकी भरत नाम सार्थक हो जायगा।

जहां जहां उत्तम पदार्थ हैं वह सब आपको भेंट करनेके लिये लोग प्रतीक्षा देखरहे हैं। उन सबकी इच्छाको पूर्ति करते हुए आप देश देशकी शोभा देखें।

दूर दूर देशके जो राजा हैं उनके घरमें उत्पन्न कन्यारत्नोंकी भेंटको ग्रहणकर लीलाके साथ विहार करनेका विचार करें। अब देरी क्यों करते हैं।

राजन्! छहखण्डकी प्रजा आपके दर्शनके लिये तरस रही है। उनको आपके रूपको दिखाकर कृतार्थ करें।

जिस प्रकार वनमें संचार करके वसंत शोभाको बढाता है उसी प्रकार आप अपने विहारसे इस भूतलकी शोभाको बढावें।

बुद्धिसागर मंत्रीके समयोचित निवेदनपर राजाको बडा हर्ष हुआ। मंत्रीके कर्तव्यपालन के प्रति प्रसन्न होकर भरतजीने बुद्धिसागरको अनेक

वस्त्र व आभूषणोंको भेटमें दिये। और यह भी आज्ञा दी कि दिग्विजय प्रयाणकी तैयारी करो। सब लोगोंको इसकी सूचना दो। बुद्धिसागरने प्रार्थना की स्वामिन्! नौ दिनतक जिनेंद्र भगवंतकी पूजा वगैरह उत्सव बडे आनंदके साथ कराकर दशमीके रोज यहांसे प्रस्थानका प्रबंध करूंगा।

इस प्रकार निवेदनकर मंत्री वहांसे अपने कार्यमें चला गया।

अयोध्यानगरके जिनमंदिरोंकी मंत्रीकी आज्ञासे सजावट होनेलगी। बजारोंमें भी यत्र तत्र उत्सवकी तैयारी होरही है। सब जगह अब दिग्विजय प्रयाण की चर्चा चलरही है।

मंदिरोंकी ध्वजपताका आकाश प्रदेशको भी चुंबन कररही थी तब उस नगरका नाम साकेतपुर सार्थक बन गया।

अयोध्यानगरके बडे २ राजमार्ग अत्यंत स्वच्छ किये गये थे एवं सुगंधित गुलाबजल आदिसे उनपर छिडकाव होनेसे सर्वत्र सुगंध ही सुगंध फैला था, उस सुगंध के मारे भ्रमर गुंजार कर रहे थे।

अयोध्या नगरीमें अगणित जिनमंदिर थे, उनमें कहीं होम चल रहा है। कहीं महाभिषेक चल रहा है। कहीं मुनिदान चल रहा है। इस प्रकार उस समय वह पुण्यनगर बन गया था।

किसी मंदिरमें वज्रपंजराराधना कर रहे हैं। कहीं कलिकुण्ड यंत्राराधना हो रही है। कहीं गणधरवलययज्ञ और मृत्यंजय यज्ञ चल रहा है।

इतना ही क्यों? कितने ही मंदिरोंमें बलसिद्धि जयसिद्धि व सर्व रक्षा नामक अनेक यज्ञ बहुत विधिपूर्वक हो रहे हैं।

नित्य ही अनेक धर्मप्रभावनाके कार्य व नित्य ही रथयात्रा महोत्सव महाभिषेक, पूजा, चतुस्संघसंतर्पण आदि कार्य बुद्धिसागर मंत्री की प्रेरणासे हो रहे हैं।

जिनपूजापूर्वक नौ दिन तक बराबर चक्ररत्नकी भी पूजा हुई। साथमें सेनाके अन्य योद्धावोंने भी अपने २ शस्त्र अस्त्रोंकी अनुरागसे पूजा की।

गोमुख यक्ष व चक्रेश्वरीयक्षिणीकी पूजा कर घोडेको रक्षक यंत्र का बंधन किया। घोडेको यक्षदेवताके नामसे कहनेकी पद्धति है। वह इसलिए

कि उस समय बुद्धिसागरनें यक्ष व यक्षिणीकी पूजा कर उसको रक्षित किया था। इसी प्रकार हाथी, रथ वगैरेहका श्रृंगार कर बहुत वैभव किया। सारांशतः महानवमीके नौ दिनके उत्सवको मंत्रीनें जिस प्रकार मनाया उससे नरलोकको आश्चर्य हुआ।

नवमीके दिन की बात है। दिनमें भरतजी नगरके बीचके जिनमंदिरमें जाकर पूजा महोत्सव देख आये हैं। रात्रिके समय दरबारमें आकर विराजमान हुए।

भरतजी मस्तकपर रत्नकिरीट को धारण किये हुए हैं। उसके प्रकाशसे रात्रि भी दिनके समान मालुम होरही है।

भरतजी बीचके सिंहासनपर विराजे हुए हैं। इधर उधरसे मंत्री, सेनापती, सामंत वगैरे बैठे हुए हैं। सामने अगणित प्रजा बैठी हुई है। इनके बीचमें अनेक विद्वान् कवि, गायक वगैरे भी उपस्थित हैं।

राजा भरतको देखनेके लिये ही लोग तरसते हैं। इसलिये झुंड के झुंड आकर वहां जम रहे हैं।

काकीनी रत्नको एक खंभेके सहारे खडा कर दिया। एक कोस तक बराबर अंधकार दूर होकर प्रकाश हो गया। इतना ही क्यों? अयोध्या नगरीका विस्तार १२ कोसका है। अयोध्या नगरीमें सब जगह प्रकाश ही प्रकाश हुआ।

उस विशाल दरबारमें कहीं डोंबरलोग, कहीं गानेवाले, कहीं ऐंद्रजाली लोग, कहीं महेंद्रजाली, इत्यादि अनेक तरह के लोग अपनी-२ कला प्रदर्शन करनेकी इच्छासे वहांपर एकत्रित हुए थे।

जिसप्रकार सूर्यका किरण जिधर भी पडे उधर ही कमल खिल जाता है उसी प्रकार राजा जिधर भी देखें उसी तरफ विनोद, खेल व कलाको लोग बता रहे हैं।

कितने ही पहिलवान सामनेसे कुस्ती खेल रहे हैं।

एक विस्मयकारने राजाके चित्तको आकर्षण करते हुए एक बीजको वहांपर बोया। तत्क्षण ही वह बीज भूज (वृक्ष) होगया, उसमें कच्चे

फल लग गये। इतना ही नहीं, उसी समय वे पक भी गये। सब दरबारियोंको उसे देखकर आश्चर्य हुआ।

एक मंत्रकार और सामने आया, आकर एक घासके टुकडे को मंत्रितकर रखा। बहुतसे सर्प उस घाससे निकलकर इधर उधर भागने लगे. एक इंद्रजाली सामने आकर प्रार्थना करने लगा कि दयानिधान! इंद्रावतारको आप देखें। उसी समय उसने अपनी कलाके द्वारा देवेंद्रके अवतारको बतलाया।

एक महेंद्रजालीने समुद्रका दृश्य बतलाया। इसी प्रकार गंधर्व लोग अपनी नृत्यकलाको बतला रहे थे।

उस दिन अयोध्यानगरके प्रत्येक गलीमें जिधर देखें उधर आनंद ही आनंद हो रहा है। हाथी घोडा व रथोंका शृंगार कर राज मार्गोंमें बडे ठाठबाटके साथ जुलुस निकाली जारही है।

पट्टके हाथीपर भगवान् जिनेंद्रकी प्रतिमा विराजमान कर विहारोत्सव मनाया जारहा है।

उस हाथीका नाम विजयपर्वत है। उसपर जिनेंद्र भगवंतकी प्रतिमा अत्यंत शोभाको प्राप्त होरही है।

राजाने दूरसे ही हाथीपर जिनेंद्रबिंबको देखा। उसी क्षण भक्तीसे उठकर खडे हुए।

जब सब हाथियोंने भरतका दर्शन किया तब कुछ झुककर व अपनी सोंडको उठाकर चक्रवर्तीको प्रणाम किया।

सम्राटके राणियोंने भी दरवाजेके अंदरसे ही. त्रिलोकीनाथ भगवंतका दर्शन किया एवं बहुत भक्तिसे आरती उतारी।

रथ आगे चला। चंद्रमार्ग, सूर्य मार्ग आदिपर भी भगवानूका रथ विहार होरहा था। इस प्रकार प्रतिपदासे लेकर नवमीतक अनेक प्रकारसे धर्मप्रभावना होरही थी।

प्रतिदिन भिन्न भिन्न प्रकारके शृंगार, शोभा, प्रभावना व आदि लोगोंको देखनेमें आते थे।

कहीं शांतिकक्रिया, कहीं दान, कहीं त्याग, कहीं वैयावृत्य आदि शुभकार्योंसे सब अपना समय व्यतीत कर रहे हैं।

कहीं राजावोंका सन्मान होरहा है। कहीं विद्वानोंका आदर हो रहा है। इस प्रकार नौ दिनतक सम्राट्ने बहुत आनंदके साथ काल व्यतीत किया।

नवमीके दिन दरबार बरखास्त करनेके लिए अब कुछ ही समय अवशेष है इतने में एक सुंदर व दीर्घकाय भद्रपुरुषने दरबार में पदार्पण किया। सबसे पहिले चक्रवर्तीके सामने कुछ भेंट समर्पणकर उसने साष्टांग प्रणाम किया। भरतजीने भी उसे योग्य स्थानमें बैठनेके लिए अनुमति दी।

यह अभ्यागत कौन है? भरतजीके लघुभ्राता युवराज बाहुबली के हितैषी मंत्री प्रणयचंद्र है। जैसा उसका नाम है वैसा ही गुण है, अतिविवेकी है, दूरदर्शी है।

भरतजी कुछ समय इधर उधर की बातचीतकर उससे पूछने लगे कि प्रणयचंद्र! मेरे भाई बाहुबली कैसा है? और किसप्रकार आनंदसे अपने समयको व्यतीत करता है? उसकी दिनचर्या क्या है। एंव हमारे दिग्विजय प्रयाणके समाचारको सुननेके बाद क्या बोला? वह कुशल तो है?

भरतजीके प्रश्नको सुनते ही प्रणयचंद्र उठकर खडा हुआ और बहुत विनयके साथ हाथ जोडकर कहने लगा कि राजन्! आपकी कृपासे आपके सहोदर कुशल हैं। उन्हे कोई चिंता नहीं और कोई बाधा भी नहीं। सदा वे सुखसे ही अपना काल व्यतीत कर रहे हैं। क्यों कि वे भी तो भगवान् आदिनाथके पुत्र हैं न?

स्वामिन्! कभी २ काव्य, नाटक का श्रवण व अवलोकन कर आनंद करते हैं, कभी नृत्य देखते हैं, और कभी कामिनियोंके दरबारमें कालव्ययकर हर्ष प्राप्त करते हैं।

कभी २ वे शृंगार वनमें क्रीडा करनेके लिये जाते हैं। कभी २ महलमें अपनी प्रिय राणियोंके साथ २ बैठकर ठण्ड हवा खाते हुए कोकिल पक्षी, भ्रमर, तोता आदिके विनोदको देखकर आनंदित होते हैं। भोगोंको भोगते हैं परंतु उसमें एकदम मग्न न होकर योग का भी अभ्यास

करते हैं। राजन्! वे भी तो आपके सहोदर हैं न! यही हमारे राजाकी दिनचर्या है। अस्तु, आपके दिग्विजय प्रयाणकी वार्ता उन्होंने सुनी है। उसे सुनकर उन्हे बड़ी प्रसन्नता हुई है।

इस संबंधमें बोलते हुए उन्होने हमसे कहा है कि "मेरे बड़े भाईने जो दिग्विजयका विचार किया है यह स्तुत्य है। उनकी वीरताके लिये यह योग्य कार्य है। उनका सामना करनेवाले इस पृथ्वीमें कौन है?"

साथमें अभिमान के साथ उन्होने यह भी कहा कि "इस पृथ्वी में देवोंमें पिताजी, राजावोंमें मेरे भ्राताजीकी बराबरी करनेवाले कौन है। हम लोग तो उन दोनोंको स्मरण करते हुए जीते हैं" इस प्रकार प्रणयचंद्र मंत्रीनें कहा। और यह भी कहने लगा कि स्वामिन्! आपके सहोदर इस अवसरपर स्वयं आशिर्वाद लेनेके लिये आनेवाले थे। परंतु वे अनिवार्य कारणसे आ नहीं सके। कारण कि वे एक शास्त्रको सुननेमें दत्तचित्त हैं। आचार्य महाराज आत्मप्रवाद नामक शास्त्रका प्रवचन कर रहे हैं। उसे आपका सहोदर सुन रहे हैं। बहुत संभव है कि कल परसों तक वह ग्रंथ पूर्ण हो जायगा।

स्वामिन्! और एक गूढार्थ आपसे निवेदन करनेका है। उसे भी सुननेकी कृपा करें।

"गूढार्थ" शब्दको सुनते ही बुद्धिमान् लोग वहांसे उठकर चले गये। वहां एकांत होगया।

प्रजा, परिवार, सामंत, मांडलीक, मित्र, विद्वान्, नृत्यकार आदि सबके सब क्षणमात्रमें जब वहांसे चले गये तब प्रणयचंद्र बहुत धीरे धीरे कुछ कहने लगा। बुद्धिसागर मंत्री पासमें ही बैठा है।

स्वामिन्! "विशेष कोई बात नहीं आपकी मातुश्री बाहुमाता यशस्वती महादेवीको को पौदनापुरमें ले जानेकी इच्छा आपके सहोदरने प्रदर्शित की है। बहुत देरी नहीं है, कल या परसों तक शास्त्रकी समाप्ति हो जायगी। उसके बाद वे स्वयं ही यहां पधारकर मातुश्रीको पौदनापुरमे ले जायेंगे, इस बातकी सूचना देनेके लिए उन्होंने मुझे यहां भेजा है।

राजन् ! जब तक आप दिग्वजय कर वापिस लौटेंगे तबतक माता यशस्वती देवीको अपने नगरमें ले जानेका उन्होने विचार किया है, मातासे पुत्र वियुक्त रह सकता है क्या ?

प्रणयचंद्रके इस प्रकारके वचनको सुनकर चक्रवर्तीने कहा कि पुत्रके घरमें माताका जाना, माताको पुत्र बुला ले जाना कोई नई बात है क्या ? ऐसी अवस्थामें इस संबंधमें मुझे पूछने की जरूरत क्या है ? मैं भी मातुश्री के लिये पुत्र हूं । वह भी पुत्र है इसलिये उसे माताजी को लेजाने का अधिकार है । मै माताकी आज्ञाके अनुवर्ती हूं । मातुश्रीकी आज्ञाका सदा पालन करना मैं अपना धर्म समझता हूं । पूज्य माता ही मुझे हमेशा सन्मार्गका उपदेश देती रहती है । शिक्षा देती है, मैं माताजीको कुछ भी कह नहीं सकता । भाई की इच्छा हो तो वह लेजावे । मैं इसपर क्या कहूं ?

इसे सुनकर प्रणयचंद्रने फिर कहा कि स्वामिन् ! आपने जैसा विचार प्रकट किया उसी प्रकार आपके सहोदरने भी कहा था कि इस कामके लिये पूछने की क्या जरूरत है ? परंतु उनसे मैने निवेदन किया कि यह ठीक नहीं है। सूचना तो जरूर देनी ही चाहिये। इसलिये खासकर आपको सूचित करनेके लिये मैं आया हूं ।

भरतजी प्रणयचंद्रकी बात सुनकर मन मनमें ही कुछ हंसे व कहने लगे कि प्रणयचंन्द्र ! तुम बहुत बुद्धिमान् हो । तुम्हारे कर्तव्यपर मुझे बडी प्रसन्नता हुई । तुम बाहुबली के पासमें रहो ऐसा कहकर उसको उत्तम वस्त्र आभूषणोंको दिया । प्रणयचन्द्र भी भरतजी को प्रणाम कर वहांसे निकल गया ।

प्रणयचन्द्र के बाहर जानेके बाद राजा भरत बाहुबलीकी वृत्तीपर मन मनमें ही कुछ हंसे । फिर प्रकटरूपसे बुद्धिसागरसे कहने लगे कि बुद्धिसागर ! देखा ? मेरे भाईका उद्दण्डता को तुमने देखली न मनमें कुछ मायाचार रखकर यहां आना नहीं चाहता है । इसीलिये बहानाबाजी [illegible] इसे भेजा है, वह भी शास्त्र सुननेका बहाना है । क्या ही अच्छा

उपाय है। उसे मैं कामदेव हूं इस बातका अभिमान है। वह यह समझता है कि उसके बराबरी करनेवाले कोई नहीं है। इसीको हुण्डावसर्पिणीका प्रभाव कहते हैं।

प्रणयचंद्रने असली बातको छिपाकर रंग चढाते हुए बातचीत की। मैं इस बातको अच्छी तरह जानता हूं कि भाई बाहुबली मेरे प्रति भाईके नाते भक्ति नहीं करेगा, उसकी मर्जी, मैं क्या करूं ?

बाहुबली तो युवराज है। इसलिये उसे इतना अभिमान है। परंतु उससे छोटे भाई क्या कम हैं। जिसप्रकार सूर्यको देखनेपर नीलकमल अपने मुखको छिपा लेता है उसी प्रकार मेरे साथ उनका व्यवहार है।

पूज्य पिताजी व माताजीके प्रति मेरे भाईयोंको अत्यधिक भक्ति है। परंतु मुझे देखनेपर नाक मुंह सिकोडलेते हैं। क्या परब्रम्ह श्री आदि-नाथके पुत्रोंका यह व्यवहार उचित है ?

मैं हमेशा इन लोगोंके साथ अच्छा व्यवहार करता हूं। उनके चित्तको दुखानेके लिये मैंने कभी भी प्रयत्न नहीं किया। परंतु ये मात्र मुझसे भेद रखते हैं। न मालुम मैंने इनको क्या किया ? ये इस प्रकार मनमें मेरे प्रति विरोध क्यों रखते हैं। मंत्री ! क्या तुम नहीं जानते हो ! बोलो तो सही !

बुद्धिसागर ! जिनेंद्रका शपथ है। मैने तुमसे ही मेरे भाईयोंके व्यवहार को कहा है। और किसीसे भी आजतक नहीं कहा है। यहांतक कि पूज्य मातुश्री भी अपने पुत्रोंकी हालत जानकर दुःखी होगी इस भयसे उन लोगोंकी प्रसंशा ही करता आरहा हूं।

छह भाई दीक्षा लेकर मुनि होगये। वे मेरे भाई होनेपर भी अब गुरु बनगये। परंतु इनको तो देखो! इनको अनुज कहूं या दनुज कहूं ! समझमें नहीं आता।

स्वामिन् ! बुद्धिसागर बोले। आप जरा सहन करें, वे आपसे छोटे हैं। आपके साथ उन्होने ऐसा व्यवहार किया तो आपका क्या बिगडा है ? वे मूर्ख हैं। आपके साथ प्रेमसे रहनेके लिये अत्यधिक पुण्यकी जरूरत है।

तीन लोकमें जितनेभर बुद्धिमान हैं, विवेकी हैं, वे सब तुम्हारे

चातुर्यको देखकर प्रसन्न होते हैं । यदि छह कम सौ मनुष्य तुम्हारे साथ नाक भौं सिकोडकर रहे तो क्या बिगडता है ?

राजन् ! सूर्यकी उन्नतिको देखकर जगत्को हर्ष होता है । यदि नीलकमल मुकुलित होवें तो उसमें सूर्यका क्या दोष है ?

यह भी जाने दो ! असली बात तो और ही है । तुम्हारे भाई उद्धत नहीं हैं । मैं उनको अच्छी तरह जानता हूं । वे तुम्हारे पासमें आनेके लिये डरते हैं । क्या तुह्मारी गंभीरता कोई सामान्य है ?

राजन् ! इस जवानीमें अगणित संपत्तिको पाकर न्यायनीतीकी मर्यादाको रक्षण करनेके लिये तुम ही समर्थ होगये हो । तुम्हारे भाईयोंको यह कहांसे आसकता है ? अभीतक उन्होने उसको नहीं सीखा है । इसलिये वे तुम्हारे पासमें आनेके लिये शर्माते है ।

राजन् ! तुम्हारे जितने भी सहोदर हैं वे अभी छोटे हैं । उनकी उमर भी कुछ अधिक नही हैं । ऐसी अवस्थामें वे अभी बचपनको नही भूले हैं । इसीलिये ही वे बाहुबलिसे डरते नहीं, अपितु आपसे डरते हैं ।

बाहुबलिके साथ किसी भी प्रकार अविवेक व हंसी खुशीसे वर्ताव करें उससे बाहुबली तो प्रसन्न ही होता है । परंतु तुम पागलपनेको कभी पसंद नहीं करोगे यह वे अच्छीतरह जानते हैं । इसलिये तुम्हारे सामने नहीं आते हैं ।

वे अपने ही वर्तावसे स्वयं लज्जित हैं । इसलिये उस लज्जाके मारे तुम्हारे पास नहीं आते हैं। अभिमानसे तुम्हारे पास नहीं आते हैं यह बात नहीं । कल वे अपने आप आकार तुम्हारी सेवा करेंगे, आप चिंता क्यों करते हैं ?

मंत्रीके चातुर्यपूर्ण वचनको सुनकर चक्रवर्ती मन ही मन हंसे व ठीक है ! ठीक है ! मंत्री ! तुम बिलकुल ठीक कह रहे हो ! इस प्रकार कहते हुए बांधवोंमें प्रेम संरक्षण करनेके मंत्रीके तंत्रके प्रति मनमें ही बहुत प्रसन्न हुए ।

इतनेमें मध्यरात्रिका समय होगया था । उस समय " जिनशरण " शब्दको उच्चारण करते हुए भरतजी वहांसे उठे व मंत्री और सेवकोंके साथ शय्यालयकी ओर चले ।

उस समय शस्त्रालयकी शोभा कुछ और थी। अनेक शस्त्र वहांपर व्यवस्थित रूपसे रखे हुए थे। उनकी बलि, पुष्प चंदन इत्यादिक पूजाओंसे वहांपर वीर रस बराबर टपक रहा था।

पंचवर्णके अनेक भक्ष्यविशेष व अनेक नैवेध विशेषोंसे शस्त्र पूजा होरही थी इसी प्रकार होम भी होरहा था जिसमें अनेक आज्य अन्न आदिकी आहुति भी दी जारही थी।

धूपसे धूम निर्गमन, दीपसे प्रज्वलित ज्वाला व अनेक वर्णके पुष्प अनेक फल आदि विषयोंसे वहां अनुपम शोभा होरही थी।

माला, खड्ग, कठारी, गदा, आदि अनेक अस्त्र शस्त्रोंको देखने पर एकदम राक्षस या मारिके मंदिरका भयंकर स्मरण आता था। खड्ग, गदा व चंद्रहांस आदिक दण्डरत्नोंको जिसप्रकार वहांपर रखा गया था उससे सर्प मण्डलका ही कभी कभी स्मरण होता था।

रतिहास आदि कितने ही आयुध वहांपर आग्निको ही वमन कररहे थे।

सानंदक नामक एक खड्ग [असि] रत्न तो इसप्रकार मालुम हो रहा था कि कब तो चक्रवर्ती दिग्विजय के लिये प्रयाण करेंगे, कब तो हमें शत्रू-वोंको भक्षण करनेके लिये अवसर मिलेगा, इस प्रकार जीभको बाहर निकालकर प्रतीक्षा ही कर रहा है।

कालकी डाढके समान अनेक खड्गोंके बीचमें सूर्यके समान तेज पुंज चक्ररत्न वहांपर प्रकाशित होरहा है। चक्रवर्तीने खडा होकर उसे जरा देखा।

चक्रवर्तीसे मंत्रीने प्रार्थनाकी कि स्वामिन्! आजतक इस चक्ररत्नकी महावैभवसे पूजा होगई। कल वीरलग्न है, योग्य मुहूर्त है। इसलिये दिग्विजयके लिये अपन प्रस्थान करें।

इस वचनको सुनकर चक्रवर्तीने उस चक्ररत्नपर एक कमल पुष्पको रखा। उसे देखकर मंत्रीने कहा कि राजन्! सूर्यको कमल मिलगया यही तुम्हारे लिये एक शुभ शकुन है।

चक्रवर्ती उस शस्त्रालयसे लौटे। मंत्रीको उन्होने भेजकर अपनी महलमें प्रवेश किया।

इति नवरात्रि संधि

पत्तनप्रयाण संधि।

आज दशमीका दिन है। राजोत्तम भरतजीने श्रृंगारकर योग्य मुहूर्त में दिग्विजयके लिए प्रयाण किया।

सबसे पहिले भरतजी मातुश्रीके दर्शनकेलिए यशस्वतीकी महलकी ओर चले। स्तुति पाठक भरतजीकी उच्च स्वर से स्तुति कर रहे हैं।

दूरसे आते हुए पुत्रको माता यशस्वती हर्ष भरी आंखोंसे देखने लगी। जिसप्रकार पूर्णचंद्रको देखकर समुद्र उमड आता है उसी प्रकार सत्पुत्रको देखकर माता यशस्वती अत्यधिक हर्षित हुई।

बहुतसी स्त्रियोंके बीचमें माणिककी देवताके समान सुशोभित, अकलंक चारित्रको धारण करनेवाली माताकी सेवामें भेट रखकर भरतजीने प्रणाम किया।

" बेटा ! समुद्रांत पृथ्वीको लीला मात्र से जीतने में तुम समर्थ होजावो ! जिनभक्ति व भोगमें तुम देवेंद्र हो जावो " इस प्रकार माताने पुत्रको आशिर्वाद दिया।

साथ में माताने यह भी पूछा कि बेटा ! आज क्या तुम्हारा प्रस्थान है ?

भरतजीने उत्तर दिया कि माता ! आलस्य परिहार व विनोदके लिए जरा राज्य विहार कर आनेका विचार कर रहा हूं। शीघ्र ही लौटकर आपके पुनीत चरणोंका दर्शन करूंगा।

माताजी ! बाहुबली कल या परसोतक यहांपर आनेवाला है एवं आपको मेरे दिग्विजयसे लौटनेतक पौदनापुरमें लेजायगा। देखिये तो सही मेरे भाईकी सज्जनता ! वह विवेकी है। मैं यहांपर नहीं रहूं तब अकेली आपको कष्ट होगा इस विचारसे वह आपको लेजारहा है। वह मुझे छोटे भाई नहीं, बडे भाई है।

माता ! मेरी अनुपस्थितिमें आपका यहांपर रहना उचित नहीं है। इसलिये आप बाहुबलिकी महलमें जाकर आनंदसे रहे। मैं जब दिग्विजय कर वापिस लौटूं तब यहांपर पधारें।

उस समय शस्त्रालयकी शोभा कुछ और थी। अनेक शस्त्र वहांपर व्यवस्थित रूपसे रखे हुए थे। उनकी वलि, पुष्प चंदन इत्यादिक पूजाओंसे वहांपर वीर रस बराबर टपक रहा था।

पंचवर्णके अनेक भक्ष्यविशेष व अनेक नैवेद्य विशेषोंसे शस्त्र पूजा होरही थी इसी प्रकार होम भी होरहा था जिसमें अनेक आज्य अन्न आदिकी आहुति भी दी जारही थी।

धूपसे धूम्र निर्गमन, दीपसे प्रज्वलित ज्वाला व अनेक वर्णके पुष्प अनेक फल आदि विषयोंसे वहां अनुपम शोभा होरही थी।

भाला, खड्ग, कठारी, गदा, आदि अनेक अस्त्र शस्त्रोंको देखने पर एकदम राक्षस या मारिके मंदिरका भयंकर स्मरण आता था। खड्ग, गदा व चंद्रहांस आदिक दण्डरत्नोंको जिसप्रकार वहांपर रखा गया था उससे सर्प मण्डलका ही कभी कभी स्मरण होता था।

इतिहास आदि कितने ही आयुध वहांपर अग्निको ही वमन कररहे थे।

सानंदक नामक एक खड्ग [असि] रत्न तो इसप्रकार मालुम हो रहा था कि कब तो चक्रवर्ती दिग्विजय के लिये प्रयाण करेंगे, कब तो हमें शत्रुवोंको भक्षण करनेके लिये अवसर मिलेगा, इस प्रकार जीभको बाहर निकालकर प्रतीक्षा ही कर रहा है।

कालकी डाढके समान अनेक खड्गोंके बीचमें सूर्यके समान तेज पुंज चक्ररत्न वहांपर प्रकाशित होरहा है। चक्रवर्तीने खडा होकर उसे जरा देखा।

चक्रवर्तीसे मंत्रीने प्रार्थनाकी कि स्वामिन्! आजतक इस चक्ररत्नकी महावैभवसे पूजा होगई। कल वीरलग्न है, योग्य मुहूर्त है। इसलिये दिग्विजयके लिये अपने प्रस्थान करें।

इस वचनको सुनकर चक्रवर्तीने उस चक्ररत्नपर एक कमल पुष्पको रखा। उसे देखकर मंत्रीने कहा कि राजन्! सूर्यको कमल मिलगया यही तुम्हारे लिये एक शुभ शकुन है।

चक्रवर्ती उस शस्त्रालयसे लौटे। मंत्रीको उन्होंने भेजकर अपनी महलमें प्रवेश किया।

इति नवरात्रि संधि

पत्तनप्रयाण संधि।

आज दशमीका दिन हैं। राजोत्तम भरतजीने श्रृंगारकर योग्य मुहूर्त में दिग्विजयके लिए प्रयाण किया।

सबसे पहिले भरतजी मातुश्रीके दर्शनकेलिए यशस्वतीकी महलकी ओर चले। स्तुति पाठक भरतजीकी उच्च स्वर से स्तुति कर रहे हैं।

दूरसे आते हुए पुत्रको माता यशस्वती हर्ष भरी आंखोंसे देखने लगी। जिसप्रकार पूर्णचंद्रको देखकर समुद्र उमड आता है उसी प्रकार सत्पुत्रको देखकर माता यशस्वती अत्यधिक हर्षित हुई।

बहुतसी स्त्रियोंके बीचमें माणिककी देवताके समान सुशोभित, अकलंक चारित्रको धारण करनेवाली माताकी सेवामें भेट रखकर भरतजीने प्रणाम किया।

" बेटा ! समुद्रांत पृथ्वीको लीला मात्र से जीतने में तुम समर्थ होजावो ! जिनभक्ति व भोगमें तुम देवेंद्र हो जावो " इस प्रकार माताने पुत्रको आशिर्वाद दिया।

साथमें माताने यह भी पूछा कि बेटा ! आज क्या तुम्हारा प्रस्थान है ?

भरतजीने उत्तर दिया कि माता ! आलस्य परिहार व विनोदके लिए जरा राज्य विहार कर आनेका विचार कर रहा हूं। शीघ्र ही लौटकर आपके पुनीत चरणोंका दर्शन करूंगा।

माताजी ! बाहुबली कल या परसोंतक यहांपर आनेवाला है एवं आपको मेरे दिग्विजयसे लौटनेतक पौदनापुरमें लेजायगा। देखिये तो सही मेरे भाईकी सज्जनता ! वह विवेकी है। मैं यहांपर नहीं रहूं तब अकेली आपको कष्ट होगा इस विचारसे वह आपको लेजारहा है। वह मुझे छोटे भाई नहीं, बडे भाई है।

माता ! मेरी अनुपस्थितिमें आपका यहांपर रहना उचित नहीं है। इसलिये आप बाहुबलिकी महलमें जाकर आनंदसे रहें। मैं जब दिग्विजय कर लौटूं तब यहांपर पधारें।

अच्छा ! अब रहेदीजिये ! मैं अब दिग्विजयको लिये जारहा हूं। मुझे मेरे योग्य उपदेश दीजियेगा, जिससे मुझे दिग्विजयमें सफलता मिले।

भरतजीकी बात सुनकर यशस्वती देवीको जरा हंसी आई और कहनेलगी कि बेटा ! तुम्हे मेरे उपदेशकी क्या जरूरत है ! क्या तुम दूसरोंके उपदेशके अनुसार चलनेके योग्य हैं ! सारी जगतको तुम उपदेश देते हो, व वह तुम्हारे उपदेशके अनुसार चलती है। ऐसी अवस्थामें तुम्हे उपदेश वगैरे की क्या जरूरत है।जावो दिग्विजय कर आनंदसे वापिस आवो। बेटा ! माताके उपदेशकी पुत्रको जरूरत है। परंतु किस पुत्रको ! जो पुत्र दुर्मार्गगामी है उसे माताकी शिक्षाक आवश्यकता है। दूधको लेकर पानीको छोडनेवाले हंसके समान जिस पुत्रका आचारण है माता उसे क्या शिक्षा दें ! तुम ही बोलो। बेटा ! मैं समझगई कि मैने तुमको जन्म दिया है, इसलिये तुमको मुझसे उपर्युक्त बात पूछी। यह तुम्हारी शालीनता हैं। बेटा ! क्या कहूं। तुम्हारी वृत्तिसे तुम्हारी पिता भी अत्यंत संतुष्ट हैं। मेरा चित्त भी अत्यधिक प्रसन्न हुआ है। इसलिये प्रिय भरत ! मुझे मत पूछो। तुम आनंदसे पृथ्वीको वश कर आवो। तुममें अखंड सामर्थ्य मौजूद है।

माताके मिष्ट वचनोंको सुनकर भरतजी बहुत प्रसन्न हुए। आनंदके वेगमें ही पूछने लगे कि क्या माता ! आपको विश्वास है कि मुझमें उस प्रकारकी बुद्धि व सामर्थ्य मौजूद है ?

यशस्वतीनें तत्क्षण कहा कि हां ! हां ! विश्वास है। तुम जावो !

" तब तो कोई हर्ज नहीं " ऐसा कहकर भरतजीने माताका चरण-स्पर्श कर बहुत भक्तिसे प्रणाम किया। उसी समय माताने पुत्रको मोतीका तिलक किया। साथमें पुत्रको आलिंगन देकर अशीर्वाद दिया कि बेटा ! मनमें कोई आकुलता नहीं रखना। तुम्हारे हाथी घोडोंके पैरमें भी कोई कांटा नहीं चुभे। षड्खंडमें राज्य पालन करनेवाले समस्त राजागण तुम्हारे चरणमें मस्तक रखेंगे। कोई संदेहको बात नहीं है। जाहो ! जल्दी दिग्विजयी होकर आवो। इस प्रकार बहुत प्रेमके साथ पुत्रकी विदाई की।

माताकी आज्ञा पाकर भरतजी वहांसे चले। इतनेमें मातुश्री यशस्वतीके दर्शनके लिए भरतकी राणियां आई।

अनेक तरहके शृंगारोंको धारण कर राणियोंने झुण्डके झुण्ड आकर अपने पतिकी प्रसवित्रीके चरणको नमस्कार किया। यशस्वती देवीने भी आशीर्वाद दिया कि देवियो ! तुम लोग दुःखको स्वप्नमें भी नहीं देखकर हमारे पुत्रके साथ आनंदसे वापिस लौटना; दिग्विजय प्रयाणमें आप लोगोंको कोई कष्ट नहीं होगा। आप लोग प्रसन्न चित्तसे जावें।

तब उन बहुवोंने पूज्य सासूसे प्रश्न किया कि माता ! हमें इस समय योग्य सदुपदेश दिजियेगा। इस बातको सुनकर यशस्वती देवी कहने लगी कि विवेकी भरतकी स्त्रियोंको मैं क्या उपदेश दे सकती हूं। आप लोगोंके पतिकी बुद्धिमत्ता लोकमें सर्वत्र विश्रुत है। हमें पूछनेकी क्या जरूरत है। अपने पतिकी आज्ञानुसार चलना यही कुलस्त्रियोंका धर्म है।

आप लोग अविवेकिनी नहीं है। और न एकमेकके प्रति आपलोगोंमें ईर्ष्या है। ऐसी अवस्थामें तुम लोगोंको अब उपदेश देने लायक बात कोनसी रही है यह समझमें नहीं आता इसलिये मुझे आप लोगोंके संबंधमें कोई चिंता नहीं है, आनंदसे आपलोग जावें व दिग्विजयकर पतिके साथ लौटें।

इतनेमें सभी शीलवतियोंनें सासूसे प्रार्थना कि आज हम सब पतिके साथ दिग्विजयविहारमें जारही हैं। ऐसी अवस्थामें हमें प्रतिनित्य आपके चरणोंका दर्शन नहीं मिल सकता। इसलिये पुनः जब आकर आपके पूज्यपादोंका दर्शन हमें हो तबतक कुछ न कुछ व्रत लेनेकी आज्ञा दीजियेगा।

तदनुसार सभी सतियोंनें भिन्न २ प्रकारके व्रत लिये। किसीने भोजनके रसोंमे नियम किया। किसीनें पुष्पोंमें अमुक पुष्पका मुझे त्याग रहे इस प्रकारका व्रत किया। किसीने तांबूलका त्याग किया किसीने वस्त्रोंका नियम किया। एक स्त्रीनें मल्लिका पुष्पका त्याग किया। एकने जाई पुष्पका त्याग किया। एक सतीने दूधका त्याग किया, एकने केलेका त्याग किया। एकने फेणीका त्याग किया। दूसरीनें गोरचन और दूसरीनें कस्तूरी का त्याग किया। एक स्त्रीने रेशमी वस्त्रोंका त्याग किया। एकने [illegible]के आभरणोंका त्याग किया। इस प्रकार अनेक स्त्रियोनें तरह तरहसे

सनेक नियमोंको लिये। यह सब नियमव्रत है। यम नहीं। क्यों कि सासुके पुनर्दर्शनपर्यंत इनका कालनियम है। बहुवोंकी भक्तिको देखकर माता यशस्वतीको बहुत हर्ष हुआ। और कहने लगी कि बहुओ! आप लोग परदेशको गमन करने जारही है। इसलिये प्रयाणके समय व्रतोंकी क्या अवश्यकता है? आप लोग वैसे ही जावें। "माता! भरतराज्य (षट्खण्ड) हमारे ही है, वह परदेश नहीं है। इसलिये हम स्वदेश गमन ही कर रही है। सो इन व्रतोंकी हमें आवश्यकता है" ऐसा आग्रह पूर्वक कहकर सब स्त्रियोंने सासूके चरणमें भक्ति पूर्वक मस्तक रखा। सासूने भी "तथस्तु" कहकर आशिर्वाद दिया।

सासूकी आज्ञाको पाकर वे सब स्त्रियां बहुत आनंद व उल्लासके साथ वहांसे चली। उन लोगोंका पारस्परिक प्रेम, लोकमें ईर्ष्या व मत्सरसे जीनेवाली एक पतिकी अनेक स्त्रियोंके दुःखमय जीवनको तिरस्कृत कर रहा था।

सदा परस्पर झगडाकर एकमेकको गाली व शाप देकर, सवतमत्सरके साथ जीनेवाली स्त्रियोंसे नारकियोंके जीवन कदाचित् अधिक सुखमय है। इस बातको स्वकृतिसे व्यक्त करते हुए वे बहुत आनंदके साथ जारही थी।

सोनेकी पलकियां तैयार थी उनपर आरूढ होकर राणियोंने प्रस्थान किया। उनकी दासियोंने चांदीकी पलकियों पर चढकर उनका अनुकरण किया।

रमणियोंकी पलकियोंकी बीच एक सोनेका रथ जारहा है। जिसमें अर्ककीर्तिकुमारका सुंदर झूला सुशोभित होरहा है।

राजा भरत अनुकूल नागरांक दक्षिणांक आदि मंत्री व मित्रोंके साथ सोनेके खडाऊ पहनकर जिनमंदिरकी ओर चले। रास्तेमें ज्योतिषी स्तुतिपाठक, गायक, आदि अनेक तरहके लोग भरतके दिग्विजय प्रस्थानके समय शुभकामना कर रहे हैं।

ज्योतिषी लोग पंचांगशुद्धिको देखकर योग्य मुहूर्त व लग्नको निवेदन कर रहे हैं।

शास्त्र पाठक श्रीभरतजीको यश व जयकी सिद्धि हो, इस प्रकार

उच्च स्वरसे घोषणा कर रहे हैं। गायन करनेवाले श्रीराग, मधुमाधवीराग आदि अनेक रागोंमें आत्मविवेचन करनेवाले पदोंको गारहे हैं। इसके अलावा अनेक प्रकारके वाद्योंके मधुर शद्ब, और धवल शंखोंके भों भोंकर हो रहे हैं। उन सबको सुनते हुए भरतजी जारहे हैं।

भरतजी माताकी महलसे जब बाहर निकले उस समय दो कौवे देखनेमें आये। उसी प्रकार बांये ओरसे पाल रुदन करने लगे। आकाश प्रदेशमें सामनेसे एक गरुड बराबर भागरहा था। अनुकूलनायकने समयकी अनुकूलता देखकर भरतजीको उसे इशारेसे बतलाया।

आगे जानेपर एक पालतू प्राणी भरतजीको देखकर अत्यधिक भयभीत होकर देखरही थी। उसे देखकर नागरांकने कहा कि स्वामिन्! शत्रुवीर भी आपसे इसी प्रकार भयभीत होंगे, इसकी यह सूचना है।

सामनेसे एक सांड धूल उडाते हुए आरहा है। मुंहसे शब्द भी कर रहा है। दक्षिणांकने उसे वीर सूचना कहकर भरतजीको दिखाये।

इस प्रकार मित्रगण अनेक प्रकारके शुभशकुनोंको दिखाते हुए जारहे हैं। भरतजी भी अंदर अंदरसे ही हसते हुए एवं बहुत उत्साहके साथ परमात्माके स्मरण करते हुए नगरके मध्यस्थित जिनमंदिरमें आये।

बाहरके परकोटेके बाहर ही उन्होंने खडाऊ उतार दी। उसके बाद अप्रमादवृत्तिसे पांच सुवर्णके परकोटोंको पार किया।

सबसे पहिले उन्होंने भद्रमण्डप में प्रवेश किया। भगवान् आदिनाथ स्वामीकी प्रतिकृतिका वहांपर दर्शन मिला। भरतजीने उस भद्रमण्डपमें योग्य द्रव्योंकी भेट चढाकर बहुत भद्रभावसे भगवान्के चरणोंमें साष्टांग प्रणति की। तदनंतर चिद्रूपभावनाको धारण करनेवाले योगियोंको नमोस्तु किया।

निरंजन सिद्धभावनाको धारण करनेवाले योगियोंने भी आशिर्वाद दिया कि " सिद्धदिग्विजयकार्यो भव, हे भूप ! समृद्धसुखी भव "।

तदनंतर भरतजीने सिद्धपूजाकी शेषाको मस्तकपर व मृत्युंजय, सिद्धचक्र आदि होमयंत्रको कंठमें लगाकर भक्तिको व्यक्त किया।

बुद्धिसागरने प्रार्थना की कि स्वामिन् ! होम कर्मको बहुत विधिपूर्वक निष्पन्न किया गया। मुनियोंको आहारदान नवधा भक्तिपूर्वक दिया गया। महास्वामी श्री आदिनाथ भगवंतकी पूजा बहुत वैभवके साथ की गयी है। प्रतिपदासे लेकर दशमी तक अद्वितीय उत्साहके साथ आपने जो पूजा की व कराई है, वह अब इस लोकमें आपकी पूजा करायगी इसमें कोई संदेह नहीं।

स्वामिन् ! धर्मपूर्वक राज्यपालन करनेकी पद्धति, धर्मांग भोगक्रम, इत्यादि बातोंके मर्मको तुम्हारे शिवाय और कौन जान सकता है ? अब आप यहांपर किरीट धारण करें।

मंत्रीकी प्रार्थनाको स्वीकार कर भरतजीने अपने मस्तकपर रत्नमय किरीटको धारण किया।

तदनंतर किरीटी भरतने " भूयात्पुनर्दर्शनं " यह पद उच्चारण करते हुए जिनेंद्र भगवंतको नमस्कार किया। बादमें मुनियोंके चरणमें मस्तक रखकर वहांसे जयघोषणाके साथ वापिस लौटे।

रास्तेमें जाते समय बहुतसे कुलवृद्धजन भरतजीको आशिर्वाद देरहे हैं। विद्वान् लोग मंगलाष्टकका उच्चारण कर भरतजीके ऊपर अक्षतक्षेपण कर रहे थे। बहुतसे लोग बीच बीचमें आकर फल, पुष्प आदिकी भेंट रखकर नमस्कार करते थे। एवं राजन् ! आपका भला हो। आपकी जय हो, इत्यादि शुभभावना करते थे।

जिससमय भरतजी अत्यंत आनंदके साथ जिन मंदिरसे बाहर निकले उस समय अकस्मात् ही उनके दाहिने भुज, जंघा व आंखमें स्फुरण होने लगा, जो कि निकटभविष्यमें अद्वितीय संपत्तिकी सूचना थी।

बहुत वैभवके साथ आप पांचों परकोटोंसे बाहर आये। वहांपर पट्टके हाथी तैयार था। पर्वतके समान उस सुंदर हाथीपर " जिनशरण " शब्दको उच्चारण करते हुए भरतजी आरूढ होगये। उसी समय सेवकोंने मोतीके छत्रको ऊपर उठाया व इधर उधरसे चामर डुलने लगे। इतना ही नहीं, चारों ओरसे ध्वजपताकायें उठी व करोडों तरहके बाजे बजने लगे।

सामनेसे स्तुतिपाठक जारहे थे। वे अनेक प्रकारसे राजाकी स्तुति करते हुए शुभभावना करते थे।

स्वामिन्! आप अनेक वैरि राजावोंके पति हैं। शत्रुरूपी अंधकारके लिये सूर्यके समान हैं। जयलक्ष्मीके आप पति हैं। आपकी जय हो!

इत्यादि स्तुतियोंको सुनते हुए भरतजी नगरके विशाल मार्गोंमें जारहे हैं।

उस समय दूरसे भरतजीका किरीट सूर्यके समान मालुम होरहा था। शरीर सोनेके पुतलेके समान मालुम होरहा था।

भरतजीके ऊपर जो प्रकाशमान मोतीका छत्र रखा गया था उसके प्रकाशसे ऐसा मालुम होरहा था कि अनेक नक्षत्रोंके बीचमें चंद्रदेव आरहा हो।

बत्तीस चामर जो इधर उधरसे डुलरहे हैं उनको देखने पर मालुम होता है कि राजा भरतजी क्षीरसमुद्रमें हाथी चलाते हुए आरहे हैं।

हाथी के आगे दो सुंदर व उज्वल–ध्वज मौजूद हैं, जिनका नाम क्रमसे चंद्रध्वज व सूर्यध्वज हैं। उनकी शोभाको देखनेपर ऐसा मालुम होरहा है कि चंद्र व सूर्य ही भरतजीको आकर लेजारहे हैं। इस प्रकार अनेक वैभवोंके साथ आप दिग्विजय प्रस्थानके लिये जारहे हैं।

पुरुषोत्तम भरत आज अयोध्याको छोडकर दिग्विजय के लिये जारहे हैं, यह सबको मालुम ही था। सब लोग उनकी विहार शोभाको देखनेके लिये भागे आये हैं। आरहे हैं। अपनी महलके ऊपर चढकर देखरहे हैं।

स्त्रियोंकी बात कहना ही क्या? वे उमड उमडकर भरतजीको देखनेके लिये उत्सुक हो रही हैं। किसी भी पुरुषके मनमें भी हमारी स्त्रियां भरतजीको नहीं देखें इस प्रकारका विचार उत्पन्न नहीं होता है, क्यों कि भरतजी परदारसहोदर हैं। भाईको बहिने देखें तो क्या बिगडता है?

कहीं कहीं पुरुष अपनी स्त्रियोंके साथ खडे होकर देख रहे हैं। कहीं स्त्रियां अकेली ही देख रही हैं। अनेक वेश्यायें षट्खण्डाधिपतिकी शोभाको देखरही हैं।

कितनी ही स्त्रियां गडबडीसे दौडी आ रही हैं और भरतजीको देखनेके लिये उत्सुक हो रही हैं।

चूलेपर दूध गरम करनेके लिये रखा हुआ है। उसे उतरनेकी चिंता नहीं। सामनेसे बच्चा रो रहा है। उसकी ओर लक्ष्य नहीं। सबको वैसे ही छोडकर बाहर आरही हैं।

जो स्त्रियां अनेक विनोदलीला करती थी, उन्हे अर्धमें ही छोडकर एवं संगीतको भी अर्धमें ही बंदकर भरतजीको देखनेके लिए गई।

एक स्त्री तोतेको पढारही थी। अब तोतेको पिंजडेमें रखकर जानेमें देरी होगी इस गडबडीसे तोतेको भी साथ लेकर गई। और जुलुस की शोभा देखने लगी।

कितनी ही स्त्रियां हाथमें दर्पण लेकर कुंकुम लगारही थीं। उधरसे बाजोंके शद्बको सुनते ही कुंकुम लगाना भूलकर दर्पणसहित ही बाहर आई और बहुत आनंदके साथ देखने लगी।

एक स्त्रीकी वेणी व साडी ढीली होगई थी। तो भी वेणीको तो दाहिने हाथसे व साडीको बांये हाथसे सम्हालती हुई बाहर दौड कर आई।

एक वेश्या विटके साथ क्रीडाके लिये स्वीकृति देकर अंदर जारही थी। उतनेमें बाजेके शब्दको सुनकर वह उस विटको आधेमें ही छोडकर बाहर भाग गई।

बहुत दिनसे अपेक्षित विट पुरुषको घरपर आनेपर बहुत बहुत हर्षित होनेवाली वेश्यायें जुलुसके शब्दको सुनते ही विटके प्रति निस्पृह होकर भाग गई। नहीं विशेश क्या? पान खानेकेलिये जो बैठी थी वह पान खाना भूल गई। जिनका पदर सरका था उसे भी ठीक करना भूल गई। एक दम परवश होकर वेश्यायें भरतजीके देखने लगी।

भरतजीके सौंदर्यका क्या वर्णन करें? जिन स्त्रियोंने भी वहांपर उनको देखा तो सब अपनेको भूलगई थीं, और बराबर स्तब्ध पुतली के प्रकार खडी थी।

अधिक क्या ? जिनके बाल सोलह आने पकगये हैं ऐसी बुढियां भी भरतजीको देखकर हक्कावक्का होगई एवं आधे मुंह खोलकर देखने लगी एवं भ्रमित होकर दिवालके सहारे टिक गई तो तरुणियों के हृदयमें किस प्रकारके विचारका संचार हुआ होगा यह पाठक ही कल्पना करें।

स्त्रियां भरतजीको देखकर भरतजीके प्रति मोहित होगई, इसमें आश्चर्य ही क्या है ? वहांके नगरवासी पुरुष भी भरतजीके सौंदर्यसे मन हारकर भ्रांत हुए। ऐसी हालतमें स्त्रियोंकी तो बात ही क्या है ? उनका तो हृदय स्वभावतः ही कोमल रहता है।

स्त्रियां सब भरतजीको बहुत ही चाहसे देखरही हैं। परंतु भरतजी की दृष्टि गजरत्नके गण्डस्थलकी ओर है, वे इधर उधर देख नहीं रहे हैं। यह गंभीरता भरतजीने कहां सीखी होगी ?

जिस महापुरुषने तीन लोकमें सारभूत श्रीचिदंबरपुरुष परमात्माके अतुलवैभवका दर्शन किया है, क्या उसका चित्त इधर उधर के क्षुद्र विषयोंसे क्षुब्ध होसकता है ? कभी नहीं ! इसलिये भरतजी भी मदगजके ऊपर बहुत गंभीरतासे आरूढ होकर जारहे हैं।

करोडों पात्रोंका शृंगार होकर आगेसे वे नृत्य करते हुए जारहे हैं। एवं स्तुतिपाठक अनेक सुंदर शब्दोंसे स्तुति करते हुए जारहे हैं।

आदिजिनपुत्र ! कामदेवाग्रज ! भरतषट्खण्डअधिनाथ ! गुरुहंसना-थभक्त ! तुम्हारी जय हो !

समस्त भूपतियोंके पति ! अहंकारी व विरोधी राजगणरूपी जंगलके लिये दावानल ! प्रतिस्पर्धा करनेवाले राजागिरिके लिये वज्रदण्डके रूपमें रहनेवाले हे राजन् ! आपकी जय हो !

राजन् ! लोकमें अनेक राजा ऐसे हैं जो अपने कर्तव्यको नहीं जानते हैं। उनकी वृत्ति उनको शोभित नहीं होती है। आत्मकला व विवेक उनमें नहीं है। फिर भी बाह्यरचनावोंसे अपनी प्रशंसा करालेते हैं। ऐसे राजावोंके ऊपर भी आप अपने आधिपत्य रखते हैं।

संपत्ति, शील, तेज, आज्ञा, प्रभुत्व, वीरता, आदि गुणोंमें, इतना ही

क्यों त्याग और भोगमें आप इस नरलोकमें सुरपतिके समान हैं। आपकी जय हो ! इत्यादि अनेक प्रकारसे भरतजीकी स्तुति होरही है।

सामनेसे बहुतसे खिलाडी तरह तरहके खेल बता रहे हैं। कितने ही पुष्पांजलिक्षेपण कर रहे हैं। बार बार लोग सामने आकर भरतजीकी आरती उतारकर शुभकामना कर रहे हैं। अनेक तरहके सुगंधित पुष्पोंको हाथीपर क्षेपण करके जयघोषणा कररहे हैं।

एक तरफसे वीणावली है ! दूसरी ओर दारावली है। एक तरफ वीरगुणावली है ! दूसरी ओर शृंगारावली है। इन सबकी शोभासे सबको अपूर्व आनंद आरहा था।

स्तुतिपाठकोंको, नर्तन करनेवालोंको एवं खिलाडियोंको अनेक प्रकारसे इनाम दिलाते हुए भरतजी इस प्रकारके तेजसे जारहे हैं कि जैसे मंदराद्रिके ऊपर चढकर सूर्य ही आरहा हो !

दिग्विजयमें शुभकामना व भरतजीके स्वागत करनेके लिये नगरमें यत्र तत्र तोरणबंधन किया गया है। कहीं वस्त्रका तोरण, कहीं पुष्पका तोरण, कहीं कोमलपत्तोंका तोरण। इन सब तोरणोंको पारकर जब सम्राट् आगे बढ रहे हैं, उस समय ऐसा मालुम होरहा है मानों सूर्य अनेक वर्णके आकाशमें आगे बढ रहा हो।

आगे जाकर कहीं कांसेका तोरण है। कहीं सुवर्णका है। यहीं क्यों ? कहीं रत्नसंचयका तोरण हैं। इन सबको पार करते हुए भरतजी ऐसे मालुम होरहे हैं जैसे चंद्रमा अनेक चमकीले नक्षत्र व बिजलीको पार करते हुए जारहा हो।

उन तोरणोंकी रचनामें यह विशेषता थी कि कहीं २ उनमें पुष्पोंकी पोटली बांधकर रखी गई थी। भरतजी उनमें जब प्रवेश कर रहे थे तब दोनों ओरसे दो दीर्घ डोरोंको खींचनेपर भरतजीके ऊपर पुष्पवृष्टि होती थी। तब सबलोग जयजयकार करते थे।

इस प्रकार पत्तनप्रयाणकी शोभा अपूर्व थी। जिस प्रकार शृंगार वनमें मन्मथराज बहुत वैभवके साथ प्रवेश करता है, उसी प्रकार भरत भी अयोध्यानगरके राजमार्गोमें बहुत वैभवके साथ जारहे हैं।

इस प्रकार बहुत बडे राज वैभवके साथ योग्य समय में भरतजीने अयोध्याके परकोटेके बाहर पदार्पण किया।

नगरके बाहर बडे भारी मैदानमें प्रस्थान के लिये विशाल सेना तैयार होकर खडी है। सेनापतिरत्न सम्राटकी आज्ञाकी प्रतिक्षामें है। भरतजी भी बहुत प्रसन्नताके साथ गजरत्नपर आरूढ होकर उसी ओर जा रहे हैं। सेनाको देखकर उन्हे हर्ष हुआ।

पाठकोंको आश्चर्य होता होगा कि आदिसम्राट् भरतको इस प्रकारका वैभव क्योंकर प्राप्त हुआ! उन्होंने पूर्वमें ऐसे कौनसे कर्तव्यका पालन किया है, जिससे उनको इस भवमें इस प्रकारके वैभव प्राप्त हुए। संसारमें इच्छित सुखकी प्राप्ति सहज नहीं है। उसके लिये पूर्वभवोपार्जित बडे भारी सुकृतकी आवश्यकता है। भरतेश्वरने ऐसा कौनसा पुण्य संपादन किया जिससे उन्हे यह सब सहज साध्य हो रह हैं। इसका एक मात्र उत्तर यह है कि उन्होंने अनेक भवोंसे इस सुकृतका संचय किया है। उन्होंने अनेक भवोंमें इस प्रकारकी भावना की थी कि

हे परमात्मन्! तुम सुखनिधि हो। लोकमें जो पदार्थ श्रेष्ठ कहलाता है उससे भी तुम श्रेष्ठ हो! जो अत्यधिक निर्मल है उससे तुम अधिक निर्मल हो! जो मधुर है उससे अनंतगुण अधिक तुम मधुर हो! इसलिये मधुर अमृत को सिंचन करते हुए मेरे हृदय में चिरकालतक वास करो।

परमात्मन्! भव्यकमलके लिये तुम सूर्यके समान हो! शांत हो! जो लोकमें सत्यप्रकृतिक हैं उनको अत्यंतभोग व अधिक सौभाग्यको प्राप्त करानेमें तुम प्रधान सहायक हो। अतएव स्तुत्य हो, तुम मेरे हृदय में बने रहो।

उसी भावना का यह मधुर फल है।

इति पत्तनप्रयाण संधि।

दशामप्रस्थान साध.

भरतेश्वरजी गजारूढ होकर बहुत वैभवके साथ आगे बढ रहे हैं। अयोध्यानगरके बाहर ही कुछ दूरमें सामनेसे एक विजयवृक्षपर चक्ररत्नका प्रकाश दिखने लगा।

सिंहलानमें जब महलसे सिंहासनाधीशने प्रस्थान किया तब सेनापतिको आज्ञा दी कि चक्ररत्नको आगे चलावो। उनके संकेतसे ही उसका श्रृंगार किया गया था। अनेक प्रकारकी झालरी, वस्त्र व भूषणोंसे उस विजयवृक्षकी भी शोभा की गई थी।

विजय वृक्षको कन्नडमें " बन्नी " कहते हैं। " बन्नी " शब्दका दूसरा अर्थ आवो ऐसा होता है। जिससमय उस वृक्षके सुंदर पत्ते हवासे हिल रहे थे, उससे ऐसा मालुम होरहा था कि शायद वह बन्नी वृक्ष लोगोंको अपने पास बन्नी (आवो) ऐसा कह रहा हो।

उस विजय वृक्षकी वेदिकाके चारों तरफ अनेक चामर, झालरी आदिकी शोभा है। और गाजे बाजोंका सुंदर शब्द होरहा है।

राजा भरत भी उस वृक्षके पास चले गये। एक दफे तो उन्होंने हाथीको ठहराकर अंकुशपर हाथ रखकर वीरदृष्टिसे चारों ओर देखा। जिधर देखते हैं उधर हाथी हैं, घोडे हैं, रथ हैं, अगणित सेनायें हैं। अपनी २ विशाल सेनाओंको लेकर छप्पन देशके राजागण उपस्थित हैं।

भरतेश्वरका सेनापति जयराज है, उसे अयोध्यांक भी कहते हैं। उसने सारी सेनाकी व्यवस्था की है। वह जयशील है, अतिवीर है, विवेकी है, और असल क्षत्रिय है। वह सम्राट्के पासमें ही है।

दुपहरको तीसरे प्रहरमें राजदरबार हुआ। सेनापति जयराजके इशारेको पाकर वहां उपस्थित सब राजावोंने आकर सम्राट् भरतका दर्शन लिया।

अनेक श्रृंगारसे युक्त घोडेपर चढकर अंग देशके राजा आये और उन्होने बहुत आदरके साथ राजाको नमस्कार किया। इसी प्रकार पल्लव, केरल, कांबोज, करहाट, सौराष्ट्र, काशी, तिगुळदेश, तेलुगदेश, इ

पारसी, चेर, सिंधु, कलहरि, ओड्रि, पांड्य, सिंहळ, गुर्जर, नेपाळ, विदर्भ, चीन, महाचीन, भोट्ट, महाभोट्ट, लाट, महालाट, काश्मीर, तुरुष्क, कर्णाट, कांभोज, वंग, वृत्त, चित्रकूट, पांचाळ, गौळ, कालिंग, मालव, मक्का, बंगाल, साम्राणि, कुंतल, हम्मीर, गौड, कोंकण, तुळु देश, बर्बर, मलय, मगध, हैव, महाराष्ट्र, दूपारी, मलेयाळ, कोडगु, बाल्हिक, पले, मधुर, चोळ, कुरुजांगल, मथुरा आदि अनेक देशोंके राजा अपने २ अद्वितीय वैभवके साथ आये व भरतजीको बहुत आदरके साथ नमस्कार कर एक तरफ खडे हुए।

विशेष क्या ? छह खण्डके राजाओंमें आर्यखण्डके समस्त राजा वहां उपस्थित थे। पांच म्लेच्छ खण्डके राजा वहांपर नहीं थे।

आर्यखण्डके अधिपति तो सम्राट्के आधीन हो चुके। अब म्लेच्छखण्डके राजावोंको वशमें करनेके लिये इस सेनाको एकत्रित किया है।

तीनों समुद्रोंके अधिपति तीन व्यंतरेंद्र हैं। उनको वशमें करनेके बाद पांच म्लेच्छ खण्डोंकी ओर भरतजी बढेंगे।

उनके साथ अगणित सेना मौजूद है। अपनी मदजलधाराको बहाते हुए जृंभण करनेवाले मंगलहाथी उस सेनामें चौरासी लाख हैं।

इसी प्रकार अपनी सुंदर चाल व चीत्कारसे बडे २ पर्वतोंको भी शिथिल करनेवाले सुंदर रथ चौरासी लाख हैं।

सामान्य घोडोंकी संख्या हमें मालुम नहीं। वह अगणित थे, परंतु उत्तम व सुंदर लक्षणोंसे युक्त घोडे अठारह करोडकी संख्यामें थे।

सामान्य सेवकोंकी बात जाने दीजिये। परंतु उत्कृष्ट क्षत्रिय जातिमें उत्पन्न जातिवीरोंकी संख्या चौरासी करोड थी।

इसी प्रकार रणभूमिमें शोभा देनेवाले व साम्राट्के अंगरक्षण के लिये सदा कटिबद्ध व्यंतर कुलोत्पन्न देव सोलह हजार थे।

इस प्रकार चतुरंग सेनासे युक्त होकर भरतजीने उस विजय वृक्षसे आगे बढनेकी तैयारी की। उनके इशारेको पाकर करडों बाजे बजने लगे। उस विजयवृक्षको अपनी दाहिनी ओर कर विजयपर्वत हाथीको आगेसे चलाया। उस हाथीके आगेसे ध्वजसहित चक्ररत्न चमक रहा था।

दाहिने ओर, आगे और पीछे सब जगह सेना ही सेना है। बीचमें सुमेरु के समान सम्राट् बहुत शोभाको प्राप्त हो रहे हैं।

भरतेश्वरके आश्रित राजागण अपनी २ सेना व वैभव के साथ उनका अनुकरण कर रहे हैं। और सब लोग जय जयजयकार करते हुए उनकी शुभभावना कर रहे हैं।

इस प्रकार अचित्य वैभवके साथ अयोध्यानगरसे कुछ ही दूर गये हैं। वहांपर मय (व्यंतर) के द्वारा रचित मुकामके स्थानको उन्होंने देखा। वहांपर भरतेश्वरने अपने दीर्घ हस्तसे सब सेनाओंको इशारा करदिया कि सब लोग यहींपर ठहरें।

सब राजावोंकी हैसियतके अनुसार विश्वकर्मा रत्नने सबको अलग २ महलोंको निर्माण कर रक्खा है। सब लोग बिना किसी प्रकारके कष्टके उन महलोंमे प्रवेश करगये। पर्वतपरसे उतरनेके समान सम्राट स्वयं हाथीपरसे उतरे।

विद्वान् व वेश्यावोंको उन्होने भेजदिया। एवं स्वयं अपनी महलकी ओर चले। उनके साथ बहुतसे लोग थे। महलके बाहर खडे होकर सब साथियोंको कहा कि अब शामके भोजनका समय होचुका है। अब आप लोग चले जाईयेगा।

इस प्रकार बुद्धिसागर, सेनापति व गणबद्ध देवोंको वहांसे विदा देकर भरतजी अपने लिये निर्मित सुंदर भद्रमुख नामक महलमें प्रवेश कर गये।

उस महलमें प्रविष्ट होकर जब भरतजीने वहांपर श्रृंगारसे युक्त एक विवाह मण्डपको देखा तो उनके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। वे उसी दृष्टिसे उसे देखने लगे थे। वहांपर पासमें ही राणी कुसुमाजी खडी थी। उसने कहा कि स्वामिन्! यह आपके लिये भविष्यकी मंगलसूचना है आज मेरी बहिनका विवाह इस मण्डपमें आपके साथ होगा। तब सम्राट्ने प्रश्न किया कि देवी! नगरमें रहते हुए यह कार्य,तुमने क्यों नहीं किया? बाहर इसकी तैयारी क्यों की गई है।

" स्वामिन्! मैने पिताजीको पहिलेसे ही सूचना भेजी थी। परंतु उनके आनेमें कुछ देरी हुई। इसलिये विवाहका योग इस स्थानपर आया।

आज ही रातको विवाहके लिये योग्य मुहूर्त है, इस प्रकार ज्योतिषियोंसे निर्णयकर पिताजी आये हैं। मेरी बहिन भी पूर्ण यौवन व सौंदर्यसे युक्त है। इस प्रकार कुसुमाजी बोलती हुई राजाके साथ ही अंदर गई। वहांपर भरतजीने अपनी स्त्रियोंको साथ लेकर एक पंक्तिमें निरंतराय भोजन किया, और कहने लगे कि यह हमारे लिये भविष्यमें होनेवाली विजयकी सूचना है। जयलक्ष्मी भी इस दिग्विजय प्रयाणमें इसी प्रकार मेरे गलेमें माला डालेगी, जिस प्रकार आज कुसुमाजीकी बहिन डालेगी।

इतनेमें सूर्य अस्ताचलपर चला गया। संध्याराग यत्र तत्र दिखने लगा। भरतजीने सायंकालके संध्यावंदनको किया। बादमें अर्ककीर्ति कुमारके पास जाकर उसे प्यार किया। अनंतर विवाह योग्य वस्त्रादिकसे श्रृंगार कर स्त्रियोंके साथ विनोद वार्तालाप कर बैठे थे। विवाहका मुहूर्त अतिनिकट है, इसकी सूचना पाकर भरतजी विवाह मण्डपमें दाखल हुए। वहांपर अखंड अक्षतोंकी पंक्ति शोभित होरही थी। उसपर आप खडे होगये।

पासमें ही श्वसुरके साथ कुसुमाजीका सहोदर कमलांक खडा था। उसके साथ विनोद करनेके विचार से भरतजी बोले कि कमलांक! तुम्हारी यह बहिन कुसुमाजीके समान नहीं है। इस ने बहुत क्रोधके साथ मेरा तिरस्कार किया था *। वह लोकमें अपने को असमान समझती है। ऐसी अवस्था में फिर भी लाकर मेरे साथ ही उसका विवाह करना क्या यह बुद्धिमत्ता है? तब कमलांक बोला कि राजन्! लोकमें तुम भी असमान हो और मेरी बहिन् भी असमान है। असमान पुरुषको असमान स्त्रीकी जोड कर देना बुद्धिमत्ता नहीं तो और क्या है! राजा उसे सुनकर कुछ मुसकराये व कहने लगे कि अब विवाहका समय हो गया है। तुम्हारे साथ बहुत विनोद वार्तालाप करनेके लिये यह समय नहीं है। इस प्रकार कहकर मंगल प्रसंगके मंगलाष्टक शोभनपद वगैरहको सुनते हुए खडे हुए। इतनेमें बीचका पर्दा हटा दिया गया। गजानक राजाने गुरुमंत्रसाक्षिपूर्वक जलधाराको छोडनेपर श्री सम्राट्ने होमसाक्षी पूर्वक मकरंदाजीको ग्रहण किया।

---

* प्रथमभागकी सरस संधिको देखें।

राजेंद्र भरत उस मकरंदाजीको लेकर अपनी महलमें चले गये। कुसुमाजीने अपने पिताको विश्रांतिके लिये भेज दिया। राजा भरत सुखांगमें मग्न होगये।

सेनामें इस आकस्मिक विवाहकी चर्चा होने लगी। सब लोग कहने लगे कि भरतजीका पुण्य अचिंत्य है। इनको निश्चयसे यह षट्खण्ड पृथ्वी वशमें होगी। इसके लिये यह विवाह ही पूर्व सूचना है। कल एकादशी है। अपन आगे जायेंगे। इत्यादि अनेक प्रकारके विचारोंसे सेनाने भी विश्रांति ली।

पाठकोंको भी आश्चर्य होता होगा कि भरतेश्वरका भाग्य इतना विशाल क्यों है। जहां जाते हैं उनको आनंद मिलता है। महलमें रहते हैं तो सुख, बाहर निकले तो वहांपर भी सुख। इस प्रकारका भाग्य संसारमें अतिविरल मनुष्योंका ही होसकता है। भरतेश्वरने पूर्वमें ऐसा कौनसा कार्य किया होगा जिसके द्वारा उन्हे इस भवमें अनन्य दुर्लभ वैभवोंकी प्राप्ति होरही है। इसका एक मात्र उत्तर यह है कि पूर्वजन्मका संस्कार, पूर्वजन्मका धर्माचरण। उन्होने पूर्वभवमें व वर्तमान भवमें इस प्रकार आत्मभावना की है कि:—

हे आत्मन्! ज्ञान व दर्शन ही तुम्हारा स्वरूप है। उस ज्ञान व दर्शनका प्रकाश तुम्हारे रूपमें उज्वलरूपसे प्रतिभासित होरहा है। वही संसारमें मोहांधकारमें पडे रहनेवाले प्राणियोंको भी मोक्षपथप्रदर्शक है। इसलिए हे परमात्मन्! तुम भव्योंके हितैषी हो। इसलिये छिपो मत! मेरे शरीरकी आडमें बराबर बने रहो।

उसी भावनाके मधुर फलको वे प्रति समय सुखस्वरूपमें अनुभव करते हैं।

इति दशमिप्रस्थान संधि

पूर्वसागरदर्शन संधि.

आज एकादशीका दिन है। भरतजी प्रातःकाल अपनी नित्यक्रिया ओंसे निवृत्त होकर बाहर आये। माकाल नामक व्यंतरको बुलाकर आज्ञा दी कि हमारे लौटने तक अयोध्यानगरीकी रक्षा करनेका कार्य तुम्हारा है। इसलिये इस कार्य में संलग्न रहना। फिर सेनापतिको आज्ञा दीगई कि अब प्रस्थानभेरी बजाई जाय।

आज्ञा होनेकी देरी थी कि प्रस्थानभेरीकी आवाजने आकाश प्रदेश को व्याप लिया। उसी समय सेनाने जो पहिलेसे प्रस्थान भेरीकी प्रतीक्षा कर रही थी, प्रस्थान किया। चक्ररत्न भी सामनेसे प्रकाशमान होते हुए चलने लगा। सम्राट् भरत भी उत्तमरत्नोंसे निर्मित पल्लकिपर विराजमान होकर पधार रहे थे।

भरतेश्वरके ऊपर श्वेतकमल के समान छत्र व चारों तरफसे राजहंसों के गमनके समान धीरे २ डुलनेवाले चामर अत्यंत शोभाको देरहे थे।

बहुतसे गायक लोग समयको जानकर योग्य रागोंमें गाते हुए वाद्य वगैरे बजा रहे हैं। उनमें परमात्मकलाका वर्णन है। उसे सुनकर सम्राट्का चित्त भी प्रफुल्लित होता है। सम्राट् मनमनमें ही हर्षित होकर उसका अनुमनन कर रहे हैं।

भरतेश्वरकी पल्लकी के चारों ओरसे अनेक वीर वस्त्राभूषणोंसे सुशोभित अगणित गणबद्ध देव आरहे हैं।

केवल सम्राट्के अंगरक्षकोंके कार्यमें कटिबद्ध दो हजार गणबद्ध वीर हैं। साथमें राणियोंकी पल्लकियोंके पीछेसे उनकी रक्षाके लिये सात हजार गणबद्ध देव मौजूद हैं। हाथी, घोडा, रथ व पदातियोंकी चतुरंग सेना मीलों क्यों कोसोंतक फैली हुई है। इसके बीचमें अर्ककीर्तिकुमारका सुंदर झूला आरहा है।

भरतेश्वरकी सेनामें इस प्रकार प्रसिद्धि है कि आगेकी सेना भरतजी की है। और पीछे की सेना (अंतःपुरसेना) सब अर्ककीर्ति की है।

क्यों कि स्त्रियां बच्चेके साथमें आरही हैं। अर्ककीर्तिकी सेनाके कुछ पीछे एक करोड वीरोंके साथ भरतपादुक नामके दो गोपाल राजा आरहे हैं, जो अत्यंत वीर हैं। शत्रुवोंकी बहुत तेजीसे दमन करनेवाले हैं।

पूर्वाण्हकालके समयमें पूर्व [आदि] तीर्थंकरके पूर्व [प्रथम] पुत्र पूर्वयुगके पूर्व (प्रथम) चक्रवर्ती पूर्वाभिमुख होकर अपनी अगणित सेनाके साथ जारहे हैं। उस समयकी शोभा मात्र अपूर्व थी। वैभव व संभ्रम अपूर्व था। उसका वर्णन कहांतक करें।

इस प्रकार अत्यंत वैभवके साथ सम्राट्ने अपनी सेनाको बीच बीच में अनेक स्थानोंमें विश्रांति देकर गंगानदीके सुंदर किनारेपरसे प्रस्थान कराया। आगे अब पूर्वसमुद्रकी ओर जा रहे हैं।

देवगंगाके दक्षिणमें उपलवण समुद्र मौजूद है। उसे दाहिने ओर कर भरतजी अपनी सेनाके साथ जारहे हैं। अनेक स्थानोंमें सेनापति श्री जयकुमार के इशारेसे मुकाम करते २ पूर्वसमुद्रको गांठ लिया। पूर्वसागरके दर्शन करते ही सभी सेनावोंमें एक नवीन उल्हास उत्पन्न हुआ।

बुद्धिसागरने आकर समयोचित विनंति की कि राजन्! इस समुद्रका अधिपति मागधामर नामक व्यंतर है। वह अत्यंत कोपी है पर वीर है, उसको सबसे पहिले वशमें कर लेना चाहिए। बाद आगेके कार्यके संबंधमें विचार करेंगे।

बुद्धिसागरके वचनको सुननेके बाद सम्राट्ने कहा कि क्या मागधामाग कोपी है? उसके क्रोधको मैं भस्म कर दूंगा। उसे शायद समुद्रमें रहनेका अभिमान होगा। उसे मैं क्षणभरमें वशमें कर लूंगा। रहने दो। उसे पहिले मैं एक पत्र भेजकर देखूंगा। पत्र बांचकर भी वह यदि नहीं आवे तो फिर उसे योग्य बुद्धी सिखावूंगा, अभी उसे बोलनेसे क्या प्रयोजन?

उसी समय आज्ञा दी गई कि वहींपर सेनाका मुकाम होजाय। पूर्वसागरके तटमें सेनासागरने अपनी विशालताको व्यक्त किया।

३६ योजन चौडाई व ४० योजन लंबाईके उस विशाल प्रदेशको सेनाने अपना स्थान बनाया। विशेष क्या, वहांपर बाजार, अश्वालय,

गजालय, वेश्यागली, आदि समस्त रचनायें विश्वकर्माके वैचित्र्यसे क्षणमात्रमें होगई। राजगण, राजपुत्र, राजपुत्र, राजमित्र, मंत्रि व मंत्रिपरिवार आदि सबको योग्य स्थानोंका प्रबंध किया गया था। उस नगरकी बीचमें अनेक परकोटोंसे वेष्टित राजमहल निर्मित हो गया था। साथमें भरतकी राणियोंको अलग २ राणीवास, शयनगृह, जिनमंदिर आदि सबकी सुंदर व्यवस्था की गई थी।

भरतजीने सबको अपने २ स्थानमें जानेके लिये आज्ञा दी व जयकुमारसे सेनाको बहुत होशियारीके साथ सम्हालनेके लिये कह कर स्वयं जाने लगे, इतनेमें अर्ककीर्तिकी सेना आगई और संतोषके साथ उसने महलमें प्रवेश किया। सम्राट्‌ने भी पल्लकीसे उतरकर अंदर प्रवेश किया।

अंदर जाते समय बुद्धिसागरसे कहा कि मंत्री! अभी तुम भी जाकर विश्रांति लो। आगेका विचार कल करेंगे। इस प्रकार कहते हुए सम्राट् अंदर गये व वहां नवभद्रशाला मण्डपमें जाकर एक सिंहासनपर विराजमान हुए।

सबसे पहिले अर्ककीर्ति कुमारको बुलाकर उसके साथ प्रेम व्यवहार विनोद किया। उसे विश्वस्त दासीके हाथ सौंपनेके बाद सामने खडी हुई अपनी राणीयों के तरफ कुछ मुसकराते हुए देखा। पिछले मुकामकी अपेक्षा उन देवियोंकी मुखचर्यामें थकावट अधिक दिख रही है। जहां जहां मुकाम करते हैं, वहां सबसे पहिले राणियोंसे सम्राट् पूछते रहते हैं कि आप लोगोंको कोई कष्ट तो नहीं है। आज राणियोंका मुख म्लान हुआ है। पसीना आया हुआ है। इसलिये मनमें कुछ खिन्न होकर कहा कि देवियों! आपलोग बैठ जावें! आप लोगोंको देखनेपर मालूम होता है कि आज बहुत २ थक गई। जरा विश्रांति लो। भरतजी की बातको सुनकर उन राणियों को भी हंसी आई, हंसती २ ही बैठ गई।

फिर भरतजी कहने लगे कि क्या आपलोगोंकी पल्लकियोंको बहुत वेगसे लेकर आये? उसीसे शरीर हिलकर आपलोगोंको यह कष्ट हुआ होगा। आपलोगोंका मुख म्लान होगया है। धूपसे कष्ट हुआ मालूम होता

है। मेरे साथमें आनेसे लोगोंकी अधिक भीडसे आपलोगोंको कष्ट होगा, इस विचार से आपलोगोंको पीछेसे अलग ही आनेकी व्यवस्था की गई थी। फिर भी कष्ट हुआ ही। हा ! क्या आपलोगोंको किसीने गुलाबजल वगैरे भी नहीं दिया ?

मानलो ! आपलोग चुप रही। आपके साथ जो दासियां नियुक्त हैं वे चुप क्यों बैठीं ? उनको तो विचार करनेका था। क्या प्राण जानेपर वे काममें आती ? क्या करें ! दुःख हुआ, इस प्रकार सम्राट् बहुत दुःखके साथ कहने लगे।

तब राणियोंने कहा कि स्वामिन् ! आप इन बेचारी दासियोंपर क्यों रुष्ट होते हैं ? उनका क्या दोष है ? आज पूर्वसागरको देखनेकी हमें उत्कट इच्छा होगई थी। हम लोगोंने ही जल्दी चलनेकी आज्ञा दी थी। हमारी आज्ञाके अनुसार उन लोगोंने कार्य किया। इसमें उनका क्या दोष है ?

इन दासियोंने व विश्वस्त लोगोंने हमें कहा कि जरा धीरेसे चलनेसे ही ठीक होगा। नहीं तो स्वामी भरतेश्वर हमपर रुष्ट होंगे। तब हम लोगोंने ही उनकी बातको न सुनकर जल्दी चलनेके लिये कहा। यह हमरा अपराध है। इसके लिये आप क्षमा करें। आपको मालुम होगा कि इसी मुक्कामके लिये ही हम लोग आतुरताके साथ आई। आजतक इस प्रकार का अपराध हमलोगोंसे नहीं हुआ था। इसलिये क्षमाकरें। प्राणनाथ ! आपके दर्शन करने मात्रसे हमलोगोंकी थकावट दूर होगई है। इसलिये आप चिंता न करें। अब आगेका कार्य करें।

भरतजीने कहा तब तो ठीक है। अभी अपन लोग स्नान देवार्चन वगैरह करके बादमें भोजनसे निवृत्त होकर दुपहरको समुद्रकी शोभा देखें। तब वहांसे उठकर सभी ऊपरके महलमें चले गये।

मय नामक व्यंतरने क्षणभरमें भरतेश्वर व उनकी राणियोंके लिये लाखों स्नान घरोंका निर्माण कर रखा था। गृहपतिरत्नकी प्रेरणासे वहांपर उत्तम जलका भी निर्माण होगया। एक एक घरमें एक एक राणीने प्रवेश

कर स्नान किया। भरतेश्वरने भी उनके लिये निर्मित स्वतंत्र स्नानगृहमें प्रवेश कर स्नान किया।

देवोंके द्वारा निर्मित उन स्नानघरोंमें किसी भी प्रकारकी अडचन नहीं हैं। आग लगावो, लकडी लावो, उसे बुलावो, इसे बुलावो इत्यादि किसी भी प्रकारकी झंझट वहां नहीं हैं। सभी गृहपतिरत्नकी व्यवस्थासे क्षणभरमें हो जाते हैं।

स्नान करनेके बाद धारण करनेके लिये उत्तमोत्तम वस्त्रोंको स्मरण करने मात्रसे पद्मनिधि नामक रत्न दे देता है। उसकी सहायतासे सब लोगोंने दिव्य वस्त्रोंको धारण किया। इसी प्रकार इच्छित आभूषणोंको पिंगलनिधिनामक रत्न दे देता है। उसके बलसे इच्छित आभूषणोंको धारण किया अर्थात् सब लोग स्नानकर वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित हुए।

देवतंत्रसे स्नानकर देवतंत्रसे हि वस्त्रभूषणोंको धारण कर श्री. भरतेश्वर देवालयको सपरिवार चले गये। वहांपर उन्होंने बहुत भक्तिसे देवपूजा की। उससे निवृत्त होकर अपनी राणियोंको साथ लेकर दिव्य अन्नपानको ग्रहण किया। बादमें तांबूल व सुगंध द्रव्योंको लेकर कुछ देरतक अपने श्रमपरिहारके लिये सुखनिद्रा की। निद्रादेवीने अपनी कोमल गोदमें सबको स्थान दिया।

मध्यान्ह तीसरे प्रहरमें भरतेश्वर अपनी स्त्रियोंके साथ समुद्रकी शोभा देखनेके लिये ऊपरकी महलपर चढ गये।

भरतेश्वरकी स्त्रियोने इससे पहिले समुद्रको कभी नहीं देखा था। बहुत उत्सुकताके साथ देखने लगी। और भरतेश्वर भी बहुत समझाकर उन्हें दिखा रहे थे। स्त्रियोंने नाकपर उंगली दबाकर समुद्रकी शोभा देखी।

समुद्रका अंत उनकी दृष्टीसे भी परे है। उसमें अगाध जल है। अनंत तरंग एकके बाद एक आरहे हैं। एक तरंग आ रहा है। वह नष्ट होता है इस प्रकार हजारों, लाखों, करोडों, क्या अगणित तरंग आरहे हैं। बीच बीचमें बहुतसे पर्वत हैं। कहीं २ नाव, जंहाज, लांच वगैरे देखनेमें आते हैं।

इस प्रकार अनेक प्राकृतिक शोभाओंसे युक्त समुद्रको देखकर वे सब देवियां बहुत प्रसन्न हुईं। सम्राट्ने कहा कि आप लोग आजसे रोज समुद्रको देख सकती हैं। आज इतना ही बहुत है। अपन सब नीचे चले। ऐसा कहकर सब लोगोंको साथ लेकर नीचेकी महलमें आये। वह दिन बहुत आनंदके साथ व्यतीत हुआ। राग व भोगके साथ चक्रवर्तिने पूर्वसागरके तट में निवास किया।

शायद हमारे प्रिय पाठकोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि भरतेश्वरको भी राणियोंके समान ही उस समुद्रको देखकर अत्यधिक संतोष हुआ होगा। नहीं! उनको समुद्रके देखनेसे हर्ष नहीं हुआ। उनके पास ही समुद्र है। ज्ञानसमुद्रका दर्शन वे रोज करते हैं। उनको किस बातकी परवाह है? उनको यदि संतोष हुआ तो केवल इस बातका कि पूर्वसागर सदृश सुंदर स्थानमें बैठकर उस ज्ञानसागर परमात्माका विशेषरूपसे निराकुलतासे दर्शन करेंगे। बाह्यसुंदरतापर वे मुग्ध नहीं हुआ करते हैं। बाह्य वैचित्र्य यदि अंतरंगके लिए सहायक हो तो उसी का अनुभव कर लेते हैं। इसलिए ही उनकी सदा भावना रहती है कि:—

हे परमात्मन्! समुद्रको लोग गंभीर है ऐसा वर्णन करते हैं। तुम्हारी गंभीरताके सामने उसकी गंभीरता कोई चीज नहीं है। तुम्हारा गांभीर्य उसे तिरस्कृत कर देता है। समुद्रका जल अगाध है, वह अपार है, उसी प्रकार तुम्हारी महिमा भी अगाध व अपार है। इसलिये परमात्मन्! मेरे हृदयमें तुम्हारा अध्यवसाय निरवच्छिन्नरूपमें बना रहे।

सिद्धात्मन्! आप भव्योंके संपूर्ण दुःखोंको दूर करनेवाले हैं। भव्योंके मनको प्रसन्न करनेवाले हैं। संपूर्ण कर्मोंको दूर कर चुके हैं। अतएव अनंत सुखके पिण्डमें मग्न हैं। आप सर्व कल्याणकारी हैं। मुनि, महामुनियोंके हृदयमें भी ज्ञानज्योतिको उत्पन्न करनेके लिये आप साधक हैं। इसलिये स्वामिन्! हमें भी सुबुद्धि दीजिये ताकि हम मधुरवचनके द्वारा संसारका कल्याण कर सकें।

इति पूर्वसागरदर्शनसंधि.

राजविनोदसंधि.

दूसरे दिन भरतेश्वर, अपनी महलमें मंत्री, सेनापति आदि प्रमुख व्यक्तियोंको बुलाकर, आगेके कार्यको सोचकर बोलने लगे कि मागधामरको वश करनेमें क्या बडी बात है। सेनानायक! व मंत्री! तुम सुनो! उस व्यंतरको वश करनेके लिये कोई चिंता करनेकी जरूरत नहीं है। परंतु मुझे इस समुद्रके तटपर एक दफे ध्यान करनेकी इच्छा हुई है। कल जबसे मैंने इस समुद्रको देखा है तभीसे मेरे हृदयमें ध्यान करनेकी उत्कट भावना बार २ उठ रही है। ऐसी अवस्थामें उस इच्छाकी पूर्ति करना मेरा धर्म है। ध्यान करनेके लिए जंगल, समुद्रतट, नदीतट, पर्वतप्रदेश आदि उत्तम स्थान हैं इस प्रकार अध्यात्मशास्त्रोंमें वर्णित है। वही वचन मुझे स्मरण हो आया है। जबसे अयोध्या नगरसे हम आये हैं तबसे मनको तृप्त करने लायक कोई ध्यान हमने नहीं किया है। इसलिए समुद्रतटमें रहकर एकदफे ध्यान कर परमात्माका दर्शन कर लेना चाहिए।

भरतेश्वरके इस वचनको सुनकर बुद्धिसागर मंत्रीने प्रार्थना की कि स्वामिन्! हमारी विनंति है कि ध्यान करनेके लिए समुद्रतट उपयुक्त है यह मुझे स्वीकार है। परंतु पहिले अपन जिस कार्यके लिये यहांपर आये हैं वह कार्य पहिले करना अपना धर्म है। सबसे पहिले शत्रुको अपने वशमें करें। बादमें आप निराकुल होकर ध्यान करें, इसमें हमें कोई आपत्ति नहीं है।

मंत्री! भरतेश्वर बोले! तुम इतना डरते क्यों हो? क्या मागध मेरे लिए शत्रु है? सूर्यके लिए उल्लूकी क्या परवाह है? मैं ध्यान करनेके लिए बैठूं तो वह अपने आप आकर मेरे वशमें होगा। आप लोग तृणको पर्वत बनानेके सामान उसकी बढवारी कर रहे हैं। क्या गणबद्ध देवसेवकोंको आज्ञा देकर उसे यहांपर बांधकर मंगावूं? वह भी जानेदो! वज्रखंड नामक धनुष्यको अग्निवर्षक बाणका संयोगकर

उसके नगरमें भेजकर भस्म करावूं ? वह भी जाने दो । मयदेवको आज्ञा देकर पर्वतको गिरावूंगा एवं इस समुद्रके बीचमें पुल बंधवाकर अपनी सेनाको वहांपर भेजूंगा और उस भूतोंके राजाको मेरे नौकरोंके हाथसे यहांपर मंगावूंगा । उसके लिए चक्रकी जरूरत नहीं, धनुषकी जरूरत नहीं, मेरे साथ जो राजपुत्र हैं उनको भेजकर उनकी वीरतासे उसे यहां खिंचवा लावूंगा । मंत्री ! तुम विचार क्यों नहीं करते ? यदि आज हम इससे डरें तो आगे विजयार्द्ध गुफामें रहनेवाले दो बडे २ राजावोंको किस प्रकार जीतेंगे । फिर तो उस विजयार्द्धके उस पार तो अपन नहीं जासकेंगे । आप लोग इस प्रकार निरुत्साहित क्यों होते हो ? मेरे लिए यह कोई बडी वात नहीं हैं । एक दफे इस समुद्रतटमें परमात्मसंपत्तिका दर्शन कर लूंगा । वुद्धिसागर ! मेरे लिये तो उस मागधको जीतना डोंबरके खेलके समान है । तुम लोग इतनी चिंता क्यों करते हो ? मैं परमात्माके शपथपूर्वक कहता हूं कि उसे मैं अवश्य वशमें कर लूंगा, तुम लोग चिंता मत करो । जिस समय मैं परमात्माका दर्शन करता हूं उस समय कर्मपर्वत भी झर जाते हैं । फिर यह मागध किस खेतकी मूली है ? कल ही लाकर अपनी सेवामें उसे लगा दूंगा । आप लोग देखें तो सही । एक बाणको भेजकर उसके अंतरंगको देखूंगा । नाखूनसे जहां काम चलता है वहां कुल्हाडेकी क्या जरूरत है ?

उसके लिये आप लोग इतनी चिंता क्यों कर रहे हैं ? वह आवे तो ठीक है ! नहीं आवे तो भी ठीक है । क्यों कि मेरी वीरताको बतानेके लिये मौका मिलेगा ।

कर्मसमूहोंको जीतनेके लिये मुझे विचार करना पडता है । परंतु इस समुद्रमें कूर्मके समान रहनेवाले उस मागधामरको जीतनेके लिये इतनी चिंता करनेकी क्या जरूरत है ? आप लोग मर्मज्ञ हैं, जाईयेगा ।

मैं तीन दिनतक ध्यानमें रहकर बादमें उसके पास एक बाण भेजकर यहांपर आवूंगा । यह राजयोगांग है । आपलोग सेनाकी रक्षा होशियारीसे करें । इस प्रकार कहते हुए भरतेश्वरने मंत्री व सेनापतीको

अनेक वस्त्राभूषणोंको उपहार में देकर विदा किया। तदनंतर स्वयं समुद्रतटमें गये। वहांपर पहिले से ही विश्वकर्मा रत्नने भरतेश्वरको ध्यान करने योग्य प्रशस्त योगालयका निर्माण कर रखा था। उसमें प्रवेश कर राजयोगी भरत योगमें मग्न हो गये।

योगशास्त्रमें ध्यानके लिये आठ अंग प्रतिपादित हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, कोमलधारणा और सुसमाधि इस प्रकार अष्टांगयोगमें भरतेश्वर एकाग्रचित्तसे मग्न होगये।

किसी व्यक्तिको कोई निधि मिली हो, उसे वह जिसप्रकार लोगोंके सामने नहीं देखकर एकांतमें लाकर देखता है, उसी प्रकार भरतेश्वर भी उस आत्मनिधिको समुद्रतटके एकांतमें लाकर देखरहे हैं।

भरतेश्वर पीछे भी अनेक वार ध्यान करते थे। परंतु उस दिनका योग तो कुछ और ही था। उस दिन योगमें आनंद, उल्लास, उत्साह व एकाग्र अधिक था। इसलिये भरतेश्वर अपने आप अत्यंत प्रसन्न हुए।

विशेष क्या? पर्वयोगसंधिमें जो ध्यानका वर्णन किया है, उसी प्रकार भरतेश्वर ध्यान मग्न हो गये और दुर्वार कर्मोंकी उन्होने सातिशय निर्जराकर अपूर्व आत्मसुखका अनुभव किया।

तीन दिनके ऊपर तीन घटिका और व्यतीत हो गई। परंतु भूख, प्यास वगैरह की कोई बाधा भरतेश्वरको नहीं हुई। तीन लोकमें सार कहलानेवाले आत्मसुखामृतका सेवन करने पर लौकिक भूख प्यास क्योंकर लगेगी?

तीसरे दिन पारणाके बाद विश्रांति ली। तदनंतर दुपहर के समय सोनेके रथपर आरूढ होकर समुद्रमें धीरवीर चक्रवर्तिने प्रयाण किया।

ध्वज, घंटा, कलश, पुष्पमाला इत्यादिसे उस अजितंजय नामक रथका खूब श्रृंगार किया गया था। एक गणबद्ध देव उस रथका सारथी है। वह अपने चातुर्यसे भूमिपर जिस प्रकार रथ चलाता हो उसी प्रकार उस जलपर भी चला रहा है। अनेक तरंग एकके बाद एक आरहे हैं। उन सबको पार कर वह रथ आगे बढ रहा है।

इस प्रकार बारह योजनतक प्रयाण करनेके बाद जहाजके मुक्का-मके समान उस रथने भी मुक्काम किया। रथ आगे न बढकर जिस समय ठहर गया उस समय ऐसा मालुम हो रहा था कि शायद समुद्रने भरतेश्वरसे प्रार्थना की है कि स्वामिन्! अब आप आगे न बढें। क्यों कि और भी आप आगे बढेंगे तो शत्रुगण डरके मारे भाग जायेंगे। इसलिये आपका यहां ठहरना उचित है।

चक्रवर्तिने वहींपर खडे होकर अपने धनुष व बाणको तान दिया। जिस प्रकार भरतेश्वर योग करते समय कर्मके स्थानको ठीक पहिचान-कर काम करते हैं उसी प्रकार यहां भी ठीक शत्रुके स्थानको पहिचा-नकर बाणका प्रयोग किया। उस बाणगर्जनासे आकाशमें, भूमिमें व जलमें एक विप्लवसा मचगया। उस बाणको प्रयोग करते समय राजा भरतने हूंकार शब्द किया, बाणने टंकार किया, इन दोनों भीषण शब्दोंसे जगत्में सब जगह त्राहि त्राहि मचगई। सेनाके हाथी, घोडे वगैरह सब डरके मारे इधर उधर भागने लगे। समुद्र तो अपने तीरको भी पारकर दहीके घडेके समान बाहर फैल गया। इसी प्रकार ऊर्ध्व-लोक, मध्यलोक व पाताललोक सभी कंपायमान हुए। विशेष क्या? मागधामरके नगरमें समुद्रके पानीने उमडकर लोगोंको भय उत्पन्न किया। वह नगर कंपायमान हुआ। इस प्रकार वह बाण अपने वेगसे जाकर मागधामपर जिस दरबारमें विराजमान था वहींपर एक खंभेमें लगा। उसका शब्द उस समय अत्यंत भयंकर था।

एकदम दरबारके सब मनुष्य भयभीत होगये, जैसे किसी शेरको देखनेपर सामान्य प्राणियोंकी झुण्ड भयभीत होती है। परंतु मागधामर अत्यंत गंभीर है। वह अपने सिंहासनपर ही बैठकर विचार करने लगा कि यह किसकी करतूत है? सब लोगोंको उन्होंने समझाया कि आप लोग घबरावें नहीं। और अपने पासके एक सेवक को कहा कि उस बाणके साथ जो चिट्ठी लगी हुई है उसे इधर ले आवो। उसी समय एक सेवकने डरते डरते उस पत्रको लाकर दिया। उसे पासमें खडे हुए पत्रवाचकको बांचनेकी आज्ञा हुई। उसने बांचना प्रारंभ किया।

श्रीमन्महाराज, आदिनाथ तीर्थंकरके प्रथमपुत्र, गुरुहंसनाथभावक, उन्मत्तराजगिरिवज्रदंड, प्रचण्डदुर्मुखराजनाशक, अरिराजमेघझंझानिल, कर्मकोलाहल, मृत्युकोलाहल, धर्मपालक, प्रजापालक, भरतचक्रेश्वरकी ओरसे सेवक मागधामरको निरूप दिया जाता है कि तुम सीधी तरहसे आकर कलतक हमारी सेवामें उपस्थित होना। यह हमारी ओरसे राजाज्ञा है।

इस पत्रको सुनते ही मागधामर क्रोधसे अत्यंत लाल हो गया। एकदम दांतोंको चबाते हुए कहने लगा कि उस पत्रको फाडो, जलावो। कहांका यह भरत, गिरत, मैं नहीं जानता हूं। हमारे समुद्रमें यह आया कैसे? कहां है अपनी सेना, बुलावो। मैं अभी इसे मजा चखावूंगा। देखो तो सही! पत्रमें क्या लिखता है? मैं क्या इसका सेवक हूं। मुझे आज्ञा देने आया है। समुद्रमें रहनेवाले कैसे होते हैं सो इसे अभी पता नहीं। सो बताना होगा कि वे इतने भोले नहीं कि इसके झांसेमें आजाय। वह आखरको भूचर है, हम व्यंतर हैं। हमारे सामने वह कहांतक अभिमान बतला सकता है? हमारे सामने यह क्या चल सकता है? भूतनाथोंकी वीरता अभी उसे मालुम नहीं है। रहने दो! मैं क्या उसको वश हो सकता हूं? कभी नहीं। सेनापति! बुलावो! हमारे वीर कहां है? उस भरतको जरा गरत करेंगे।

मागधामरका क्रोध बढ ही रहा था। उसके पासमें ही मंत्री, सेनापति आदि परिवार भी उपस्थित है। उन लोगोंने बहुतसे नीतिपूर्ण वचनोंसे प्रयत्न किया कि किसी तरह इसका क्रोध शांत हो जाय। स्वामिन्! आप क्रोधित नहीं हूजियेगा। आपके लिये यह क्या बडी बात है। हम सब उसकी व्यवस्था करेंगे। आप शांतचित्तसे विराजे रहियेगा। दरबारको बरखास्त करनेकी आज्ञा दीजियेगा। तदनंतर एकांतमें इस संबंधमें विचार करें।

इतनेमें दरबारके इतर सब लोग चले गये। कुछ मुख्य मुख्य लोग बैठकर विचार करने लगे। एवं कहने लगे कि राजन! वह धीर

हो ! प्रौढ हो ! गंभीर हो ! तुम्हारी बराबरी करनेवाले लोकमें कौन है ? ऐसी अवस्थामें तुम्हारे विशाल भाग्यके अनुसार ही तुमको चलना चाहिये । क्षुद्रलोगोंके समान चलना उचित नहीं है । तुम महलमें रहो । क्रोधको छोडकर हमारी बातको सुनो । हमारे कार्यको देखते जावो । लोक सब तुम्हारी प्रशंसा करें, उस प्रकार हम कर देंगे । इस प्रकारकी बात सुनकर मागधामरने मंदहासकर कहा कि अच्छा ! आप लोग क्या कहना चाहते हैं कहिये तो सही ।

अब उन मंत्रीमित्रोंने समझ लिया कि इसका मन कुछ शांत हुआ है । अब बोलनेमें कोई हर्जकी बात नहीं । आगे कहने लगे कि स्वामिन् ! भरतचक्रेश्वर सामान्य नहीं है, वह देवाधिदेव भगवंतका पुत्र है । उसकी महत्ताको तुम सरीखे ही जान सकते हैं । पागल व्यंतर किस प्रकार जान सकते हैं ? भरतेश्वर अद्भुत संपत्तिके स्वामी हैं ! उनको किसीका भी किंचित् भी भय नहीं है । और तद्भव मोक्षगामी हैं । उसकी चिद्भूतिका देखनेपर तुम्हें प्रसन्नता हुए विना नहीं रह सकती । भरत षट्खण्डको पालन करनेके पुण्यको प्राप्तकर उनका जन्म हुआ है । फिर उस भाग्य को कौन हटा सकते हैं ? तुम विवेकी है । इस बातका विचार तो करो ।

वह इतना वीर है कि विजयार्ध पर्वतके वज्रकपाटको मट्टीके घडेके समान क्षणमात्रमें फोड डालेगा । वह भरत सामान्य नहीं बडे २ पर्वतोंको उखाडकर समुद्रमें पुल बांधकर समुद्रको पार करेगा । देखो ! वह कितना बुद्धिमान है ! बाणका प्रयोग किया कि सीधा आकर वह उस खंभेमे लगा है । जैसा कि उसके लिये यह कोई अनुभूत ही स्थान हो । उसकी बुद्धिमत्ताके लिये इससे अधिक और साक्षीकी क्या जरूरत है । हाथ कंगनको आरसी क्या ?

समुद्रमें ही खडे होकर उसने बाणको आज्ञा दी कि खंभेमें जाकर लगो तो वह बाण खंभेपर आकर लगा । यदि किसी शत्रुके हृदयको चीरनेके लिये आज्ञा देता तो वह शत्रुके प्राण लिये विना क्या लौट सकता

था ? कभी नहीं। वह मंत्रास्त्र है। और भी विचार करो। बाणके साथ जो व्यक्ति पत्रको भेज रहा है क्या वह अग्निकी ज्वालावोंको नहीं भेज सकता है? उसका परिणाम क्या हो सकता था, जरा विचार तो करो।

खंभेपर लगे हुए बाणको दिखाकर उपर्युक्त प्रकार जब समझाया, तब मागधामरको विश्वास हुआ कि सचमुचमें भरत वीर है। जब उसने यह सुना कि भरत विजयार्द्ध पर्वतके वज्रकपाटको मट्टीके घडेके समान फोडेगा उससे और भी घबराया। मुंह खोलकर हका बका होकर सुनने लगा।

मंत्रियोंने कहा कि राजन्! सामनेकी शक्ति और अपनी शक्तिको देखकर एवं विचारकर युद्ध करना यह बुद्धिमत्ता है। यदि अभिमान वश होकर अपन आगे बढें, फिर हार जावें तो लोकमें परिहास होता है। युद्ध करना वीरोंका कर्तव्य है, परंतु उसका विचार न कर अपने से अधिकके साथ यदि युद्ध करें तो श्रेयस्कर कभी नहीं हो सकता।

अपने लिये जो समान है उसके साथ युद्ध करना ठीक है। अपने से अधिकके साथ युद्ध करना तो स्वयंका सामना स्वयं करना है। यह वचन तो मागधामरके हृदयमें अच्छी तरह जम गया। वह मन मनमें ही भरतकी वीरतापर अभिमान कर रहा था।

राजन्! शायद तुम समझोगे कि हम लोगोंने अपने स्वामीकी इच्छाके विरुद्ध दूसरोंकी प्रशंसा की। परंतु वैसा विचार नहीं करना चाहिए। दर्पणके समान परिस्थितिको ज्योंका त्यों वर्णन किया है। यह तुम्हारे अच्छेके लिए है।

अपने स्वामीकी निंदाकर दूसरोंकी प्रशंसा करना यह सचमुचमें नीचवृत्ति है। हम लोगोंने अंतमें जीतनेके उपायको कहा है। आपके कार्यको बिगाडनेका उपाय हम लोग नहीं कह सकते। आज थोडासा आपको हमारे वचन कठिन मालुम होते होंगे। परंतु इसका फल अच्छा होगा। हम लोगोंने आपके हितके लिए ही उचित निवेदन किया है। यदि आपके मनमें आवें तो स्वीकार करें नहीं तो छोड देवें।

कुलवृद्धोंके हितपूर्ण वचनोंको सुनकर मागधामरको पूर्ण निश्चय हुआ कि भरत सचमुचमें असाधारण वीर है। उससे मैं जीत नहीं सकता। वह किंकर्तव्यविमूढ हुआ। सिरको खुजाते हुए कहने लगा कि फिर अब आगे क्या करना चाहिये? यह तो बोलिये। तब वे कहने लगे कि आगे क्या करना? यही कि बहुत संतोषकेसाथ जाकर भरत चक्रवर्तीके चरणोंकी वंदना करना। वह आदितीर्थंकरका पुत्र ही तो है न? फिर क्या हर्ज है।

उसके चरणोंकी वंदना करनेसे अपनी इज्जत घट नहीं सकती। छहखण्ड भूमिमें उसके साथ विरोध करनेवाले कौन हैं? उसके गुणों पर मुग्ध होकर उसको वंदना कौन नहीं करते? विशेष क्या? वह तद्भवमोक्षगामी है। इसलिये उसकी वंदना करनेमें क्या दोष है? अपने जैसे भक्तिसे जो उसे नमस्कार नहीं करते हैं वह कल ही शक्तिसे कराता है। ऐसी अवस्थामें पहिलेसे जाकर नमस्कार करना यह महायुक्ति है। इस वचनको सुनकर मागधामरने उसकी स्वीकृति दी। हितैषियोंके वचनको स्वीकृत करनेके उपलक्ष्यमें उन लोगोंने मागधामरकी हृदयसे प्रशंसा की। नीतिमान् राजाकी प्रशंसा कौन नहीं करेगा?।

राजन्! कल आनेके लिये चक्रवर्तीने आज्ञा दी है, इसलिये कल ही जायेंगे। आज सायंकाल हो गया है। इस प्रकार विचार कर बहुत आनंदमें मग्न होगये।

इधर भरतेश्वरने जब बाणका प्रयोग किया था, उसके बाद ही उन्होंने अपनी सेनाकी तरफ जानेके लिये तैयारी की। सारथीको आज्ञा देते ही उन्होंने रथको वापिस घुमा लिया।

अनेक प्रकारकी घंटियां बज रही हैं। उसकी पताकायें आकाशमें फडक रही हैं। उस रथको देखने पर ऐसा मालुम होता है कि शायद मेरुपर्वत ही आ रहा हो! घोडे भी अब वापिस जानेके कारण जरा तेजीसे जाने लगे हैं। उस रथ में वज्रदण्ड एक तरफ शोभा को प्राप्त हो रहा था। भरतेश्वर अपने दाहिने हाथको टेककर उस रथ पर बहुत

वीरताके साथ विराजे हुए हैं। बांये हाथमें पंचरत्न से निर्मित बाण है। उसे देखनेपर ऐसा मालुम होता था कि शायद इंद्रधनुष ही है। उस समय भरतेश्वर भी इंद्रधनुष सहित हिमालय पर्वतके समान मालुम होते थे! दोनों ओर से भरतेश्वरको चामर डुल रहे हैं।

जिस समय भरतेश्वर वापिस लौटे हैं, यह समाचार सेनाको मिला उसके आनंदका पारावर नहीं रहा। सभी वीर हर्षध्वनि करने लगे। सभी जयजयकार करने लगे।

सेनास्थान अब निकट आया। बाणकों रथमें ही छोड दिया। सारथिको सन्मान करनेके लिये एक रथिकको आज्ञा देकर भरतेश्वर चले गये। सामनेसे मंत्री, सेनापति, राजपुत्र आदिने आकर बहुत भक्तिसे नमस्कार किया।

इसी प्रकार अन्य वीर, व्यापारी, वेश्यागण, हाथीके सवार घुडसवार वगैरे सबलोग भरतजीको नमस्कार कर रहे थे। कविगण कविता कर रहे थे। स्तुतिपाठक स्तोत्र कर रहे थे। भट्टगण हाथ उठाकर आशिर्वाद देते थे। वेत्रधारीगण सावधान आदि सुंदर शब्दोंका उच्चारण कर रहे हैं। इन सबको सुनते हुए देखते हुए भरतेश्वरने अपनी महलमें प्रवेश किया। भरतेश्वरकी राणियोंनें बहुत भक्तिके साथ प्राणेशकी आरती उतारी। उसके बाद पूज्य चरणोमें मस्तक रखा।

राणियोंको भरतेश्वरका वियोग चार दिनसे हुआ है। परंतु उनको चार युगके समान मालुम हो रहा है। ऐसी अवस्थामें पतिके घरमें आनेपर उनको कितना हर्ष हुआ होगा यह पाठक स्वयं विचार करें।

अपनी स्त्रियोंके साथ भरतेश्वरने सायंकालका भोजन किया एवं सायंकालमें करने योग्य जिनवंदनासे निवृत्त होकर महलमें बहुत लीलाके साथ रहे। वह रात प्राय: समुद्रप्रयाण व ध्यानकी चर्चामें ही व्यतीत हुई। पतिकी जीतपर उन राणियोंको भी बडा हर्ष हुआ। पाठक भूले न होंगे कि भरतेश्वरने मंत्रि सेनापतिसे कहा था कि मागधामरको जीतनेके संबंधमें आपलोग चिंता मत करो। मैं थोडासा ध्यान करलेता

हूं। फिर आपलोग देखियेगा उसे मैं अपने पास मंगालूंगा। उसी प्रकार भरतेश्वरको उस व्यंतरको वश करनेमें सफलता मिली। एक ही बाणके प्रयोगसे उसका गर्व जर्जरित होगया। क्या इतना सामर्थ्य उस ध्यानमें है? हां! है। परंतु आत्मविश्वास होना चाहिये।

भरतेश्वरको भरोसा था कि मैं आत्मबलसे सब कुछ कर सकता हूं। वे रात दिन इस प्रकार चिंतवन करते थे कि:—

अगणित दुःखोंको देकर सतानेवाली कर्मरूपी बडे भारी सेनाको केवल एक दृष्टि फेंककर ही जीतनेका सामर्थ्य इस परमात्मामें हैं। इसलिये हे परमात्मन्! तुम मेरे हृदयमें बराबर बने रहो।

हे सिद्धात्मन्! कामदेवरूपी मदोन्मत्त हाथीके लिये आप सिंहके समान हैं। ज्ञानसमुद्रको उमडानेके लिये आप चंद्रके समान हैं। कर्मपर्वतको आप संहार करचुके हैं। इसलिये हमें भी उसी प्रकारका सामर्थ्य दीजियेगा। ताकि हम भी कर्मसे कायर नहीं बनें।

ऐसी अवस्थामें भरतेश्वरसदृश वीरोंको लौकिकशत्रुवोंकी क्या परवाह है?

इति राजविनोद संधि

आदिराजोदय संधि।

प्रातःकालमें उठकर भरतेश्वर नित्यक्रियासे निवृत्त हुए। स्नान व देवार्चन कर उन्होने अपना श्रृंगार किया। अब उनको देखनेपर देवेंद्रके समान मालुम हो रहे हैं। उसी प्रकारके श्रृंगारसे आकर उन्होंने दरबारको अलंकृत किया।

बहुतसे राजा व राजपुत्र आज दरबारमें एकत्रित हुए हैं। उन लोगोंनें सम्राट्को अनेक उत्तम उपहारोंको समर्पणकर नमस्कार किया व अपने अपने स्थानमें विराजमान हो गये।

विचारशील मंत्री, प्रभावशाली सेनापति, भरतेश्वरके पास ही बैठे हुए हैं। पीछेकी ओरसे गणबद्ध देव हैं। पासमें ही मित्रगण हैं। कुछ दूरसे वैश्यायें हैं। सामने वीरयोद्धावोंका समूह है।

इसी प्रकार कविगण व विद्वान लोग सामने खडे होकर अनेक कवितावोंको पाठ कर रहे थे। दोनों ओरसे चामर डुल रहे हैं। कोई गायक प्रातःकालके रागमें गायन कर रहे हैं। उसे भरतेश्वर चित्त लगाकर सुन रहे हैं। कोई तांबूल देरहे हैं। उसे भी स्वीकार कर रहे हैं। एक दफे सम्राटकी दृष्टि क्षत्रियपुत्रोंपर पडती है और एकदफे राजावोंकी ओर जाती है। दीर्घसेनाको देखते हुए साथमें गायन भी सुनते जारहे हैं। ललित रागका गायन बहुत अच्छा हुआ। उसमें भी आत्मकलाका वर्णन था। राजन्! आप कलाको अच्छी तरह जानते हैं। इसलिये आप प्रसन्न होंगे। इस प्रकार अनुकूल नायकने कहा। स्वामिन्! एक एक अक्षरको अच्छी तरह भिन्न २ कर अत्यंत सुस्वरके साथ गारहा था, इस प्रकार दक्षिणनायकने कहा।

नहीं! नहीं! शक्कर और दूध मिलाकर पीनेमें जो आनंद आता है, वह इस गायनमें आया है! इस प्रकार कुटिलनायकने कहा।

शठः—तान, आलाप, व गायकका गांभीर्य वह सब भरतेश्वरके हृदयको प्रसन्न करने काबिल हैं।

जानेदो जी! आप लोग सबके सब एक रागकी ही प्रशंसा करते जारहे हैं। हम तो यही कहना चाहते हैं कि श्रीगुरुहंसनाथको उसने कोयलके समान गाकर बतलाया। इस प्रकार नागरने कहा।

बहुत पटुत्वके साथ उसने मलहरि रागके द्वारा निष्कुटिल आत्मतत्वका वर्णन किया। सरस्वतीने ही शायद चक्रवर्तीका दर्शन किया ऐसा हुआ। इस प्रकार विटने कहा। जिस प्रकार मत्स्य जलमें चमकता है उसी प्रकार चमकीले गायनको उसने गाया, इस प्रकार पीठमर्दकने कहा।

नहीं जी! शुष्क मुखवीणामें अध्यात्मऔषधरसको भरकर वैषय रोगियोंके कानको ठीक किया है, इस प्रकार विदूषकने कहा।

इस प्रकार भिन्न २ तरहके वचनोंको सुनते हुए भरतेश्वर मनमें ही संतुष्ट हो रहे थे। एवं गायनको सुनते हुए जिनके गायनसे प्रसन्न होते थे, उनको अनेक प्रकारसे इनाम दे रहे थे।

एक एक कलासे प्रसन्न होकर व आत्माको विचार करते हुए सिंहासन पर विराजमान हैं। इतने में मंदाकिनि नामक दासीने अर्ककिर्तिकुमारको लाकर सम्राटके हाथमें देदिया।

स्वामिन्! राजदरबारमें आनेके लिए कुमारने हठ किया है। इस लिए मैं यहांपर लाई हूं। इतनेमें सभाका हल्ला गुल्ला सब बंद हो गया। सभी लोग उस बच्चेकी सुंदरतापर मुग्ध होकर देखने लगे।

सम्राट्ने बच्चेको अपनी गोदपर बैठालकर उसके साथ प्रेम संलाप करनेको प्रारंभ किया। वह बालक उस समय बहुत सुंदर मालुम होने-लगा। उत्तम जातिका रत्न जिसप्रकार रत्नोंमें कोई विशेष स्थान रखता है उसी प्रकार यह रत्न भी कुछ खास विशेषताको लिये हुए था।

पिताका ही सौंदर्य है, पिताका ही रूप है। पिताका ही स्वरूप है, पिताकी ही दृष्टि है। सब कुछ एक ही सांचा है। ऐसा सुंदर पुत्र गोदपर आनंदसे बैठा हुआ है। उस कुमारने अनेक रत्ननिर्मित आभरणोंको धारण किये थे। उससे उसका सौंदर्य और भी द्विगुणित होगया था।

एकदफे भरतेश्वर बच्चेकी ओर देखकर हसते हैं, एकदफे चुंबन देरहे हैं। एकदफे उसे उठाते हैं। इस प्रकार अनेक तरहसे उसके साथ प्रेमव्यवहार कर रहे हैं। भरतेश्वर बच्चेको कह रहे हैं कि बेटा! आदितीर्थंकर शब्दको उच्चारण तो करो। तब वह "आदिकंर" कहने लगा। भरतेश्वर हसने लगे। आत्माके वर्णन करते हुए बच्चेसे कहा कि अच्छा! चिदंबरपुरुष ऐसा बोलो। कहने लगा कि चिंबरपूस। भरतेश्वर जोरसे हसने लगे। अच्छा! गुरुनिरंजनसिद्ध! बोलो। कुमार कहने लगा कि निंजसिद्ध। पुनः भरतेश्वरको हंसी आई।

फिर भरतेश्वर सब राजावोंको दिखाते हुए पूछने लगे कि बेटा! सामने बैठे हुए ये लोग कौन हैं? तब उस बच्चेने हाथको आगे न कर अपने बांये पैरको ही आगे किया।

तब सब राजावोंनें आपसमें बातचीत की कि देखो तो सही बच्चेकी बुद्धिमत्ता! हम लोगोंको अपने पादसेवकोंके रूपमें समझ

रहा है । इसलिये पैरको आगे कर रहा है । आदि चक्रवर्तीके पुत्रके लिये यह साहजिक है ।

अर्ककीर्ति कुमार अपने मुखको भरतेश्वरकी कानके पास लेगया । उस समय ऐसा मालुम होरहा था कि शायद पितासे पुत्र कुछ गुप्तमंत्रणा ही कर रहा हो । तब बुद्धिसागर कहने लगा कि स्वामिन् ! अब मुझे मंत्रित्वकी जरूरत नहीं है । पिता राजा है, पुत्र मंत्री है । फिर आप लोगोंकी बराबरी करनेवाले लोकमें कौन है ?

उतनेमें सब राजावोंने आकर उस बच्चेको अनेक प्रकारके उपहारोंको समर्पण किया । क्योंकि वे बुद्धिमान थे, अतएव वे समझते थे कि यह हमारा भावीरक्षक है । भरतेश्वरने कहा कि बच्चेके लिये उपहारकी क्या जरूरत है । आप लोग इस झगडेमें पडे नहीं । ऐसा कहने पर राजावोंने बहुत विनयसे कहा कि स्वामिन् ! हम लोगोंकी इतनी सेवाको अवश्य स्वीकृत करनी चाहिये ।

तदनंतर राजपुत्र व राजावोंने आकर उस पुत्रको अनेक रत्न, सुवर्ण वगैरहको समर्पण किया । वहांपर सुवर्ण व रत्नका पर्वत ही हुआ । भरतेश्वरका भाग्य क्या छोटा है ?

सब लोग भेंट समर्पणकर बालकको देखते हुए खडे थे । भरतेश्वरने कहा कि बेटा ! सब लोग परवानगी लेनेके लिये खडे हैं । जरा उनको अपने स्थानमें जानेके लिये कहो तो सही ! तब बालकने अपने मस्तक व हाथको हिलाया । तब सब लोगोंने समझ लिया कि अब जानेके लिये अनुमति दे रहा है । तब भरतेश्वरने कहा कि बेटा ! ऐसा नहीं ! सबको तांबूल देकर भेजो, खाली हाथ भेजना ठीक नहीं । तब उस बच्चेने तांबूलकी थालीको अपने हाथसे फैला दी । सब लोगोंने बहुत हर्षके साथ तांबूलका ग्रहण किया ।

भरतेश्वरने फिर पूछा कि बेटा ! इस सुवर्णकी राशिको किसे देवे ! तब उसने सामने खडे हुए सेवकोंकी ओर हाथ बढाया । तब राजाको उसकी बुद्धिमत्तापर आश्चर्य हुआ ।

स्वामिन् ! क्या कल्पवृक्षके बीजसे जंगली पेडकी उत्पत्ति हो सकती है ? क्या तुम्हारे पुत्रोंमें अल्पगुण स्थान पासकते हैं ? कभी नहीं। इस प्रकार विद्वानोंने उस समय प्रशंसा की।

इस प्रकार अनेक विनोदसे विद्वान् व सेवकोंको सुवर्णदान देकर जब भरत बहुत आनंदसे विराजमान थे उससमय गाजेबाजेका शब्द सुननेमें आया। आकाशप्रदेशमें ध्वजपताका, विमान, इत्यादि दिखने लगे। वह व्यंतरोंकी सेना थी। समुद्रकी ओरसे आरही है। मंदाकिनी दासीको बुलाकर उसे कुमारको सोंप दिया। और महल की ओर ले जानेके लिये कहा। और स्वतः मेरुके समान अचल व समुद्रके समान गंभीर होकर विराजमान हुए।

मागधामर आकाशमार्गसे ही भरतेश्वरकी सेनावोंको देखते हुए आरहा था। उसे उस विशाल सेनाको देखकर आश्चर्य हुआ। उसका पराक्रम जर्जरित हुआ। मनमें ही विचार करने लगा कि इसके साथ मैं कैसे जीत सकता था। इसके साथ वक्रता चलसकती है ? कभी नहीं। समुद्रके तटपर ही विमानसे उतरकर मागधामर स्वामीके दर्शनके लिये भरतेश्वरके दरबारकी ओर पैदल ही चला।

इतनेमें बीचमें ही एक घटना हुई। चुगली खोरने आकर भरतेश्वरकी सेनाके एक योद्धा के साथ कुछ कहा। वह मागधके नगरमें रहता है। परंतु भरतेश्वरका भक्त है। इसलिये पहिले दिन मागधामरके दरबारमें जो बातचीत हुई उन सबको उसने उससे कह दी।

चक्रवर्तीके प्रति मागधामरने पहिले दिन जो तिरस्कारयुक्त वचनोंका प्रयोग किया था वह सब उसे मालुम हुआ। वह योद्धा उससे अत्यधिक क्रोधित हुआ। उसने चुपचापके जाकर भरतेश्वरकी कानमें सब बातोंको कहा व चला गया।

मागधामर छत्र, चामर, इत्यादिक वैभवके चिन्हों को छोडकर चक्रवर्तीके दर्शनको आगे बढरहा है। वह दीर्घमुखी है। आयत नेत्रवाला है। दीर्घशरीरी है। साहसी है। व अनेक रत्नमय आभरणों को उसने धारण किये हैं।

अपने साथके सब लोगों को बाहर ही ठहरनेके लिये आज्ञा देकर स्वयं व मंत्रीने हाथमें अनेक प्रकारके रत्न आदि उत्तमोत्तम उपहारोंको लेकर दरबारमें प्रवेश किया।

दरवाजेमें बहुतसे रत्नदण्डको लिये हुए द्वारपालक मौजूद हैं। उनकी अनुमतिको पाकर मागधामरने अंदर प्रवेश किया।

अंदर जाकर एक दफे तो वह हक्का बक्का होगया। बाहर कोसोंतक व्याप्त हाथी, घोडे रथ इत्यादिको देखकर तो उसके हृदयमें आश्चर्य उत्पन्न होगया था। अब अंदर अगणित प्रतिभाशाली राजा व राजपुत्र भरतेश्वरकी सेवामें उपस्थित हैं। उन सबके बीचमें रत्नमय सिंहासनपर आरूढ होकर विराजे हुए भरतेश्वर कुलगिरियोंके मध्यमें स्थित मेरूके समान सुंदर मालुम होते थे। उनके शरीरके रत्नमय-आभरण वगैरहके तेजसे वे साक्षात् पूर्वदिशामें उदय होनेवाले सेतजसूर्यके समान मालुम होते थे।

भरतेश्वरका सौन्दर्य तो लोकमोहक था। पुरुष देखें तो भी मोहित होना चाहिये। इस प्रकारकी सुंदरताको देखकर मागधामर मुग्ध हुआ यह कहें तो फिर जो स्त्रियां एकदफे भरतेश्वरको देख लेती हैं उनकी क्या हालत होती होगी?

बीचबीचमें ठहरते हुए और बहुत विनयके साथ स्वामीके पास सेवक जिस प्रकार आता हो मागधामर चक्रवर्तीके पास आरहा है। चक्रवर्तीने उसके प्रति क्रोधपूर्ण दृष्टिसे देखकर पासमें खडे हुए संधिविग्रहियोंसे पूछा कि क्या यही मागध है? तब उन लोगोंने उत्तर दिया कि स्वामिन्! यही मागध है, बडा आदमी है, आपके सामने है, देखें। तब चक्रवर्तीने "अरे मागध! कल तुम बहुत जोरमें आया था न? गुलाम! क्या तुम्हें समुद्रमें रहनेका अभिमान है? अच्छा!" कहा।

इतनेमें मागधामर डरके मारे कंपने लगा। और स्वामिन्! मेरे अपराधको क्षमा करो। इस प्रकार कहते हुए वह भरतेश्वरके चरणमें गिरपडा। चक्रवर्तीको हंसी आई। कहने लगे कि उठो! घबरावो मत! इतनेमें एकदम उठ खडा हुआ।

' स्वामिन् ! तीन छत्रके धारी त्रिलोकाधिपतिके पुत्रके साथ किसका अभिमान चल सकता है ? हम लोग तो कुएमें जिस प्रकार मेंढक रहता है उस प्रकार पानीके बीच एक द्वीपमें रहते हैं। ऐसी अवस्थामें देव ! आपके तेजको हम किस प्रकार जान सकते हैं ? । राजन् ! तुम्हारा सौंदर्य कामदेवसे भी बढकर है। तुम्हारी प्रसन्नताको पानेके लिये पूर्वजन्मके सुकृतकी आवश्यकता है। हम क्या, व्यंतर तो भूत हुआ करते हैं। भूत क्यों भ्रांत हैं ! ऐसी अवस्थामें हम तुम्हारे महत्वको क्या जाने ? इस लोकमें एक छोटीसी नदी समुद्रकी निंदा करे, उल्लू हंसकी निंदा करे और मागध भरत चक्रवर्तीकी निंदा करें तो क्या बिगडता है ?

अद्भुत सौंदर्य, भरपूर यौवन, आश्चर्यकारक बुद्धिमत्ताको धारण करनेवाले चक्रवर्तीके सामने हमने जो व्यवहार किया इसके लिये धिक्कार हो। मेरे लिए शर्मकी बात है। राजन् ! आपके समान सौंदर्य प्राप्त करनेके लिए मनुष्यको प्रयत्न करना चाहिये। यदि वह नहीं मिलता हो आपकी प्रसन्नताको प्राप्त करना वह भी बडे भाग्यकी बात है। भोग और योगमें रहकर मुक्त होनेवाले मोक्षभोगीकी बराबरी इस लोकमें कौन करसकता है। इत्यादि अनेक प्रकारसे स्तुतिपाठक भट्टोंके समान मागधामरने भरतेश्वरकी प्रशंसा की।

मागधके वचनसे राजागण व राजपुत्र वगैरे प्रसन्न होकर कहने लगे कि शाहबास ! मागध ! स्वामीके गुणको तुमने यथार्थ रूपसे वर्णन किया है। तुम सचमुचमें स्वामीके हितको चाहनेवाला है। इत्यादि प्रकारसे उसकी प्रशंसा की।

तदनंतर चक्रवर्तीने उसे बैठनेके लिये एक आसन दिलाया व कहा कि मागधामर ! तुम दुष्ट नहीं है। सज्जन है। उस आसनपर बैठो।

स्वामिन् ! मैं बचगया। इस प्रकार कहते हुए मागधामरने साथमें लाये हुए अनेक उपहारोंको भरतेश्वरके चरणमें समर्पण कर मंत्रीसहित पुनः नमस्कार किया। दरबारमें बैठे हुए सभी सज्जनोंने मागधामरकी

सज्जनताके प्रति प्रशंसा की। वुद्धिसागर पासमें ही बैठा हुआ है। उसके तरफ भरतजीने देखा। वह सम्राटके अभिप्रायको समझकर कहनेलगा कि स्वामिन्! मागधामर सज्जन है। व्यंतरलोकमें यह वीरश्रेष्ठ है। शीघ्र ही आपकी सेवाके लिये आने योग्य है। देशाधिपतियोंके संसर्गमें जिनेंद्रके पुत्रको प्रसन्न करनेका भाग्य जिसने पाया है, वह सचमुचमें कृतार्थ है। इसलिये यह मागध भी धन्य है।

तव मागधामर कहने लगा कि मंत्री! तुमने वहुत अच्छा कहा। तुम्हारी वुद्धिमत्ताको मैंने वहुत वार सुनी है। परंतु आज प्रत्यक्ष तुम्हे देखलिया। सचमुचमें तुमने मेरा उद्धार किया।

वुद्धिसागरने मुसकराते हुए कहा कि स्वामिन्! इस मागधको वापिस जानेकी आज्ञा दीजियेगा। फिर आगेके मुक्काममें यह अपने पास आवे। भरतेश्वरने उसी समय मागधामरको पास वुलाकर अनेक प्रकारके उत्कृष्ट वस्त्र व आभूषणोंको उसे देदिये। मागध देवने भेंटमें जिन अमूल्य रत्नोंको समर्पण किये थे उनसे भी बढकर उत्तमोत्तम रत्नोंको चक्रवर्तीने उसे देदिये। चक्रवर्तीको किस वातकी कमी है? केवल अपने चरणोंको नमस्कार करानेकी एक मात्र अभिलाषा उसे रहती है वाकी धनकनक आदि की इच्छा नहीं। इसलिये मागधामरका उसने यथेष्ट सन्मान किया। साथमें भरतेश्वरने यह कहते हुए कि मागध! तुम्हारा मंत्री भी वहुत विवेकी है ऐसा हमने सुना है। उसे भी अनेक प्रकारके उत्तम वस्त्र व आभूषणोंको दिये। और दोनोंको जानेकी आज्ञा दीगई।

"स्वामिन्! मैं कल ही लौटकर आवूंगा। तव तक आपकी सेवामें मेरे प्रतिनिधि ध्रुवगति देवको छोडकर जाता हूं" इस प्रकार कहते हुए मागधने एक देवको सोंपकर चक्रवर्तीको नमस्कार किया, व मंत्रीके साथ चलागया। राजसभाको आनंद हुआ। सव उसीकी चर्चा करने लगे।

भगवन्! इतनेमें और एक घटना हुई। राजमहलसे एक सुंदरी दासी दौडकर आई और हाथ जोडकर कहने लगी कि स्वामिन्,

आपको पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई है। इस हर्षसमाचारको सुनकर उसे एक मोतीके हारको इनाममें देदिया। पुनः उस दासीको पासमें बुलाकर धीरेसे पूछा कि कौनसी राणीको पुत्र प्रसूत हुआ है। तब उत्तर मिला कि कुसुमाजी राणीने कुमारको प्राप्त किया है. इतनेमें सम्राट्ने उसे संतोषके साथ एक हार और दिया। पासके खडे हुए लोगोंको परम हर्ष हुआ। चक्रवर्ती भी मनमनमें ही संतुष्ट हुए। उस समय भी प्रजाजनोंमें हर्ष समुद्र उमडकर आया। अनेक तरहके बाजे बजने लगे। इधर उधरसे आनंदभेरी सुनाई देने लगी। मंदिर वगैरह तोरणसे सुशोभित हुए। लोकमें सब लोगोंको मालुम हुआ कि आज सम्राटको पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई है।

सम्राट भी सिंहासनसे "जिनशरण" शब्दको उच्चारण करते हुए उठे। एवं दरबारको बरखास्तकर महलमें प्रवेश कर गये। तत्क्षण प्रसूतिगृहमें जाकर नवजात बालकको देखा। पासमें ही सौ० कुसुमाजी लज्जाके मारे मुख नीचाकर बैठी हुई है। बालक अत्यंत तेजस्वी है। उसे भरतेश्वरने देखकर "सिद्धो रक्षतु" इस प्रकार आशिर्वाद दिया। फिर वहांसे रवाना हुए। महलमें जहां देखो वहां हर्ष ही हर्ष है। कुसुमाजी राणीको पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई है, इसपर सभी राणियोंको हर्ष हुआ है। सबने आकर भरतेश्वरके चरणमें मस्तक रखकर अपने २ आनंदको व्यक्त किया।

बुद्धिसागर मंत्रीने सब देशोंमें दान, पूजा, अभिषेक आदि पुण्यकार्य कराये। भरतेश्वरकी सेनामें सेनापतिने अनेक हर्षसूचक मंगल कार्य कराये। भरतेश्वरकी संपत्ति क्या कम है? मयव्यंतरके द्वारा रचित दिव्य देवालयमें राजगण, राजपुत्र, प्रजाजन सेनाके योद्धा आदिने बहुत भक्तिके साथ जिनेंद्रकी पूजा की, जिसे देखकर सभी जयजयकार करते थे।

उस दिन जातकर्म संस्कार, फिर बारहवें दिन नामकरण संस्कार किया। भरतेश्वरकी इच्छासे बालकका भगवान् आदिनाथका दिव्य नाम "आदिराज" रखा गया।

नामकर्म संस्कारके रोज मागधामरने अनेक संभ्रम, संपत्ति व सेनाके साथमें उपस्थित होकर चक्रवर्तिका दर्शन किया।

चक्रवर्तीने उसके आगमनके संबंधमें हर्ष प्रकट करते हुए कहा कि मागधको आगेके मुकाममें आनेके लिये कहा था, परंतु वह जल्दी ही लौटकर आया, इससे मालुम होता है कि यह हमारे लिये हमेशा हितैपी बना रहेगा। इसे सुनकर मागधामर हर्षित हुआ। कहने लगा कि स्वामिन्! आपसे आज्ञा लेकर गया जब समुद्रके तटपर ही मुझे समाचार मिला कि आपको पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई है। मेरा विचार वहींसे लौटनेका हुआ था। फिर भी राज्यमें जाकर वहांसे इस प्रसंगके लिये योग्य भेट वगैरह लानेके विचारसे चला गया, और सब तैयारीके साथ लौटा।

चक्रवर्ती कहने लगे कि मागध! तुम्हारेलिये मैंने भरी सभामें तिरस्कारयुक्त वचन बोले थे। तुम्हारे मनको कष्ट पहुंचा होगा। उसे भूल जावो।

स्वामिन्! इसमें क्या बिगडा? आपने मुझे दबाकर सद्बुद्धि दी। आप तो मेरे परमहितैषी स्वामी हैं। इस प्रकार कहते हुए मागधने चक्रवर्तीके चरणोंपर मस्तक रखा।

भरतेश्वर मागधामरपर संतुष्ट हुए व कहने लगे कि मागधामर! जावो! तुम्हारे आधीनस्थ राजावोंके साथ तुम आनंदसे रहो। मेरा तो कार्य उसी दिन हो गया। अब तुम स्वतंत्र होकर रह सकते हो।

स्वामिन्! धिक्कार हो! उस राज्य व उन आधीनस्थ राजावोंको। उस राज्यमें क्या है? तुम्हारी सेनामें रहकर पादसेवा करना ही मेरे लिये परमभाग्य है। अब आपके चरणोंको मैं छोड नहीं सकता। सचमुचमें जो लोग भरतेश्वरको एकदफे देखलेते थे फिर उन्हे छोडकर जानेकी इच्छा नहीं होती थी।

नवजात बालक कुछ बडे इसके लिये उसी स्थानमें सम्राट्ने छह महीनेका मुकाम किया। उनका दिन वहांपर बहुत आनंदके साथ व्यतीत हो रहा है। साहित्यकला, संगीतकलासे प्रतिनित्य अपनी तृप्ति करते थे। किसी भी प्रकारकी चिंता उन्हे नहीं थी।

हमारे प्रेमी पाठकोंको भी आश्चर्य होगा कि भरतेश्वरका भाग्य बहुत विचित्र है। वे जहां जाते हैं वहां आनंद ही आनंद है। किसी भी समय दुःख उनके पास भी नहीं आता है। इस प्रकार होनेके लिये उन्होंने ऐसा कौनसा कार्य किया होगा? क्या प्रयत्न किया होगा? इसका एक मात्र उत्तर यह है कि भरतेश्वर रात दिन इस प्रकारकी भावना करते थे कि—

सिद्धात्मन्! आप लोकैकशरण हैं! जो भव्य आपके शरणमें आते हैं, उनको पुण्य संपत्तिको देकर उनकी रक्षा करते हैं। इतना ही नहीं पापरूपी भयंकर जंगलके भयसे उन्हे मुक्त करते हैं। इसलिये आप लोकमें श्रेष्ठ हैं। स्वामिन्! अतएव मुझे भी सद्बुद्धि दीजियेगा।

परमात्मन्! तुम जहां बैठते हो, उठते हो। चलते हो, सोते हो सब जगह तुम अपनी कुशललीलाको बतलाते हो, इसलिये परमात्मन्! मेरे हृदयमें बराबर सदा बने रहो जिससे मुझे सर्वत्र आनंद ही आनंद मिले"

इसी चिरंतन भावनाका फल है कि चक्रवर्ती सर्वत्र विजयी होकर उन्हे सुख मिलता है।

इति आदिराजोदय संधि.

——*×*——

वरतनुसाध्यसंधि.

छह महिनें बीतनेके बाद सेनाप्रस्थानके लिये आज्ञा दी गई। उसी समय विशालसेनानें प्रस्थान किया। पूर्वसमुद्रके अधिपति मागधामरको साथ लेकर भरतेश्वर चतुरंग सेनाके साथ दक्षिण समुद्रकी ओर जारहे हैं। एक रथमें छोटे भाईका झूला व एकमें वडे भाई अर्ककीर्ति कुमारका है।

बीच बीचमें मुक्काम करते हुए सेनाको विश्रांति भी देरहे हैं। कभी भरतेश्वर पलकिपर चढकर जारहे हैं। कभी हाथीपर और कभी

घोडेपर ! इस प्रकार जैसी उनकी इच्छा होती है विहार करते हैं। इसी प्रकार गर्मी बरसात आदि ऋतुमानोंको भी देखकर सेनाजनोंको कष्ट न हो उस दृष्टीसे जहां तहां मुक्काम करते हुए आगे बढ रहे हैं। कई मुक्कामोंके बाद वे दक्षिणसमुद्रके तटपर पहुंचे। वहांपर सेनाने मुक्काम किया। पूर्वोक्त प्रकार वहांपर नगर, घर, महल, जिनमंदिर आदिकी व्यवस्था हो गई थी।

समुद्रतटपर खडे होकर मागधको बुलावो ऐसा कहनेके पहिले ही मागधामर हाथ जोडकर सामने आकर खडा होगया। भरतेश्वरने कहा कि मागध ! इस समुद्रमें वरतनुनामक व्यंतर भेडियेके समान रहता है न ? उसे तुम जानते हो ? चुपचापके आकर वह हमारी सेवामें उपस्थित होगा या अभिमानके साथ बैठा रहेगा ? बोलो तो सही, वह किस प्रकारके स्वभावका है ?

मागधामर कहने लगा कि स्वामिन् ! लोकमें आपके सामने कौन अभिमान बतला सकते हैं व किसका अभिमान चल सकता है ? इसके अलावा वरतनु सज्जन है। आपकी सेवामें उसे साथमें लेकर कल ही मैं उपस्थित होवूंगा। स्वामिन् ! यह क्या बडी बात है।

भरतेश्वर मागधके वचनको सुनकर प्रसन्न हुए, कहने लगे कि तब तो ठीक है, अभी तुम जावो ! कल उसे लेकर आवो। ऐसा कहकर उसे व बाकीके लोगोंको भेजकर स्वयं महलमें प्रवेश कर गये।

स्नान, देवार्चन भोजन, शयन आदि लीलावोंसे वह दिन व्यतीत हुआ। पुनः प्रातःकाल होते ही नित्य क्रियासे निवृत्त होकर दरबारमें आकर विराजमान हुए।

दरबारमें यथाप्रकार सर्व परिवार एकत्रित है। कविगण, विद्वद्गण, वेश्यायें, गायक वगैरे सभी यथास्थान विराजमान हैं। सभी लोग भरतेश्वरका दर्शनकर अपनेको धन्य समझ रहे थे।

अनेक गायक अनेक रागोंको आश्रयकर गायन कर रहे हैं। कोई उस समय मंगलकौशिक रागको आश्रयकर मंगलशरण लोकोत्तम परमा-

त्माके गुणोंको गारहे हैं। उसे चक्रवर्ती बहुत प्रेमके साथ सुन रहे हैं। कोई नाराणि, गुर्जरि, सौराष्ट्र आदि रागो में आत्मा और कर्मके कार्यकारण संबंधको वर्णन करते हुए गारहे हैं। उसे चक्रवर्ती सुनकर प्रसन्न हो रहे हैं। पुण्य गानको बाहरसे सुनते हुए, अंदरसे परमलावण्य परमात्माको स्मरण करते हुए, पुण्यमय वातावरणमें राजाग्रगण्य सम्राट विराजमान हैं।

भगवान् आदिनाथको स्मरण करते हुए परमात्माको भी भेद विचारसे स्मरण कर रहे हैं। इतनेमें गंधमाधवी नामक दासीने आदि-राजको लाकर चक्रवर्तीके हाथमें दे दिया। भरतेश्वरने बहुत आनंदके साथ उस बच्चेको लेकर प्रेमालाप करनेको प्रारंभ किया।

कभी बालकको देखकर हंसते हैं। कभी महाराज! कहांसे आप की सवारी पधारी है? इसप्रकार बहुत विनोदसे पूछ रहे हैं। कैलास पर्वतसे आये हुए यह आदिनाथ नहीं हैं। मेरुके अग्रपर खडे रहकर मुझे करुणासे देखनेके लिये आया हुआ आदिराज है।

भरतजीके हाथमें सुवर्णरक्षा बंधी हुई है। उसे देखकर बालक हठ करने लगा वह मुझे मिलनी चाहिये। तब भरतेश्वर कहने लगे कि बेटा! इस रक्षाकी क्या बात है। थोडा बडा हो जावो। तुम्हारे लिये आभूषण ढेरके ढेर बनावाकर दूंगा।

भरतेश्वरके गोदपर आदिराज बहुत आनंदके साथ बैठा हुआ है। इतनेमें अर्ककीर्ति वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत होकर उस दरबारमें आया।

उसके पीछेसे मंदाकिनी दासी भी आरही है। अर्कतीर्तिके दर-बारमें प्रवेश करते ही दरबारी लोग उठकर खडे हुए व उसे नमस्कार करने लगे। सबको बैठनेके लिये हाथसे इशारा करते हुए भरतेश्वरकी ओर वह जारहा था। भरतेश्वरको भी आते हुए पुत्रको देखकर हर्ष हुआ। आदिराजसे कहने लगे कि बेटा! तुम्हारा बडे भाई आरहा है, खडे होकर उसका स्वागत तो करो। इतनेमें वह बालक खडा होगया। जब भरतेश्वरने उसे हाथ जोडनेके लिये कहा तब हाथ जोडने लगा। अर्ककीर्ति उसे देखकर प्रसन्न हुआ। स्वयं भरतेश्वरके चरणमें एक रत्नको भेटमें समर्पण कर सिंहासनके पास ही खडा होगया।

भरतेश्वरको उसकी वृत्ति देखकर आश्चर्य हुआ। वे पूछने लगे कि मंदाकिनी! अर्ककीर्ति कुमारको यह किसने सिखा रक्खा है? बोलो तो सही।

स्वामिन्! किसीने भी सिखाया नहीं है और न जरूरत ही है। स्वयं ही पिताकी सेवा करनेके लिये उपस्थित हुआ है। दूध शक्करका सेवन करते हुए मातापितावोंके ऋणसे बद्ध क्यों होना चाहिये? उससे मुक्त होनेके लिये वह यहांपर आया है। और कोई बात नहीं। इसप्रकार मंदाकिनीने कहा।

अर्ककीर्ति कुमार उस सिंहासनके पासमें अत्यंत गंभीर होकर खडा है। उसे देखकर आदिराजकी भी इच्छा उत्पन्न हुई कि मैं भी बडे भाईके समान पिताकी सेवा करूं। इसलिये सबसे पहिले अपने पहने हुए वस्त्राभूषणोंको उठाकर फेंक दिये व हठ करने लगा कि अर्ककीर्तिने जिस प्रकारके वस्त्राभूषणोंको धारण किये हैं वैसे ही मुझे भी चाहिये। भरतेश्वरने उसे बहुत समझाया। परंतु वह मानता नहीं। इतनेमें उस बालकके हठको देखकर एक गणबद्ध देवने विक्रियाशक्तिसे उसको अर्ककीर्तिके समान ही शृंगार किया।

तब कहीं आदिराज संतुष्ट हुआ। एवं सम्राटके दाहिनी ओर जाकर अर्ककीर्तिके समान ही खडा होगया। उस समयकी शोभा कुछ और ही थी। दोनों ओरसे बालसूर्य हैं और बीचमें हिमवान् पर्वत है, अथवा दो हाथीके बच्चोंके बीचमें एक सुंदर हाथी है।

बालकोंकी सुंदरताको देखकर सब लोग मुग्ध होगये। सब लोग उठकर खडे होकर उनकी शोभाको देखने लगे। भरतेश्वर उनकी आतुरताको देखकर कहने लगे कि ये दोनों बालक हैं। उनके खडे होनेसे आप लोग खडे क्यों हुए। बैठ जाईये।

राजन्! हम लोग इस भाग्यको और कहां देख सकते हैं? आपके ये दोनों क्या कुमार हैं? नहीं नहीं! ये दोनों सुरकुमार हैं। उनके खडे होनेका प्रकार, बचपनके खेलसे रहित गंभीरता, आदि बातोंको देखनेपर इन्हें बालक कौन कह सकता है?

आपमें जिस प्रकार गंभीरता है उसी प्रकार आपके पुत्रोंमें भी गंभीरता है आपका गुण आपके पुत्रोमें भी उतर गया है। यह साहजिक है। लोकमें बीजके समान अंकुरोत्पत्ति होती है, यह कथन जो अनादिसे चला आरहा है उसकी सत्यता प्रत्यक्षमें आज देखनेके लिये मिली। विशेष क्या ? हम विशेष वर्णन करनेके लिये असमर्थ हैं। हम लोग उनको देखते देखते थक गये। वे भी बहुत देरसे खडे हैं। उनको बैठनेके लिये आज्ञा दीजियेगा। तब भरतेश्वरने पूछा कि एक घडीभर इन दोनोंने खडे होकर हमारी सेवा की इसके उपलक्ष्यमें इनको क्या वेतन दिया जाय ? मंत्री बोलो ! सेनापति तुम भी कहो।

स्वामिन् ! बुद्धिसागरने कहा-बडे राजकुमारको एक घटिकाको एक करोड सुवर्ण मुद्राके हिसाबसे देना चाहिये। इसी समय सेनापतिने कहा कि छोटे कुमार श्री आदिराजको अर्धकरोड सुवर्ण मुद्राके हिसाबसे देना चाहिये। तब भरतेश्वरने, तथास्तु, कहकर आज्ञा दी कि अभी इनको डेढ करोड सुवर्ण मुद्राको देनेकी व्यवस्था कर आगे जब कभी वे मेरी सेवा करें तब इसी हिसाबसे उनको वेतन देनेका प्रबंध करना। फिर दोनों कुमारोंको बैठनेके लिये आज्ञा दी। दोनों राजपुत्र बैठगये। वहांपर उपस्थित सर्व दरबारियोंने उनको नमस्कार किया व अपने अपने आसनपर विराजमान हुए। इतनेमें गाजेबाजेका शब्द सुनाई देने लगा।

वरतनु व्यंतर अपने परिवारके साथ आरहा है। यह मालुम होते ही भरतेश्वरने आदिराजको गंधमाधवीके सोंपा व अर्ककीर्तिको मंदाकिनी दासीको सोंप दिया व स्वयं बहुत गंभीरताके साथ बैठ गये। वरतनु समुद्रतटतक तो विमानपर आरूढ होकर आया। बादमें अपने वैभवके चिन्होंको छोडकर पैदल ही भरतेश्वरकी ओर आनेलगा। वह हसमुखा है, दीर्घदेही है, सुवर्णवर्णी है। सचमुचमें उसको वरतनु नाम शोभा देता है। उसके कंधेपर एक दुपट्टा शोभित होरहा है। हाथमें अनेक प्रकारके उत्तमोत्तम उपहारके योग्य वस्तुवोंको लेकर अपने मंत्रीके साथ

आरहा है। आगेसे मागधामर है, पीछेसे वरतनु है। दोनों व्यंतर बहुत विनयके साथ दरबारमें प्रवेश करगए।

दरबारमें वेत्रधारीगण अनेक प्रकारके शब्दोंका उच्चारण कर रहे हैं। युद्धभूमिमें वीर! मदोन्मत्त शत्रुवोंके मानखंडनमें तत्पर! शरणागतोंके रक्षक! राजन्! वरतनु व्यंतर आरहा है, दृष्टिपात कीजियेगा! इत्यादि शब्दोंको वरतनु सुनरहा है। दूरसे ही उसने भरतेश्वरको देखलिया। उनके दिव्यशरीरको देखकर वरतनु विचार करने लगा कि यदि राजा होकर उत्पन्न होवें तो इसी प्रकार होवें। इस प्रकार भावना करते हुए दोनों भरतेश्वरकी ओर आये। दरबारमें दोनों ओरसे राजागण विराजमान हैं। बीचमें उच्च सिंहासनपर भरतेश्वर विराजमान हैं। मागधामरने आकर हाथ जोडते हुए कहा कि स्वामिन्! वरतनु आया है। देखिये। आगे और कहने लगा कि मैंने उसके पास जाकर कहा कि तुम्हारे समुद्रके तटपर श्री सम्राट् भरतेश्वर आये हैं। इतना सुनते ही उसने बडा हर्ष प्रकट किया। और अपने भाग्यकी सराहना करते हुए उसी समय मेरे साथ चलकर यहांपर आया। स्वामिन्! वरतनु कहने लगा कि भगवान् आदिनाथ स्वामीके पुत्रका दर्शन कौन नहीं करेगा? आत्मविज्ञानीके दर्शनसे कौन वंचित रहेगा? इस प्रकार कहते हुए वह बुद्धिमान् वरतनु आपकी सेवामें उपस्थित हुआ है।

वरतनुने बहुत भक्तिपूर्वक, अनेक रत्न, वस्त्र, वगैरह उपहारोंको समर्पण करते हुए भरतजीको अपने मंत्रीके साथ साष्टांग नमस्कार किया। स्वामिन्! आपके दर्शनसे हमारे नेत्र दोनों सफल होगये। हृदय प्रसन्न हुआ। इससे अधिक मुझे और किस बातकी जरूरत है? इस प्रकार कहते हुए साष्टांग ही पडा था। भरतेश्वर मनमें ही समझ गये कि यह वरतनु सज्जन है। वक्र नहीं है। प्रगटमें प्रसन्न होकर कहने लगे कि वरतनु! तुम आये सो अच्छा हुआ। अब उठो। इतनेमें वरतनु उठा व राजाकी ओर देखते हुए कहने लगा कि स्वामिन्! लोकमें सबकी आंखको तृप्त करनेके लिए तुम्हारा जन्म हुआ है।

आपका रूप, आपका वैभव, आपका श्रृंगार यह सब लोकमें अन्य दुर्लभ हैं। यह सब आपके लिए ही रहने दीजिए। हमें तो केवल आपकी सेवा करनेका भाग्य चाहिए। हम लोग कूपके मत्स्यके समान इस समुद्रमें रहते हैं। हमारे पापको नाश करनेके लिए दयार्द्र होकर आप पधारे। हम लोग पवित्र होगये। हमारे प्रति आपने बडी कृपा की। मंदहास करते हुए उसे बैठनेके लिये भरतेश्वरने इशारा करते हुए आसन दिलाया। वरतनु भी आज्ञानुसार अपने मंत्रीके साथ निर्दिष्ट आसनपर बैठ गया। मागधामरको आसन देकर बैठनेके लिये राजाने इशारा किया। फिर बुद्धिसागरकी ओर देखा। बुद्धिसागर सम्राट्के अभिप्रायको समझकर बोला कि स्वामिन्! यह वरतनु व्यंतर तुम्हारे भोगके लिये योग्य सेवक है। वह विनीत है, सज्जन है, और आपके चरण कमलके हितको चाहनेवाला है। साथ ही मागधामरने जो यह सेवा बजाई है वह भी बडी है। राजन्! ये दोनों तुम्हारी सेवा अभेद हृदयसे करेंगे। इन दोनोंका संरक्षण अच्छी तरह होना चाहिये।

इस प्रकार बुद्धिसागरके चातुर्यपूर्ण वचनको सुनकर वे दोनों कहने लगे कि मंत्री! सम्राट्को हमारी सेवाकी क्या जरूरत है? क्या उनके पास सेवकोंकी कमी है? फिर भी तुमने इस प्रकारके वचनसे हमारा सत्कार किया इसके लिये धन्यवाद है।

फिर बुद्धिसागर कहने लगा कि राजन्! वरतनुको अपने राज्यमें सुखसे रहनेके लिये आज्ञा दीजिये उसे आज जाने दीजिये और आगे के मुक्कामको चाहे आने दीजिये।

भरतेश्वरने वरतनुको अपने पास बुलाया और उसे अनेक प्रकारके वस्त्र, आभरण आदि विदाईमें दिये। साथमें उसके मंत्रीका भी सन्मान किया। वरतनुने भी भरतजीके चरणमें नमस्कार कर सुरकीर्ति नामक एक व्यंतरको उनकी चरणसेवाके लिये सौंपते हुए कहा कि "स्वामिन् आज्ञानुसार मैं अपने राज्यको जाकर शीघ्र लौटता हूं। तबतक आपकी सेवाके लिये मेरे प्रतिनिधि इस सुरकीर्तिको रखकर जाता हूं"। फिर वहांसे अपने मंत्रीके साथ वह चला गया।

वरतनुके जानेके बाद भरतेश्वर मागधामरकी ओर देखकर बोलने लगे कि यह मागधामर अत्यधिक विश्वासपात्र है। कल यहांपर सेनाने मुक्काम किया ही था। इतनेमें यह यहांसे वरतनुको लानेके लिये चला गया। यहां आनेके बाद विश्रांति भी नहीं ली, बहुत थक गया होगा।

भरतेश्वरके इस वचनको सुनकर बुद्धिसागर मंत्री कहने लगा कि राजन्! वह विवेकी है, आपके सेवाक्रमको अच्छीतरह जानता है। वह आपकी सेवासे पवित्र हुआ। इसी समय मागधामर भी कहने लगा कि स्वामिन्! आपकी सेवा करनेका जो सौभाग्य मुझे मिला है यह सचमुचमें मेरा पूर्वपुण्य है। आपके पादकी साक्षीपूर्वक मैं कह सकता हूं कि मुझे कोई थकावट नहीं है। मैं चाहता हूं कि सदा आपकी सेवा करता रहूं।

भरतेश्वरने अस्तु! इधर आवो! ऐसा बुलाकर उसकी पीठ ठोंकते हुए कहा कि मागध! तुमसे मैं प्रसन्न हो गया हूं। आजसे हमारी व्यंतरसेनाके अधिपति तुम्हे बनाता हूं। आजसे जितने भी व्यंतराधिपति हमारे आधीन होंगे, उनको तुम्हारे दरबारमें दाखल करेंगे। सबसे पहिला मानसन्मान तुम्हारे लिए दिया जायगा। बादका उनको दिया जायगा। समुद्रमें रहनेवाले व्यंतरोंको जो कुछ भी देनेके लिए तुम कहोगे वही दे दिया जायगा। जहां तुम उस संबंधमें रोकनेके लिए कहोगे हम भी रोक देंगे। अर्थात् तुम्हारी सलाहके अनुसार सर्व कार्य करेंगे। मागध! सचमुचमें तुम अभिन्नहृदयसे मेरी सेवा कर रहे हो, ऐसी अवस्थामें भी उस दिन राजाओंके सामने तुम्हारे लिए जो कठोर शब्द बोल दिये थे, परमात्माका शपथ है कि मेरे हृदयमें उसके लिए पश्चात्ताप हो रहा है। इस प्रकार भरतेश्वरके वचनको सुनकर मागधामर कहने लगा कि स्वामिन्! आपने ऐसे कौनसे कठोर वचन बोले हैं। मैने ही अपराध किया था। पहले दिन मूर्खतासे आपके प्रति तिरस्कारयुक्त अनेक बचन बोले थे, उसके लिए आपने प्रायश्चित दिया था। इसमें क्या दोष है? स्वामिन्! उसका मुझे अब जरा भी

दुःख नहीं। आप भी उसे भूल जावे। इस प्रकार कहते हुए मागधामरने भरतेश्वरके चरणोंपर मस्तक रक्खा। उसी समय अपने कंठसे एक रत्नहारको निकालकर मागधामरको सम्राट्ने देदिया और सर्वजनसाक्षीसे उसे " व्यंतराग्रणि " इस उपाधिसे अलंकृत किया।

दरबारके सब लोग कहने लगे कि स्वामिन्! यह बडे भारी उपाधि है, उसके लिए यह मागधामर सर्वथा योग्य है। उसने आपकी हृदयसे जो सेवा की है, वह आज सार्थक होगई है।

उसके बाद सम्राट्ने मागधामरको आज्ञा दी कि मागध! जावो! अपनी महलमें जाकर विश्रांति लो। मागध भी सम्राट्को नमस्कार कर अपनी महलकी ओर चला गया। बाकीके दरबारियोंको भी उचित रूपसे विदाकर सम्राट् मोतीसे निर्मित सिंहासनसे उठकर अपनी महलमें प्रवेश कर गये।

इस प्रकार सम्राट्ने अंतःपुरकी स्त्रियोंके साथ व अपनी संतानके साथ भोग व योगलीलासे युक्त होकर कुछ दिन बहुत आनंदके साथ वहींपर व्यतीत किया।

अर्ककीर्ति अब बढगया है। इसलिये राजकुलके लिये अनुकूल मुहूर्त देखकर यज्ञोपवीतसंस्कार कराया। उत्सवकी शोभाको देखकर सब लोग जयजयकार करने लगे। तदनंतर अर्ककीर्ति के लिये अध्ययनशालाकी व्यवस्था की गई। और उसको आज्ञा दी गई कि अब तुम अपना निवास बोधगृहमें करो और परिश्रमपूर्वक विद्याध्ययन करो। साथ ही अर्ककीर्ति व उसकी दासी के लिये अलग निवासस्थानका भी निर्माण कराया गया। इससे पहिले अंतःपुरकी सर्व स्त्रियां अर्ककीर्तिकी सेना कहलाती थी। अब अर्ककीर्ति स्नातक हुआ है। विद्याध्ययन कररहा है। इसलिये वह सेना अब आदिराजकी सेना कहलायगी। इस प्रकार बहुत आनंद व विनोदके साथ भरतेश्वरका समय व्यतीत होरहा है। पूर्व व दक्षिण समुद्रके अधिपतियोंको वशमें करनेके बाद अब सम्राट् पश्चिमदिशाकी ओर जानेका विचार करने लगे।

हमारे पाठकोंको उत्कंठा होती होगी कि भरतेश्वरको स्थान स्थानपर विजय ही क्यों प्राप्त होती है? पूर्वसमुद्रमें गये वहांसे मागधामरको सेवक बना लिया। दक्षिणसमुद्रमें गये, वहां वरतनु आधीन हुआ। जहां भी जावें वहीं विजयी होते हैं। इसका कारण क्या है? इसका एक मात्र उत्तर यह है कि यह पूर्वसंचित पुण्योदयका प्रभाव है। पूर्वजन्ममें भरतेश्वरने अनेक प्रकारकी शुभक्रियायों द्वारा अपने आत्माको निर्मल किया था। इस भवमें भी वे रातदिन इस प्रकार परमात्माकी भावना करते हैं।

सिद्धात्मन्! आप चलते समय, बोलते समय, सोते समय, उठते समय स्मरणपथमें विराजमान रहें तो प्राणियोंका सर्व कल्याण होता है। उनके सर्व कार्य सिद्ध होते हैं। इसलिये स्वामिन्! आप रत्नदर्पणके समान हैं। मुझे सद्बुद्धी दीजियेगा।

परमात्मन्! तुममें अचिंत्य सामर्थ्य मौजूद है। दशों दिशाओं व तीनों लोकोंको एक साथ व्याप्त होनेके सामर्थ्यको तुम धारण करते हो। तुम्हारी महिमाको लोकमें बहुत विरले ही जानते हैं। इसलिये हे चिदंबरपुरुष! धीर! मेरे हृदयमें बने रहो।

इस शुभ भावनाका ही यह फल है कि भरतेश्वरका नित्यभाग्योदय होता है।

इति वरतनुसाध्य संधि.

— — *×* — —

प्रभासामरचिन्ह—संधि.

प्रस्थान भेरीके शब्दने तीन लोक आकाश व दशों दिशावोंको व्याप्त किया। तत्क्षण सेनाने पश्चिम दिशाकी ओर प्रयाण किया। राजसूर्य भरतेश्वर पल्लकीपर आरूढ होकर जा रहे हैं।

आदिराजकी सेना पीछेसे आरही है। पासमें ही मागधामर भुवगति व सुरकीर्तिके साथ आरहा है। इसी प्रकार मगध, कांभोज, मालव, चेर, चोल, हम्मीर, केरल, अंग, वंग, कलिंग, बंगाल आदि बहुतसे देशके राजा हैं। उनको देखते हुए भरतेश्वर बहुत आनंदके

साथ जारहे हैं। बीचमें कितने ही स्थानोंमें सेनाका मुकाम कराते जारहे हैं। फिर आगे सेनापतिके इशारेसे सेनाका प्रस्थान होता है। ठण्डे समयमें सेनाका प्रयाण होता है। धूपके समयमें सेनाको विश्रांति दी जाती है। अनेक पुत्रोंके पिताको जिस प्रकार पुत्रोंपर समप्रेम रहता है उसी प्रकार सेनापति जयकुमार भी सभी सेनावोंपर सदृश प्रेम करता था। इससे किसीको भी किसी प्रकारका भी कष्ट नहीं होता था। इतना ही नहीं सेनाके हाथी, घोडा, वगैरह प्राणियोंको भी किसी प्रकारका कष्ट नहीं होता था। वह विवेकी था। इसलिये सबकी चिंता करता था। इसीलिये उसे सेनापतिरत्न कहते हैं।

इस प्रकार मुकाम करते हुए सुखप्रयाण करते हुए जब सेना आगे बढ रही थी। एक मुकाममें भरतेश्वरकी राणी चंद्रिकादेवीने एक पुत्ररत्नको प्रसव किया। इसी समय इस हर्षोपलक्ष्यमें जिनमंदिर वगैरह तोरण इत्यादिसे अलंकृत किये गये। हर्षको सूचित करने वाले अनेक वाद्यविशेष बजने लगे। सर्वत्र भरतेश्वरको पुत्रोत्पत्तिका समाचार फैल गया। वरतनु भी बहुत हर्षके साथ भरतेश्वरकी सेवामें उपस्थित हुआ। भरतेश्वरका दर्शन करते हुए बहुत दुःखके साथ कहने लगा कि स्वामिन्! मै बहुत ही अभागी हूं। मेरे नगरके पास आपको पुत्ररत्नकी प्राप्ति न होकर आगे आनेपर हुई है। सम्राट्‌को पुत्ररत्न होनेपर अनेक देशके राजागण आकर आनंद मनाते हैं। उन सब वैभवोंको देखनेका भाग्य मागधामरको प्राप्त हुआ है। पूर्वजन्ममें उसने उसके लिये अनेक प्रकारसे पुण्यसंचय किया है। इस प्रकार कहते हुए प्रार्थना करने लगा कि स्वामिन्! मैं बहुत शीघ्र अपने नगरको जाकर जातकर्मके लिये योग्य उपहारोंको लेकर सेवामें उपस्थित होता हूं। भरतेश्वर कहने लगे कि वरतनु! कोई जरूरत नहीं! तुम यहीं रहो। उपहारोंकी क्या जरूरत है? अब आगेके कार्य बहुत हैं, उसके लिये तुम्हारी जरूरत है, तुम यहीं रहो। इसके बाद बहुत वैभवके साथ उस बालकको वृषभराज ऐसा नामकरण किया गया। इसी मुकाम पर आदिराजको भी उपनयन संस्कार कर उसे गुरुकुलमें भेज दिया।

वृषभराज कुछ बडा हो इसके लिए छह महीनेतक वहींपर मुक्काम किया। बादमें वहांसे सेनाप्रस्थानके लिए प्रस्थानभेरी बजाई गई, तत्क्षण सेनाने प्रस्थान किया। अर्ककीर्ति व आदिराज विद्यार्थी वेषमें अपने गुरुओंके साथ आरहे हैं। पीछेसे वृषभराजकी सेना आरही है। इधर उधरसे अनेक सुंदर घोडोंपर आरूढ होकर राजपुत्र आरहे हैं। उन सबकी शोभाको देखते हुए भरतेश्वर बहुत आनंदके साथ जा रहे हैं।

भरतेश्वर इक्ष्वाकुवंशोत्पन्न हैं। उनके साथ जानेवाले राजपुत्र सबके सब इक्ष्वाकुवंशके नहीं हैं। कोई नाथवंशके हैं। कोई हरिवंशके हैं। कोई उग्रवंशके हैं। कोई कुरुवंशके हैं। उनको देखते हुए भरतेश्वर उनके संबंधमें अनेक प्रकारसे विचार कर रहे हैं। यह हरिवंश कुलके लिए तिलक है, यह कुरुवंशके लिए भूषणप्राय है, अमुक नाथवंशावतंस है, अमुक गंभीर है, अमुक पराक्रमी है, अमुक गुणी व सज्जन है, अमुक निरभिमानी है। इत्यादि अनेक प्रकारसे विचार भरतेश्वरके मनमें आरहे हैं।

सूर्यके दर्शनसे कमल, चंद्रके दर्शनसे कुमुदिनीपुष्प जिस प्रकार प्रसन्न होते हैं उसी प्रकार भरतेश्वरके दर्शनसे वे राजपुत्र अत्यंत प्रसन्न होरहे हैं और उनके साथ बहुत विनयके साथ जारहे हैं। वे बहुत बडबडाते नहीं, और कोई प्रकारकी अहितचेष्टा भी नहीं करते, वे उत्तम कुल व जातिमें उत्पन्न हैं। इतना ही क्यों? वे भरत चक्रवर्तीके साथ रोटी बेटी व्यवहारके लिए योग्य प्रशस्त जातिक्षत्रिय वंशज हैं। केवल अंतर है तो इतना ही कि चक्रवर्तिके समान संपत्ति नहीं है। बाकी किसी भी विषयमें वे कम नहीं हैं।

बीचबीचमें अनेक मुक्काम करते हुए कई मुकामके बाद भरतेश्वर पश्चिम समुद्रके तटपर पहुंचे, वहांपर जाते ही मागधामर व वरतनुको बुलाया, तत्क्षण वे दोनों ही हाजिर हुए। समुद्रतटपर खडे होकर सम्राट्ने कहा कि मागध! इस समुद्रमें प्रभास देव राज्य कर रहा है, वह कैसा है? हमारे पासमें सीधी तरहसे आयगा? या कुछ ढोंग

रचकर बादमें वश होगा ? बोलो तो सही ! इस वचनको सुनकर मागध कहने लगा कि स्वामिन् ! प्रभास देव सज्जन है । वह आपके साथ विरोध नहीं कर सकता, हम लोग जाकर उसे आपकी सेवामें उपस्थित करेंगे । इस प्रकार कहते हुए जानेकी आज्ञा मांगने लगे, सम्राट् कहने लगे कि इस कार्यके लिए तुम लोग नहीं जाना । हमारे साथ तुम लोगोंके जो प्रतिनिधि मौजूद हैं उनको इस वार भेजकर देखेंगे, वे किस प्रकार कार्य करके आते हैं । उसी समय ध्रुवगति और सुरकीर्तिको बुलाकर यह काम उनको सोंपकर उनको आज्ञा दी गई कि तुम लोग जाकर प्रभास देवको लेकर आना । दोनों देवोंने उस आज्ञाको शिरोधार्य किया और चले गये ।

मंत्री, सेनापति आदि सबको अपने २ स्थानमें भेजकर चक्रवर्ती अपने महलमें प्रवेश कर गये । अपनी राणियोंके साथ स्नान भोजनादि क्रियावोंसे निवृत्त होकर उस दिनको भोग और योगलीलामें चक्रवर्तीने व्यतीत किया। दूसरे दिन प्रातःकाल नित्यक्रियासे निवृत्त होकर दरबारमें आकर विराजमान हुए । दरबारमें चारों ओरसे अनेक राजा, राजपुत्र वगैरे विराजमान हैं । गायन करनेवाले भिन्न २ सुंदर रागोंमें गायन कर रहे हैं । उनमें परमात्मकलाका वर्णन किया जारहा है : कोई धन्यासि रागमें, कोई भैरवीमें गा रहे हैं । चक्रवर्ती उनको सुन रहे हैं।

बाहरसे जिसप्रकार प्रातःकालका धूप दिख रहा हो उसी प्रकार अंदरसे चक्रवर्तिको आत्मप्रकाश दिख रहा है। कान गान की ओर है, हृदय आत्माकी ओर है। चर्मदृष्टिसे दरबारको देख रहे हैं । अंतर्दृष्टिसे (ज्ञानदृष्टि) निर्मल आत्माको देख रहे हैं। आत्मविज्ञानी का मनोधर्म बहुत ही विचित्र रहता है । उसे कौन जान सकते हैं ?

कीचडमें रहनेवाले कमलको सूर्यके प्रति प्रेम रहता है, न कि उस कीचडपर । इसी प्रकार इस अपवित्र शरीरमें रहनेवाले विवेकी आत्माको अपने आत्मापर ही प्रेम रहता है, न कि उस शरीरपर। भव्योंका खास लक्षण यही है कि वे अखण्ड भोगोंके बीचमें रहनेपर भी आत्माकी

ओर ही उनका चित्त रहता है, भोगकी ओर नहीं। अनेक राग रचनावोंसे गाये जानेवाले उन गायनोंपर संतुष्ट होकर उनको अनेक प्रकारसे इनाम भी देते जा रहे हैं, अंदरसे परमात्मकलाकी भावना भी कर रहे हैं।

इस प्रकार भरतजी योग और भोग में मग्न होकर दरबारमें विराजमान हैं। इतनेमें चित्तानुमति नामक दासीने वृषभराजको लाकर सम्राटके हाथमें दे दिया। भरतेश्वर वृषभराजके साथ अनेक प्रकारसे विनोद करने लगे। बेटा! क्या भरतेश्वरके पिता वृषभनाथ ही साक्षात् आये हैं? नहीं नहीं यह वृषभराज है। भरतेश्वरने जिससमय उस बच्चेको हाथसे उठाया, उस समय ऐसा मालुम हो रहा था कि जैसे कोई बडा रत्ननिर्मित पुतला रत्ननिर्मित छोटे पुतलेको उठा रहा हो। पिताके मुखको पुत्र, पुत्रके मुखके पिता देखकर दोनों हंस रहे हैं।

भरतेश्वर पुत्रके हाथकी रेखावोंके लक्षणको देखकर उनके शुभ फलको विचार कर रहे हैं। मंगलमय रेखावोंको देखकर प्रसन्न हो रहे हैं। पिता जिस प्रकार उस बच्चेके हाथ देख रहे हैं, उसी प्रकार उस बच्चेने भी भरतेश्वरके हाथको देखनेके लिये प्रारंभ किया व हंसने लगा। तब भरतेश्वर कहने लगे कि बेटा! मैंने तुम्हारे लक्षणको देखा, क्या इसीलिये तुमने मेरे लक्षणको भी देखा? मुझ सरीखे तुम, तुम सरीखें मैं, उसमें अंतर क्या है?

इस प्रकार एक बच्चेके साथ जब प्रेम कर रहे थे तब दरबारमें भरतेश्वरकी ओर दो पुत्र प्रवेश कर आये, आगे अर्ककीर्ति है, पीछेसे आदिराज है, दोनों विनयी हैं, सद्गुणी हैं। इसलिये दरबारके बाहर छत्र, चामर, खडाऊ आदिको छोडकर अपने साथके सेवकोंको भी बाहर ही खडे रहनेके लिये आज्ञा देते हुए अंदर आरहे हैं। अनेक प्रकारके रत्नमिर्मित आभरण, तिलक, गंधलेपन आदिसे अत्यंत शोभाको प्राप्त हो रहे हैं। भय व भक्तिके दोनों मूर्तस्वरूप थे। इसलिये पिताके प्रति भय व भक्तिके साथ दरबारमें आ रहे हैं। वेत्रधारीगण राजाको

उच्च स्वरसे सूचना दे रहे हैं कि स्वामिन्! सूर्यसे भी द्विगुण प्रकाशको धारण करनेवाला अर्ककीर्ति कुमार आरहा है। उसीके साथ आदिराज भी आरहा है। एक घटिकाको एक करोड सुवर्णमुद्रा जिनका वेतन है ऐसे सुकुमार आरहे हैं। सौजन्य, विनय, विवेकमें जिनकी बराबरी करनेवाले कोई नहीं, ऐसे दोनों कुमार आरहे हैं। राजन्! देखिये तो सही! राजन्! हुण्डावसर्पिणीके आदियुगमें षट्खंडमण्डलेशरूपी पर्वतसे उत्पन्न सूर्यचंद्ररूपी दोनों पुत्रोंको देखिये तो सही! इस वचनको सुनकर भरतेश्वरको भी हंसी आई। हंसते हुए ही उन्होंने उन वेत्रधारियोंको पास बुलाकर इनाम देदिया। दोनों पुत्रोंको देखकर सभी दरबारी आकृष्ट हुए। सब लोग खडे होगये। अर्ककीर्ति और आदिराजने बैठनेके लिए इशारा किया। भरतेश्वरने वृषभराजसे कहा कि बेटा! तुम्हारे बडे भाई आरहे हैं। खडे होकर उनका स्वागत करो, उसी समय वृषभराज उठकर खडा होगया। हाथ जोडनेके लिए कहा तो हाथ जोडकर नमस्कार किया। अर्ककीर्ति व आदिराजने बहुत विनयके साथ कहा कि स्वामिन्! हमें उसके नमस्कार करनेकी क्या जरूरत है? "यह राजपुत्रोंका लक्षण है" ऐसा कहकर भरतेश्वरने समाधान किया। उसके बाद दोनों पुत्रोंने अनेक भेट वगैरे समर्पण कर पिताके चरणोंमें नमस्कार किया एवं सिंहासनकी दोनों ओर खडे होगये। उस समय भरतेश्वरकी शोभा कुछ और ही थी। एक पुत्र गोदपर, दोनों इधर उधरसे खडे हैं। उनकी शोभाको देखते हुए दरबारके सब लोग खडे हैं। भरतेश्वरने सबको बैठनेके लिए कहा। फिर भी सब लोग खडे ही रहगये, और कुमारोंकी ओर देखते रहे। भरतेश्वरने अर्ककीर्तिसे कहा कि बेटा! सबको बैठनेके लिए तुम बोलो। तब वे बैठेंगे। तब सबको अर्ककीर्तिने बैठनेके लिए कहा। फिर भी लोग खडे खडे ही देखते ही रहे। फिर "तुम लोगोंको पिताजीकी शपथ है। बैठ जाईये" ऐसा कहनेपर भी लोग बैठे नहीं। वे एकदम दोनों कुमारोंके सौंदर्यको देखनेमें ही मग्न होगये थे। इतनेमें भरतेश्वरने आदिराजसे कहा कि बेटा! सबको तुम बैठनेके लिए बोलो। तब

आदिराजने कहा कि प्यारे भाईयो ! आप लोग बैठ जावें फिर भी सब लोग खडे ही रह गये। फिर " मेरे भाई अर्ककीर्तिकी शपथ है, आपलोग बैठ जावें " ऐसा कहनेपर सब लोग एकदम बैठ गये। अर्ककीर्तिने गंभीरताके साथ कहा कि आदिराजको कुछ काम नहीं है, पिताजीके सामने मेरे शपथ खानेकी क्या जरूरत है ! क्या यह योग्य है ? इसपर आदिराज कहने लगा कि भाई ! पिताजी तुम्हारे लिये स्वामी हैं। मेरे लिये तो तुम ही स्वामी हो, इसमें क्या बिगडा ?

भरतेश्वर भी अपने पुत्रोंके विनयव्यवहारपर प्रसन्न हुए। दरबारी भी उनके जातिविनयको देखकर प्रसन्न होकर प्रशंसा करने लगे। भरतेश्वरने मंत्री और सेनापतिको बुलाकर पूछा कि क्या मेरी उस दिनकी आज्ञाके अनुसार इनको बराबर वेतन दिया जाता है ? स्वामिन् ! आज्ञानुसार वेतन तत्क्षण दिया गया। परंतु उन्होंने ही खजाने में रखनेके लिये आज्ञा दी। इन प्रचण्ड वीरोंको कौन रोक सकता है ?

इसके बाद दोनों कुमारोंको बैठनेके लिये आज्ञा देकर आसन दिया गया। परंतु वे बैठे नहीं। उन्होंने भरतेश्वरकी और एक सेवा करनेकी तैयारी की। पासमें ही खडे होकर एक सेवक सम्राट्को तांबूल दे रहा था। उसके हाथसे तांबूलके तबकको अर्ककीर्तिने छीन लिया, व स्वतः तांबूल देनेकी सेवामें संलग्न हुआ। इतनेमें आदिराजने भी चामर ढोलनेवालेके हाथसे चामरको छीन लिया व स्वतः चामर ढोलने लगा। उस समय उन दोनों पुत्रोंकी सेवाको देखते हुए दरबारके समस्त सज्जन भावना करने लगे थे कि " लोकमें पुत्रोंकी प्राप्ति हो तो ऐसोंकी ही हो। नहीं तो ऐसे भी बहुतसे पुत्र उत्पन्न होते हैं, जिनसे पिताकी सेवा होना तो दूर, पिताको ही उनकी सेवा करनी पडती है। कभी कभी पितृद्रोहके लिये भी वे तैयार होते हैं " ;

तांबूल देनेके बाद और एक सेवा करनेके लिये अर्ककीर्ति सन्नद्ध हुआ। पिताकी गोदसे वृषभराजको लेकर स्वयं उसे खिलाने लगा। भरतेश्वरने कहा कि बेटा ! वृषभराजको तुमने क्यों उठाया ? अर्ककीर्तिने बहुत विनयके साथ कहा कि स्वामिन् ! बहुत देरसे वह आपकी गोदपर

बैठा है, आपको कितना कष्ट हुआ होगा ? इसलिये कुछ देरके लिये अपने भाईको मैं भी उठावूं, इस विचारसे मैंने लिया और कोई बात नहीं।

भरतेश्वरने सोचा कि मैंने जिस बच्चेको पहिले उठाया था उसको यह अब उठा रहा है। इसी प्रकार जिस षट्खण्ड भूभारको मैं अब धारण कररहा हूं उसे यह भविष्यमें धारण करेगा। यह इसके लिये पूर्ण समर्थ है। इसी प्रकार वहां उपस्थित बडे २ राजा, प्रजा, देव, आदियोंने अपने मनमें विचार किया। तदनंतर भरतेश्वरने "बेटा! मेरी शपथ है। मुझे बिलकुल कष्ट नहीं, लावो, बच्चेको इधर लावो, तुम दोनों यहां पासमें बैठे रहो" ऐसा कहकर दोनोंको पासमें बैठाल लिया। पासमें बैठे हुए दोनों पुत्रोंके साथ भरतेश्वर बहुत आनंदके साथ विनोद कर रहे हैं।

बेटा! तुमलोग अब गुरुकुलमें विद्याभ्यास कररहे हैं। क्या वह कष्टमय है या सुखमय है ? इस प्रकार भरतेशने अर्ककीर्तिसे पूछा।

अर्ककीर्ति कहने लगा कि स्वामिन्! विद्योपार्जनके समान अन्य कोई सुख नहीं है। उस सुखको हम कहांतक वर्णन कर सकते हैं ? अभ्यास, अध्यवसाय आदि आलस्यको दूर करनेके लिये प्रधान साधन हैं! शास्त्राभ्यास ज्ञानका साधन है। राजकुलमें उत्पन्न वीरोंके लिये यह विद्यासाधन भूषण है। सुखसाधन है।

भरतेश्वरने पुत्रसे कहा कि बेटा! प्रारंभमें विद्योपार्जन कुछ कठिन मालुम होता है, परंतु आगे जाकर वह सरल मालुम होता है। धीर व साहासियोंके लिये वह वह साध्य है। डरपोकोंके पास वह विद्यादेवी भी नहीं जाती। इसलिये उसकी कठिनाईयोंसे एकदम डरना नहीं चाहिये।

"पिताजी! हमें बिलकुल भी कष्टका अनुभव नहीं होता है; प्रत्युत् हमें उसमें और भी अधिक आनंद ही आनंद आता है। हमें किसी बातकी जल्दी नहीं है। इसलिये धीरे धीरे उसको साधन कर रहे हैं। इसलिये हमें कोई कठिनता नहीं होती है। उदयकालमें अभ्यास, दुपहरको पठन, और रात्रिके समयमें पठित पाठका चिंतन करना यह हमारे प्रतिनित्यका साधनक्रम है। हम मृदुमार्गसे व्यवस्थित रूपसे

जारहे हैं। इसलिये हमें उस मार्गमें कष्ट क्यों कर हो सकता है! पिताजी! आदिराजकी बुद्धीका मैं कहांतक वर्णन करूं! ग्रंथपठन व अभ्यासमें वह आदर्शरूप है। जिस प्रकार कोई पहिले अभ्यास कर भूले हुए विषयोंको एकदम स्मरण करता हो, उसी प्रकारकी हालत नवीन ग्रंथोंके अभ्यासमें आदिराजकी है अर्थात् बहुत जल्दी सभी ग्रंथ अभ्यस्त होते हैं। स्वामिन्! आपने उसका नामकरण करते हुए भगवान् आदिनाथका नाम जो रक्खा है वह बहुत विचारपूर्वक रक्खा है। उसमें अन्यथा क्यों हो सकता है! विचार करनेपर वह सचमुचमें आदिराज है। अंत्यराज व मध्यराज नहीं है। इस प्रकार आदिराजकी अर्ककीर्तिने प्रशंसा की।

भरतेश्वरने प्रसन्न होकर कहा कि " बेटा! सचमुचमें तुम्हारे भाई साहसी है! वीर है! बुद्धिमान् है! तुमको उससे संतोष हुआ है! बोलो तो सही! " पिताजी! विशेष क्या कहूं? अपने वंशके लिये वह आदिराज भूषणस्वरूप है। अर्ककीर्तिने कहा। -

अर्ककीर्तिके मुखसे अपने वर्णनको सुनकर आदिराज कहने लगा कि भाई! क्या बडे लोग छोटोंकी इस प्रकार प्रशंसा करते हैं! क्या राजपुत्रोंके लिये यह योग्य है! मुझमें इस प्रकारके गुण कहां है! आप व्यर्थ ही मेरी प्रशंसा क्यों कर रहे हैं! इतनेमें भरतेश्वरने कहा कि बेटा! कोई बात नहीं। बडे भाईने संतोषके साथ तुम्हारे विषयमें कहा। तुम दोनों ही भूषणस्वरूप हैं। इसलिये शांत रहो। अब दरबारको बरखास्त कर देते हैं। आप लोग अपने निवास स्थानको जाईयेगा। इस प्रकार कहकर आभरणोंसे भरे हुए दो करंडोंको उन पुत्रोंको भरतेश्वर देने लगे, तब उन दोनोंने लेनेसे इनकार किया। वे कहने लगे कि हमारे पास अभी आभरण बहुत हैं। अभी जरूरत नहीं। भरतेश्वरने बहुत आग्रह किया। फिर भी लेनेके लिये राजी नहीं हुए। तब वे कहने लगे कि बेटा! तुम लोग आज बहुत उत्तम कार्य कर चुके हो! इसलिये मैं दिये विना नहीं रह सकता। यदि तुम लोगोंने आज इसे नहीं लिया तो आगे कभी भी तुम लोगोंके हाथसे भी मैं भेट नहीं

लूंगा । भरतेश्वरने विचार किया कि कदाचित् बडे भाईने ले लिया तो बादमें छोटा भाई लेनेके लिये तैयार हो जायगा। इसलिये अर्ककीर्तिके तरफ हाथ बढाने लगे। परंतु उसने भी लिया नहीं, तब आदिराजसे भरतेश्वरने कहा कि बेटा ! तुम अपनेभाईसे लेनेको बोलो ! तब आदि-राजने अर्ककीर्तिसे लेनेकी प्रार्थना की । अब अर्ककीर्ति अपने भाईके वचनको टाल नहीं सका। उसने पिताजीसे प्रार्थना की कि हम इस उपहारको लेंगे । परंतु वृषभराजके हाथसे दिलाइयेगा । उसके हाथसे लेनेकी इच्छा है । तदनुसार दोनों करण्डोंको भरतेश्वरने वृषभराजके सामने रखा । प्रथमतः वृषभराजने दोनों भाईयोंको नमस्कार किया । फिर उसने उन आभरणोंके करण्डोंको हाथ लगाकर सरका दिया। छोटे भाई बडे भाईयोंको इनाम देरहा है । उसमें भी विनय है । इस नवीन पद्धतीको देखकर सब लोग आश्चर्यचकित हुए। वे तद्भव मोक्ष-गामीके पुत्र हैं, एवं तद्भवमोक्षगामी हैं । इसलिये वे व्यवहारमें किस प्रकार चूक सकते हैं ? उन आभरणोंको लेकर उनमेंसे एक २ हार निका-लकर दोनों कुमारोंने वृषभराजको पहना दिया । बाकीके लेकर जाने लगे।

इतनेमें एक विनोदकी घटना और हुई । बडे भाई आभरणकी पेटीको बगलमें रखकर जाने लगा तो छोटे भाई आदिराजने कहा कि भाई ! इस पेटीको आपके महल तक मैं पहूंचावूंगा, आप क्यों कष्ट ले रहे हैं ?

आदिराज ! तुम पिताजीके सामने व्यर्थ गडबड मत करो ! जो कुछ व्यवहार, विनय वगैरे बतलाना हो वह हमारे महलमें बतलावो ! यहां यह सब करना ठीक नहीं है । अर्ककीर्तिने कहा ।

भाई ! पिताजीके सामने ऐसा व्यवहार उचित क्यों नहीं ? क्या यह लुच्चे लफंगोंका आचार है ? या सज्जनोंका गौरव है ? हम क्या कोई बुरा काम कर रहे हैं ? जिससे कि पिताजीके सामने संकोच करें । आपको अपनी प्रतिष्ठाके समान ही चलना चाहिए और मुझे सेवाकृत्यके लिए आज्ञा देनी चाहिए । मैं कह रहा हूं, यह ठीक है या गलत है ? इस बातका निर्णय पिताजीसे ही पूछ कर कीजियेगा, अब तो कोई हर्ज नहीं है न ? इस प्रकार कहते हुए आदिराजने उस

आभरण की पेटीको लेनेके लिए हाथ बढाया, परंतु अर्ककीर्तिने हाथको हटाया तो भी "मैं नहीं छोड सकता" इस प्रकार कहते हुए आदिराज पेटीको छीनने लगा। दोनोंका विनयविनोदयुक्त युद्ध होने लगा। पुत्रोंके वर्तनपर भरतेश्वर अत्यंत संतुष्ट हुए। और कहने लगे कि बेटा! पेटी दो! उसकी भी इच्छापूर्ति होने दो। तब आदिराजको और भी जोर मिला। उसने पेटी अर्ककीर्तिसे छीन ली, और अपनी बगलमें दबाया। फिर दोनों पुत्रोंने भरतेश्वरको भक्तिसे नमस्कार किया व अपनी महलकी ओर प्रयाण किया। इधर भरतेश्वर आनंदके साथ विराजमान थे। आकाशप्रदेशमें गाजेबाजेका शब्द सुनाई देने लगा। मालुम हुआ कि प्रभासांक देव आरहा है। चित्तानुमती दासीको बुलाकर वृषभराजको उसके हाथमें सौंप दिया, और महलकी ओर भेज दिया। सम्राट् प्रभासांककी प्रतीक्षा करते हुए सिंहासनपर विराजमान हैं।

पाठकोंको इस बातका आश्चर्य होता होगा कि चक्रवर्ति भरतेश्वरको बारंवार उत्सवके बाद उत्सवका प्रसंग क्यों आता है? उनका पुण्य कितना प्रबल है! उन्होंने इसके लिये क्या अनुष्ठान किया होगा? इसका समाधान यह है कि पुण्यके जागृत रहनेपर मनुष्यका जीवन सुखमय बन जाता है। सम्राट्ने इस बातकी भावना अनेकभवोंमें की थी कि मेरी आत्मा सुखमय बने, इस भवमें भी वे हमेशा भावना करते हैं कि:—

सिद्धात्मन्! पट्कमलोंके पचास दलोंपर अंकित पचास शुभ अक्षरोंको ध्यान कर जो अपने आत्मसाक्षात्कार करते हैं उनको आपका दर्शन होता है। हमें भी आपके दर्शनकी इच्छा है, इसलिये सुबुद्धी दीजियेगा। हे परमात्मन्! जो तुम्हारी भावना करते हैं उनको रात्रिदिन आनंदके ऊपर आनंद देकर संरक्षण आप करते हैं। क्योंकि आप नित्यानंदमय है। इसलिये मेरे हृदयमें निरंतर बने रहनेकी कृपा करें"!

इसी भावनासे भरतेश्वरको नित्यानंद मिल रहा है।

इति प्रभासामरचिन्ह संधि।

विजयार्धदर्शन संधि।

प्रभासामर अपनी सेना व विमान आदि वैभवके चिन्होंको समुद्र-तटपर ही छोडकर चक्रवर्तीके पास बहुत आनंदके साथ आरहा है। प्रतिभास नामक प्रतिनिधि व मंत्री उसके साथ है। साथ ही सुरकीर्ति व ध्रुवगति भी मौजूद हैं। वह प्रभासामर बहुत सुंदर है। अनेक रत्न-निर्मित आभरण व दिव्य वस्त्रोंके धारण करनेसे और भी सुंदर मालुम होता है। गौरवर्ण है। इतना ही नहीं उसका मन भी शुभ्र है। बहुत ही भय व भक्तिसे युक्त होकर वह सम्राट्के पास जारहा है, इधर उधरसे चक्रवर्तीकी सेनाके घोडे हाथी, रथ व अगणित पायदल आदि विभूतियोंको देखते हुए उसे मनमें आश्चर्य हो रहा है। सभामें प्रवेश करनेके बाद भरतेश्वरका वैभव देखकर प्रभासामर आश्चर्यचकित हुआ। उस विशाल सभामें वेत्रधारीगण " रास्ता छोडो, बैठो, हल्ला मत करो " आदि शब्दोच्चारण करते हुए व्यवस्था कर रहे हैं।

प्रभासामरने सिंहासनपर विराजमान चक्रवर्तीको देखा। देखते ही उसके मनमें विचित्र विचार उत्पन्न हुए। क्या यह चक्रवर्ती है? देवेंद्र है? या कामदेव है? चंद्र है या सूर्य है? इत्यादि अनेक प्रकारके विचार उसके मनमें उत्पन्न हुए। पासमें जानेके बाद ध्रुवगति और सुरकीर्तिने नमस्कार कर प्रार्थना की कि स्वामिन्! प्रभासेंद्र यही है। हम लोगोंने जाकर जब यह समाचार कहा कि सम्राट् समुद्रके तटपर विराजते हैं, तब वह बहुत ही प्रसन्न हुआ। कहने लगा कि मैं आज कृतार्थ हुआ, मेरा जन्म सफल हुआ। इससे पहिले जिसने मागधामर, वरतनुको पवित्र किया है ऐसे स्वामी मेरे उद्धारके लिए पधारे, मेरा परम भाग्य है इत्यादि अनेक प्रकारसे उन्होंने हर्ष प्रकट किया। इतना ही नहीं, स्वामिन् विशेष क्या? हम लोग आपके समाचार लेकर वहां गये थे। इसलिए हम लोगोंसे कहने लगा कि बंधुवर! पहिलेका बंधुत्व तो अपने साथ है ही। फिर भी आज आप लोग स्वामीके अभ्युदय

समाचारको लेकर आये हैं। इसलिए आप लोगोंसे अधिक हितैषी हमारे और कौन होंगे ? ऐसा कहते हुए हम लोगोंको प्रेमसे आलिंगन दिया व हमारा यथेष्ट सत्कार किया। स्वामिन् ! अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन ? आपके दर्शन करने की उत्सुकतासे वह वहांपर आया है। आपके सामने खडा है, इस प्रकार कहकर वे दोनों देव खडे होगये।

इसके बाद प्रभासेंद्रने चक्रवर्तीके ऊपर चांदीके पुष्पोंकी वृष्टि बहुत भक्तिसे की। अनेक वस्त्र, आभूषण, रत्न, मोती आदिको भेंटमें चक्रवर्तीके चरणोंमें समर्पण किया व अपने मंत्रीके साथ साष्टांग नमस्कार कर चक्रवर्तीकी स्तुति करने लगा।

"आदितीर्थेशाग्रसुकुमार जय जय, आदिचक्रेश मां पाहि, भो देव ! धन्योसि" ऐसा कहते हुए सम्राट्के चरणोंमें नमस्कार किया। चक्रवर्तीने प्रसन्नताके साथ उसे उठनेके लिए कहा। प्रभासेंद्र उठकर खडा हुआ। पुनः भक्तिसे चक्रवर्तिकी स्तुति करने लगा।

निमिषलोचनेंद्र ! कलंकरहितान्यून चंद्र ! उष्णरहित सूर्य ! सशरीर कामदेव ! तुम राजाके रूपमें सबको सुख पहुंचानेके लिए आये हो। स्वामिन् ! अयोध्यानगरीमें रहनेपर समुद्रके अनेक व्यंतर उन्मत्त होकर दुर्मार्गगामी बनेंगे, इसलिए हम लोगोंका उद्धार करनेके-लिए आप यहां पधारे हैं। स्वामिन् ! आप परमात्माको प्रसन्न करचुके हैं, इसलिये इसी भवसे मुक्तिको पधारने वाले हैं। हे सुमुख ! आपकी सेवा करनेका भाग्य लोकमें सबको क्यों कर मिलसकता है ? हम लोग सचमुचमें भाग्यशाली हैं।

इतनेमें भरतेश्वरने प्रभाससे "सुमुख ! तुम बहुत थक गये होगे अब बैठजावो," ऐसा कहते हुए एक आसनके प्रति इशारा किया। अपने मंत्रीके साथ वह भी उचित आसनपर बैठ गया।

सुरकीर्ति व ध्रुवगतिको भी बैठनेके लिये आज्ञा देकर सम्राट्ने बुद्धिसागरकी ओर देखा। बुद्धिसागर मंत्री सम्राट्के भावोंको समझकर कहनेलगा कि स्वामिन् ! प्रभास देव अत्यंत विवेकी है। मायारहित है,

आपका परमभक्त है, आपके पादकमलोंकी सेवा करनेकी इच्छा रखता है, सचमुचमें वह धन्य है कि आपकी सेवाके भाग्यको पाया है। इससे अधिक और कौनसी संपत्ति होसकती है! इससे पहिले मागधामर व वरतनु पुण्यभागी थे। अब ये तीनों ही पुण्यशाली हैं।

मंत्रीके वचनको सुनकर वे तीनों देव बहुत प्रसन्न हुए, बुद्धिसागरने भ्रुवगति व सुरकीर्तिकी भी प्रशंसा की। साथमें यह भी कहा कि स्वामिन्! अब प्रभासेंद्र अपने राज्यको जाना चाहे तो उसे जानेकी अनुमति दी जाय और आगे जिस स्थानपर आप मुक्काम करें उसी स्थानपर आवें।

भरतेश्वरने भी प्रभासामरको मंत्रीसहित बुलाकर अनेक प्रकारके वस्त्र आभूषण रत्नोंको भेंटमें दिये। साथमें सुरकीर्ति व भ्रुवगतिका भी सन्मान किया किया। इतनेमें एक और संतोषकी घटना हुई।

राजदरबारमें जिस समय प्रभासदेवके मिलापमें हर्षसंलाप होरहा था, उस समय उधर महलमें पांच राणियोंने पांच पुत्र रत्नोंको प्रसव किया है। श्रीमाला, वनमाला, गुणदेवी, मणिदेवी, और हेमाजी, नामक पांच राणियोंने अत्यंत सुंदर पांच पुत्रोंको जन्म दिया है। जो कामदेवके पंचबाणोंको भी तिरस्कृत कर रहे थे।

अंतःपुरसे पंचपुत्रोंकी उत्पत्तिके समाचारको लेकर जो दासियां आई हैं वे बहुत चातुर्यके साथ आरही हैं। क्यों कि उनको भेजनेवाली राणियां भी कम बुद्धिमती नहीं थीं। यदि क्रमसे दासियां जाकर कहेंगी तो अमुक राणीका पुत्र छोटा है, अमुकका बडा है, अमुकने पहिले जन्म लिया इत्यादि सिद्ध होजायगी। इसलिए दासियोंको एक पंक्तिसे जाकर एकसाथ कहनेके लिए उन राणियोंने आदेश दिया था। इसलिए वे दासियां एक पंक्तिमें ही खडी होकर भरतेश्वरके दरबारमें आनंदसे फूलकर आरही हैं। भरतेश्वरने दूरसे ही देखकर समझ लिया कि ये पांचों दासियां पुत्र जन्मके हर्षसमाचारको लेकर आरही हैं। और कोई बात नहीं। पासमें आकर उन पांचोंने पांच राणियोंको

पुत्रोत्पत्ति होनेका समाचार सुनाया; भरतेश्वरको हर्ष हुआ। पांचों दासियोंको अपने कंठमें धारण किये हुए रत्ननिर्मित पांच हारोंको इनाम दिया। उस दरबारमें उपस्थित राजा व प्रजावोंको यह समाचार सुनकर इतना हर्ष हुआ कि शायद उनके हाथमें ही चक्रवर्तीकी संपत्ति आगई हो।

उसी समय प्रभासांक कहने लगा कि स्वामिन्! मैं अपने राज्यमें जाकर वहांपर क्या कर सकता हूं। यहां रहनेसे ये सब महोत्सव तो देखनेके लिए मिले। मैं बडा भाग्यशाली हूं। उसी समय प्रभासांकने अपने मंत्रीको बुलाकर आज्ञा दी कि तुम जल्दी अपने राज्यमें जाकर अगणित रत्न, वस्त्र, आभूषण वगैरे भेटके लिए ले आवो। आज्ञा पाकर वह चला गया। भरतेश्वरने भी सबको दरबारसे विदा किया व निरंजनसिद्ध शद्वको उच्चारण करते हुए महलकी ओर गये। वहांपर सबसे पहिले पांच पुत्रोंको देखकर फिर उनका यथोचित जातकर्म संस्कार किया। फिर बादमें नामकर्मोचित दिनमें नामकरण संस्कार किया। उस दिन आधीनस्थ सब राजावोंने नामकरण संस्कारके हर्षोपलक्ष्यमें अनेक रत्न, वस्त्र, उपाहारोंको भेटमें चक्रवर्तीकी सेवामें समर्पण किया। इसी प्रकार प्रभास देवने भी उत्तमोत्तम उपहारोंको भेंटकर अपना हर्ष और भक्तिको प्रगट किया। भरतेश्वरको परमात्मा प्रिय है। इसलिए उन पुत्रोंके नामकरणमें भी उन्होंने परमात्माका ध्यान रक्खा। उन पुत्रोंका क्रमसे हंसराज, निरंजन सिद्धराज, महांशुराज, रत्नराज, संसुखराज, इस प्रकार नाम रखा गया। छह महिनेतक भरतेश्वरने उसी स्थानपर मुकाम किया। बादमें वहांसे सेनाका प्रस्थान हुआ।

हिमवान् पर्वतमें गंगाके समान ही उदय पाकर दक्षिणकी ओर बहती हुई पश्चिम समुद्रमें जा मिलनेवाली सिंधुनामक महानदी मौजूद है। उसके दक्षिण तटको अनुसरण कर भरतेश्वरकी सेना जारही है। जहां इच्छा होती है, मुकाम करते हैं। फिर आगे चलते हैं। बीच बीचमें जहां तहां पुत्र रत्नोंकी प्राप्ति हुई है या हो रही है, उनको योग्य

वयमें आनेके बाद उपनयनादि क्षत्रियोचित संस्कारोंको कराते हुए जारहे हैं। कभी पर्वतोंपर चढकर जाना पडता है। कभी मैदानसे जाते हैं। कभी चढते हैं। कभी उतरते हैं। इस प्रकार बहुत आनंदके साथ जारहे हैं। कभी कभी मार्ग न होनेके कारण कोई कोई पर्वतोंको तोडकर मार्ग बनाते जाते हैं। पर्वतोंको तोडते समय उनमें अनेक रत्न सुवर्ण वगैरे मिलते हैं। "उन सबके लिये सेनापति ही अधिकारी है" इस प्रकार भरतेश्वरकी ओरसे आज्ञा हुई है। सेनामें किसीको कोई प्रकारका कष्ट नहीं है। इतना ही नहीं। प्रयाणके समय किसी भी मनुष्यके पेटका पानी भी नहीं हिल रहा है। किसी भी प्राणीके पैरमें कांटे भी नहीं लगते हैं इतने सुखसे प्रयाण हो रहा है।

इस प्रकार अत्यन्त सुखके साथ अनेक मुक्कामोंको तय करते हुए सम्राट् एक ऐसे पर्वतके पास आये जो चांदीके समान शुभ्र था। वह कोई सामान्य पर्वत नहीं है, विजयार्ध पर्वत है। आकाशको स्पर्श करने जा रहा हो जैसे ऊंचा है, पूर्व और पश्चिम समुद्रको व्याप्त कर चांदीके दीवालके समान अत्यन्त सुंदर मालुम हो रहा है। उस पर्वतके दक्षिणमें एक सौ दस नगर हैं। जिनमें विद्याधरोंका आवास है। उन नगरोंमें गगनवल्लभपुर व रथनूपुरचक्रवालपुर नामक दो नगर अत्यंत प्रसिद्ध और श्रेष्ठ हैं। वहांपर क्रमसे नमिराज, विनमिराज नामक दो भाई राज्य पालन कर रहे हैं। नमिराज विनमिराज सम्राटके निकटबंधु हैं। भरतेश्वरकी माता यशस्वती देवीके भाई श्रीकच्छ और महाकच्छ राजाके वे पुत्र हैं। अर्थात् भरतेश्वरके मामाके पुत्र हैं। वे दोनों अत्यंत प्रभावशाली हैं। सब विद्याधरोंको अपने आधीन बनाकर विद्याधर लोकका राज्यपालन कर रहे हैं।

विजयार्धपर्वतके दक्षिणोत्तर भागमें विद्याधरोंका निवास है, विजयार्धपर्वतके मस्तकपर विजयार्धदेव नामक राजा राज्य पालन कर रहा है। इसके अलावा किन्नर यक्ष आदि देव भी वहांपर रहते हैं। इस प्रकार गंगा नदी और विजयार्ध पर्वतके बीचमें एक खंड और सिंधु

नदी और विजयार्धके बीचमें एक खंड ये दोनों म्लेच्छ खंड कहलाते हैं। विजयार्धके दक्षिणमें गंगा और सिंधुके बीचका जो भाग है वह आर्यखंडके नामसे कहा जाता है। इस प्रकार विजयार्धपर्वतके उत्तर भागमें भी तीन खंड हैं, जिनको उत्तरसे हिमवान् नामक पर्वत पूर्व और पश्चिम समुद्रतक व्याप्त होकर सीमाका काम कर रहा है। दोनों पर्वत, दो समुद्र और दो महानदियोंके बीचमें छह खंडका विभाग है। इसीको भरत क्षेत्रका षट्खंड कहते हैं। उसे भरतेश्वर अपने शौर्यसे पालन करते हैं। विजयार्द्ध पर्वततक तो भरतेश्वर आये। उनको अब वहांपर विद्याधरलोकको वश करनेका है। फिर विजयार्ध पर्वतको पारकर उत्तर भागके म्लेच्छखंडको भी वश करनेका है। विजयार्ध पर्वतमें एक बडे भारी अत्यंत मजबूत वज्रद्वार मोजूद है, जो हजारों क्या, लाखों वर्षोंसे बंद है। उसे अपने दण्डसे फोडकर भरतेश्वर आगे बढेंगे।

भरतेश्वरने आगेके कार्यको विचारकर सेनाधिपतिको बुलाया एवं विजयार्धपर्वतके इधर चार योजन प्रमाणमें एक खाई निकाली जावे इस प्रकारकी आज्ञा उसे देदी। और साथमें वह भी कहा कि आज तो तुम विश्रांति लो, और कल अपनी महल और सेनाके रक्षणके लिये तुम्हारे भाईयोंको नियुक्त करके तुम व्यंतरवीर व आवश्यक सेनावोंको लेकर जावो। फिर खाई निकालनेका कार्य करो।

विजयार्धपर्वतका कपाट (द्वार) हजारों वर्षोंसे बंद है। उसे एकदम तोडनेसे उससे अग्नि निकलकर बारह कोस तक आगे उछलकर आयेगी। इसलिये आगे वह आकर बाधा न दे सके इस प्रकार होशियारीसे खाईका निर्माण करो। लोकमें एक सामान्य लोहेसे दूसरे लोहेको कूटते हैं तो अग्नि निकलती है, फिर दण्ड रत्नसे वज्रकपाटको कूटनेपर अग्नि नहीं उठेगी क्या? एक लकडीको दूसरी लकडीके साथ घर्षण करनेपर उससे अग्निकी उत्पत्ति होकर जंगलके जंगल भस्म हो जाते हैं। पर्वतको दण्डरत्नसे कूटनेपर अग्नि प्रज्वलित होवें तो इसमें आश्चर्य क्या है? यह सब लौकिक दृष्टांत है। गुफामें अग्निका भरा

रहना स्वाभाविक है। इसलिये उस अग्निको रोकनेके लिये जलकी खाई ही समर्थ है। यदि इस प्रकारकी खाई की व्यवस्था नहीं हुई तो वह अग्नि भयंकररूपसे प्रज्वलित होकर अपनी सेनाको दबाती हुई आयगी। सेना भयभीत हो पलायन करेगी। सभी सेनाने मिलकर उस अग्निको बुझानेके लिये प्रयत्न किया तो भी वह निष्फल हो जायगा। जैसे २ सेना उस प्रलयके समान भयंकर अग्निको दबानेके लिये प्रयत्न करेगी वैसे ही वह और भी प्रज्वलित होकर सेनाको दबाती हुई बढेगी। ऐसी अवस्थामें इन सब कष्टोंको सामना करनेसे क्या प्रयोजन ? एक जलकी खाई बनाई गई तो सब कष्ट दूर होते हैं। अग्नि उस खाईसे इधर नहीं आसकेगी। हम लोग निराकुलतासे इधर रह सकते हैं। यह अपनी तरफ आनेवाली अग्निको रोकनेका उपाय है। इसी प्रकार सिंधु नदीके पश्चिमभागमें कदाचित् वह अग्नि व्याप्त होगई तो प्रलयकालकी अग्निके समान वह व्याप्त होकर वहांकी भूमिको जलायगी, प्रजावोंको महाकष्ट होगा। इसलिये वहांपर भी एक खाईका निर्माण करो। उत्तरमें पर्वत है। वह अग्निको रोक सकेगा। दक्षिणमें सिंधु नदीके दोनों तटोंतक खाई होनेसे उसमें पानी भर जावेगा। वह पानी उत्तर भागके पर्वततक पहुंचे तो सबका संरक्षण होगा। इस प्रकारकी व्यवस्था बहुत विचारपूर्वक करो। सेनापतिको आज्ञा देते हुए उसी समय वरतनु, प्रभासांक आदि व्यंतर राजावोंको भी बुलाकर उनको आज्ञा दी कि इस कार्यमें आप लोग भी योग देकर सेनानायक जैसा कहें उसकी इच्छानुसार सहायता देवें। उन लोगोंने सम्राट्की आज्ञाको शिरोधार्य किया।

तदनंतर सेनाका मुक्काम उस विजयार्ध पर्वतके पास करनेके लिए आज्ञाभेरी बजाई गई। क्षणभरमें सब व्यवस्था होगई। सब लोगोंके लिये मकान, महल, मंदिर वगैरहकी व्यवस्था देखते २ होगई। विशेष क्या ? एक विशालराज्यकी ही वहांपर स्थापना होगई। भरतेश्वरने सब राजा प्रजावोंको योग्य उपचारपूर्ण वचनोंसे संतुष्ट कर अपने २ स्थानपर भेज दिया। और स्वयं अपने लिए निर्मित सुंदर महलमें प्रवेश कर गये।

भरतेश्वरका कितना अद्भुत सामर्थ्य है ? जहां जाते हैं वहां अलौकिक वैभवको प्राप्त करते हैं। कैसा भी भयंकरसे भयंकर संकट क्यों न हो उसे बहुत दूरदर्शितापूर्वक विचारकर टाल देते हैं। अपनी प्रजावोंको कोई प्रकारका कष्ट न हो इसकी उन्हे सतत चिंता रहती है। उसके लिए वे बहुत शीघ्र व्यवस्था करते हैं। उन्हें सब प्रकार की अनुकूलता भी मिलती है। इन सब बातोंका कारण क्या है ? इसका एक मात्र उत्तर यह है कि यह पूर्व पुण्यका फल है। उनकी सतत होनेवाली पुण्यमय भावनाका फल है। वे रात्रिंदिन इस प्रकारकी भावना करते रहते हैं कि—

हे सिद्धात्मन् ! आप लोकमें सबको सहसा प्रत्यक्ष नहीं होते हैं। जो लोग ध्यानरूपी करवतसे देह और आत्माके अन्योन्य मिलापको भिन्न करना जानते हैं उनको आपका रूप प्रत्यक्षमें देखनेमें आता है। आप प्रकाशमान होकर दीखते हैं। इसलिए हे सिद्धात्मन् ! हमें आप नित्य दर्शन दीजियेगा।

हे परमात्मन् ! आप अक्षय सामर्थ्यको धारण करनेवाले हैं। अनुपम लावण्यकी आप मूर्ति हैं। मोक्षमें आप अग्रगण्य हैं, श्रेष्ठ हैं। इतना ही नहीं आपके द्वारा ही लोककी रक्षा होती है। इसलिए परमात्मन् ! आप साक्षात् मेरे हृदयमें बने रहें।

इस प्रकारकी भावना भरतेश्वर रात दिन अपने हृदयमें करते हैं। इसीका यह फल है कि उनको प्रत्येक काममें जय और सिद्धी की प्राप्ति होती है।

इति विजयार्द्धदर्शन संधि।

कपाटविस्फोटन संधि।

आठ दिनके बाद भरतेश्वरकी सेवामें जयकुमार उपस्थित होकर निवेदन करने लगा कि स्वामिन् ! आपकी आज्ञानुसार जलभरित खाई का निर्माण होगया है। आपको उस बातकी सूचना देनेके लिए मैं सेवामें उपस्थित हुआ हूं। भरतेश्वर उसके वचनको सुनकर प्रसन्न हुए, और इस कार्यको करनेके लिए जिन्होंने योग दिया उन सब व्यंतरेंद्रोंका और जयकुमारका बहुतसे वस्त्र आभूषणोंसे सन्मान किया। दूसरे दिन सम्राट्ने मंत्री और सेनापतिको अपनी महलमें बुलाया, और वज्रकपाटको तोडनेके सम्बंधमें वार्तालाप करते हुए कहा कि मंत्री ! सेनापति ! सुनो, विजयार्द्धपर्वतमें जो वज्रकपाट है। उसे मैं कल ही खण्ड कर देता हूं। उस वज्रकपाटको तोडना कोई बडी बात नहीं। और न इसकी मुझे सचमुचमें आवश्यकता ही थी। फिर भी पूर्वोपार्जित कर्मको कौन उलंघन कर सकता है? । उसके फलको तो भोगना ही पडेगा। मेरा जन्म अयोध्यामें हो, और सब राज्योंपर अधिपत्यको जमाकर मैं इस पर्वतको पारकर उधरके राज्योंको भी वश करूं यह मेरी विधिका आदेश है। उसका पालन करना तो मेरा कर्तव्य है। किसी कार्यमें चिंता करनेकी जरूरत नहीं। परमात्माकी भावना करते हुए हम प्रत्येक कार्य करते हैं। ऐसी अवस्थामें निराश होनेकी जरूरत नहीं है। इस प्रकार भरतेश्वरने कहा। स्वामिन् ! परमात्माके स्मरणसे आप कर्मपर्वतको फोड सकते है। फिर इस मामूली पर्वतको तो तोडनेमें आपको क्या कठिनता है। सब कुछ साध्य हो जायगा। इसमें हमें किसी प्रकार भी संदेह नहीं है। स्वामिन् ! जो वज्रकपाट हाथी सिंहोंके समान भयंकर, आकाशके समान उन्नत है, उसको फोडनेमें सरलता आपको ही होसकती है। दूसरे लोग उसके पास भी नहीं जा सकते। इत्यादि प्रकारसे कहते हुए सेनापति व मंत्रीने भरतेश्वरकी प्रशंसा की।

उन दोनोंका सत्कारकर भरतेश्वरने उनको वहांसे अपने २ स्थानमें जानेके लिए कहा। फिर दसवें दिन प्रातःकाल भरतेश्वरने जिनेंद्र भगवंतकी पूजा की, फिर विजयार्धकी तरफ जानेके लिये निकले। वीरोचित वस्त्र व आभूषणोंसे अलंकृत होकर बाहर आये, वहांपर पवनंजय नामक घोडेका पहिलेसे श्रृंगार कर रखा था। वह अश्वरत्न है। उसपर भरतेश्वर आरूढ हुए। उस समय भरतेश्वर उस सुंदर अश्वपर चढकर उच्चैश्रव घोडेपर चढे हुए इंद्रके समान मालुम हो रहे थे। कविगण वर्णन करते हैं कि सूर्य सात घोडोंपर आरूढ होता है। परंतु तेजमें भरतेश्वर भी सूर्यसे कम नहीं हैं। यह सूर्य उन सात घोडोंमेंसे एक ही घोडेको लेकर उसपर आरूढ हुआ है। इस प्रकार देखनेवालोंके मनमें कल्पना होती है। भरतेश्वरने अपने यज्ञोपवीतको सम्हालते हुए श्रीसर्वज्ञ भगवंतका स्मरण किया। तदनंतर दाहिने हाथको दाबकर घोडेको चलनेके लिये इशारा किया, घोडा आगे बढा। भरतेश्वरने सेनाकी ओर उस घोडेको चलाते हुए लय, धारा, गति, जव, भ्रामक, नामके पांच प्रकारकी चालोंसे अश्वविद्याका प्रदर्शन किया। अनेक तरहसे घोडा अपनी चालको बतला रहा है। एक २ दफे तो वह कितने ही योजनोंतक छलांग मारकर अपने गतिनैपुण्यको बतला रहा है। कितने ही जोरसे वह छलांग मारे परंतु भरतेश्वर बराबर अचलरूपसे बैठे हुए हैं। घोडा अब सेनास्थानको छोडकर पर्वतकी ओर चला गया, अब सेनापति व सेना सब उसी स्थानमें रह गये। भरतेश्वरके साथमें जो नियत गणबद्ध देव मौजूद है, वे और मागधामर आदि व्यंतर हैं वे रुक न सके। वे साथमें ही आगये।

कुछ लोग ऐसा वर्णन करते हैं कि भरतेश्वरने जयकुमार जो सेनापतिरत्न है, उसे भेजकर उसके हातसे वज्रकपाटका विस्फोटन कराया। परंतु यह ठीक नहीं है। चक्रवर्तियोंको अश्वरत्न, गजरत्न आदि स्त्रीरत्नके समान है, उन रत्नोंका उपभोग वे स्वतःही कर सकते हैं। स्त्र चक्रवर्तीको छोडकर अन्य सामान्य लोगोंको अपनी पीठ दे

नहीं सकते। क्यों कि राजाके खडाऊ, सिंहासन, आदि उसके सेवकके भोगके लिये योग्य नहीं है।

भरतेश्वरने कुछ दूर चलनेके बाद दूरसे ही उस वज्रकपाटको देखलिया। वह पर्वत ऊंचाईमें पच्चीस कोस प्रमाण है। उसमें आठ कोस ऊंचाई व बारह कोस चौडाईके प्रमाणमें व्यवस्थित वह वज्रकपाट है। अंदरसे क्रोधाग्निको धारण कर बाहरसे शांत दिखनेवाले क्षुद्रोंके समान वह पर्वत मालुम होरहा था।

भरतेश्वरने मागध, वरतनु, प्रभासांकको बुलाकर कहा कि देखो! यही तमिस्र नामक गुफा है। यही वज्रद्वार है। यह कैसा मालुम होता है देखो तो सही। जैसे कोई क्रोधी दंतकीलन कर बैठा हो इस प्रकार यह भी दिख रहा है। अब इसके दांतोंको तोडकर मुंह खुलवा देता हूं। देखो तो सही, इस प्रकार भरतेश्वरने हंसते हुए कहा। लोकमें ओसका समूह बच्चोंको पर्वतके समान मालुम होता है, उससे वे डरते हैं। परंतु मेरे लिये यह वज्रद्वार भी कोई बडी चीज नहीं, अभी देखते २ तोड डालूंगा। स्वामिन्! उन व्यंतरेंद्रोने कहा कि लोकमें अमावस्याके अंधकारको दूर करनेके लिये सूर्य समर्थ है, मामूली दीपकोंमें वह सामर्थ्य कहां? इसी प्रकार यह कार्य लोकमें अन्य सर्व वीरोंके लिये अतिसाहसका है, परंतु आपके लिये तो अत्यंत अल्प है।

भरतेश्वरने उन व्यंतरेंद्रोंको इशारा किया कि अब आप लोग उस जल खाईकी उस ओर चले जावें। और स्वयं दण्डरत्नको वीरताके साथ सम्हालने लगे। उसके बाद सम्राट्‌ने षट्‌पंचअक्षरोंको देखकर भगवान् आदिनाथके चरण कमलोंका स्मरण किया। तदनंतर अपने निर्मल चित्तमें परमात्माका ध्यान किया। अपने बांये हाथसे घोडेके लगामको वे लिये हुए हैं, दाहिने हाथसे दण्डको धारण किया है, अब उस वज्रकपाटको तोडनेके लिये सन्नद्ध हुए। दण्डायुधको हाथमें लेकर उस वज्रकपाटपर जोरसे प्रहार किया। पतली ईंटके समान वह दो टुकडोंमें विभक्त हुआ, जिससमय कांसेके पर्वत टूटनेके समान शब्द

हुआ। वह घोडा बिजलीके समान वहांसे दौडा। मेघ और वज्रमें अंतर नहीं है ! यहां तो वज्रदण्डसे वज्रकपाटका संघट्टन हुआ है । मेघके टक्करमें जिसप्रकार भयंकर आवाज होती है इसी प्रकार दोनों वज्रोंके संघट्टनमें शब्द होने लगा। विशेष क्या ? भरतेश्वरके वज्रप्रहार व उस वज्रकपाटका विभाग होते समय विजयार्द्ध पर्वत ही हिलने लगा। भूकंप होने लगा। समुद्र एकदम उमडकर आने लगा। भरतेश्वरने एक निमिष मात्रमें वज्रद्वारको टुकडाकर रख दिया। वह कोई सामान्य नहीं था, फिर भी भरतेश्वरने उसे लीलामात्रसे तोड ही दिया। भरतेश्वरकी सेनाको पर्वतपार करनेके लिये वह द्वार प्रतिबंधरूप था, इसलिये भरतेश्वरने उसे तोड दिया। जब बडेसे बडे वज्रकपाटको इस प्रकार एक ही प्रहारसे तोडते हैं तो फिर उनके सामने शत्रुगण किस प्रकार टिक सकते हैं ? उनको दो चार मार पडने तक क्या वे उसे सहन कर सकेंगे ? कभी नहीं। भरतेश्वरकी वीरता असाधारण है, अजेय है, उसकी बराबरी कोई भी नहीं कर सकते।

उस गुफासे प्रलयकालकी ही अग्नि निकलकर आई। किसी पानीके द्वारको खोलनेपर जिस प्रकार पानी एकदम निकल आता हो उसी प्रकार उस गुफासे अग्नि निकलकर बाहर आई। वज्रकपाट दर्र आवाजके साथ खुला, उस समय अग्नि बुस्स, बुर्र आवाज करती हुई प्रज्वलित हुई। घोडा सुर्र आवाज करते हुए पलायन कर गया। अग्नि सर्वत्र व्याप्त होगई, वर्षोंसे उस विजयार्ध गुफामें आवृत अग्निने बाहर निकलकर प्रचण्डरूपको धारण किया। सर्वत्र हाहाकर मच गया, पर्वत अग्निमय बन गया है, बडे २ वृक्ष भस्म होगये। विद्याधर लोग इस प्रलयकालकी अग्निको देखकर घबराये। विजयार्धदेव भरतेश्वरकी वीरतापर मुग्ध हुआ। दण्डायुधका प्रहार उस कपाटपर जिससमय किया उस समय एकदम भूकंप ही होगया थां। सब लोग मेघाघातसे जिस प्रकार घबराते हैं उसी प्रकार घबराने लग गये। मागधेंद्रादि वीर व्यंतर भी घबराये। सेना समूहमें सर्वत्र कोलाहल मच गया है। परंतु भरतेश्वरका सामर्थ्य व धैर्य अतुल है। वे खाईके पास खडे होकर

बहुत आनंदके साथ उस शोभाको देख रहे हैं। उनके आसपास ही व्यंतर वीर खडे हैं।

इतनेमें वहांपर एक उत्सव और हुआ। विजयार्ध देव भरतेश्वरकी वीरतासे अत्यंत प्रसन्न हुआ। वह अपने परिवार देवतावोंके साथ आकाश प्रदेशमे खडे होकर भरतजीके प्रति जयजयकार शब्द कर रहा है। एवं भरतेश्वरके ऊपर उसने पुष्पवृष्टि की। इतना ही नहीं, भरतेश्वरको उस अग्निकी गर्मी लगी होगी, इस विचारसे गुलाबजल, कर्पूर, चंदन आदि शीतल पदार्थोंको भी वृष्टि की। किन्नर, किंपुरुष जातिके देव भरतकी वीरताको गाने लगे। पासमे ही गंधर्वगणिकायें आनंदसे नृत्य करने लगी। तदनंतर वह विजयार्धदेव अनेक उत्तमोत्तम वस्त्र, आभरण रत्न आदि उपहारद्रव्योंको साथमें लेकर परिवार सहित भरतेश्वरके दर्शनके लिये आया। अनेक उत्तम उपहारोंको भरतेश्वरके चरणोंमें समर्पण कर भरतेश्वरको बहुत भक्तिसे साष्टांग नमस्कार किया व निवेदन किया कि स्वामिन्! हम लोगोंकी दृष्टि आज सफल होगई। साथमें विजयार्ध देवने अपने सब परिवारसे भरतेश्वरके चरणको नमस्कार कराया। भरतेश्वरने मागधामरकी ओर देखा। मागधने सम्राट्के अभिप्रायको समझकर निवेदन किया कि राजन्! यह विजयार्ध देव है, यह इस विजयार्धपर्वतका अधिपति है। वह बहुत सज्जन है। आपकी सेवाके लिये सर्वथा योग्य है। उसके प्रति आपका अनुग्रह होना चाहिये। उस समय विजयार्धदेव कहने लगा कि मागधामर! लोकमें मोक्षमार्गी व तद्भवमोक्षगामी स्वामीको प्रसन्न करनेका भाग्य सबको नहीं मिला करता है। सचमुचमें तुम हम कृतार्थ हुए कि ऐसे स्वामीको प्रसन्न किया। मागधामरने भरतेश्वरसे निवेदन किया कि स्वामिन्! अब इस विजयार्धदेवको अपने राज्यमें जानेके लिये आज्ञा दीजाय और अपन जिस समय उत्तर खण्डकी ओर प्रयाण करेंगे उस समय यह आसकता है। भरतेश्वरने भी उसे पास बुलाकर उसे अनेक प्रकारके भेंट दिये। विजयार्धदेवने भी स्वामीकी आज्ञा पाकर उसे बहुत भक्तिसे नमस्कार-कर अपने परिवार सहित प्रस्थान किया। विजयार्ध देवके जानेके बाद

उस तमिस्र गुफाके अधिपति कृतमाल नामक व्यंतरदेव आया। उसने भी अनेक रत्ननिर्मित उपहारोंको समर्पण कर भरतेश्वरके चरणोंको साष्टांग नमस्कार किया। मागधामरने कृतमालदेवका परिचय कराया कि स्वामिन्! यह अपने बंधु कृतमाल देव है। जिस तमिस्रगुफाके आपने वज्रकपाटको अभी तोडा है उसी गुफाका यह अधिपति है। वह विनीतभावसे आपकी सेवाके लिये उपस्थित हुआ है। चाहे उसे फिलहाल अपने स्थानकी ओर जानेके लिए आज्ञा दीजाय, आगे सेना-प्रस्थानके समय आये तो काम चलसकता है। भरतेश्वरने भी योग्य सत्कारके साथ उस कृतमालको भेज दिया।

भरतेश्वरने अब सेनास्थानमे जानेके लिये अपने घोडेको फिराया। सेनाकी ओर आते समय भरतेश्वर ऐसे मालुम होरहे थे कि जैसे कोई देवेंद्र ही स्वर्गसे उतरकर आ रहा हो। एक निमिषमात्रमें वह अश्वरत्न भरतेश्वरको इच्छित स्थानपर लाया। सेनास्थानमें प्रवेश करते ही सेनाके आनंदका पारावार नहीं रहा। राजा सुखी होनेपर राज्य भी सुखी है यह कहावत उस समय चरितार्थ हो रही थी। भरतेश्वर भी प्रजावोंके आनंदको देखते हुए बढ रहे हैं। सामनेसे अर्ककीर्ति, आदिराज व वृषभराज अनेक भेंट अपने हाथमें लेकर पितृदर्शनके लिए आ रहे हैं। बहुत भक्तिसे भरतेश्वरको उन्होंने नमस्कार किया। भरतेश्वरने तीनों कुमारोंको एक २ घोडेपर चढकर अपने साथ हो लेनेके लिए कहा। तीनों कुमार भी अश्वारोही होकर भरतेश्वरके साथ जाने लगे।

मंत्री, सेनापति, राजगण, राजकुमार वगैरे अगणित संख्यामें भरतेश्वरको मार्गमें नमस्कार कर रहे हैं। स्तुतिपाठक अनेक प्रकारसे भरतेश्वरकी स्तुति कर रहे हैं। कविगण अनेक रचनासे उनकी स्तुति कर रहे हैं। इन सब आनंदोंको देखते हुए भरतेश्वर अपनी महलकी ओर आरहे हैं। महलके बाहरके दरवाजेके पास अश्वरत्नको खडा कर दिया। वहींपर स्वयं उतर गये, अपने साथके व्यंतर आदिकोंको अपने २ स्थानमें जानेके लिए कह कर, एवं अश्वरत्नको उसकी थकावटको दूर करनेके लिए योग्य सत्कार उपचार करनेके लिए आज्ञा देते हुए स्वयं महलमें प्रविष्ट होगये।

महलमें राणियोंके आनंदका क्या वर्णन करें ? वहांपर संतोष सागर ही उमडकर आरहा है। आज पतिराज एक बडे भारी लोक विख्यात कार्यमें सफलता पाकर आ रहे हैं। ऐसी अवस्थामें उनको आनंद होना साहजिक है। वे सब मिलकर भरतेश्वरके स्वागतके लिए आ रही हैं। उनके हाथमें मंगल आरती है। भरतेश्वरके चरणोंमें भक्तिसे नमस्कार कर भरतेश्वरकी उन राणियोंने आरती उतारी। इतनेमें हंसके बच्चेके समान सुंदर हंसराज आदि पांच पुत्रोंने आकर भरतेश्वरके चरणमें नमस्कार किया। उस समय भरतेश्वरको कितना आनंद हुआ होगा। इस प्रकार सर्वत्र आनंद ही आनंद हो रहा है। राजमहल उस समय आनंदध्वनिसे गूंज रहा है। भरतेश्वरने स्नान देवार्चन भोजन आदि नित्यक्रियावोंसे निवृत्त होकर उस दिन महलमें अपने कपाटविस्फोटनकी लीलावृत्तांतको अपनी प्रियस्त्रियोंको कहते हुए अपना समय बहुत आनंदके साथ व्यतीत किया।

भरतेश्वरका पुण्य अतुल है। जहां जाते हैं वहींपर उन्हें सफलता मिलती है। विजयार्ध पर्वतपर स्थित वज्रकपाट जो कि सर्व साधारणके द्वारा उद्घाटनीय नहीं है, उसे भी भरतेश्वरने क्षणमात्रमें फोडकर रख दिया यह किस बातका सामर्थ्य है। उनकी आत्मभावनाका फल है। वे प्रतिनित्य भावना करते हैं कि:—

" हे सिद्धात्मन् ! आप ध्यानरूपी दण्डरत्नसे कठोर कर्म रूपी वज्रकपाटको तोडनेवाले धीरोदात्त हैं। इसलिए हे स्वामिन् ! आप सम्पूर्ण प्राणियोंके दुःखको दूर करनेवाले हैं। इसलिए हमें सन्मति दीजियेगा।

हे परमात्मन् ! मिथ्यात्वरूपी कपाटको फोडकर उत्तुंग धैर्यके साथ मोक्षकी ओर जानेवाले आप चित्तसंधानी हैं। आप मेरी संपत्ति हैं। इसलिए मेरे हृदयमें बने रहे। "

इसी प्रकारकी शुभभावनासे ही भरतेश्वरको सर्व अतिबल महाबलापेक्ष कार्योंमें भी सफलता मिलती है।

इति कपाटविस्फोटन संधि

——*×*——

कुमारविनोद संधि।

दूसरे दिन सम्राट्ने जयकुमार व उसके भाईको महलमें बुलाकर उनको कुछ काम सौंप दिया। जयकुमार! अग्निका वेग कम होनेके लिये करीब २ छह महीनेकी अवधि लगेगी। इसलिये तबतक सेना को यहींपर मुक्काम करना पडेगा। आगे अपन लोग जा नहीं सकते। इसलिये तबतक आप लोग इधरके दो म्लेच्छ खंडोंके अधिपतियोंको वशमें कर आवें। पूर्वखंडके लिये तुम जावो, और पश्चिम खंडके लिये तुम्हारे भाई विजयांकको भेजो। इधर सेनाकी देखरेख तुम्हारे भाई जयंतांक करता रहेगा। आप लोगोंको जितनी सेनाकी जरूरत हो ले जावें। गंगानदीको सोपानमार्गसे पार कर जाना और सिंधु-नदीके सोपानमें अभी अग्नि व्याप्त होगई है। इसलिये सिंधुनदीको चर्मरत्नकी सहायतासे पार कर आगे जाना चाहिये। इस प्रकार उनको सब उपायोंको बतलाकर दोनोंको विदा किया व सम्राट् बहुत आनंदके साथ समय व्यतीत करने लगे।

इधर विजयार्ध पर्वतमें गगनवल्लभपुरके अधिपति नमिराज चक्रव-र्तिकी वीरताको सुनकर अत्यंत चिंताक्रांत हुआ। रथनूपुरचक्रवालपुरके अधिपति विनमिराजको चक्रवर्तिकी वीरता व अग्निके वेगको देखकर बडी प्रसन्नता हुई। वह अत्यंत प्रसन्नताके साथ गगनवल्लभपुरमें अपने भाई नमीके पास चला गया। नमिराज चिंताक्रांत होकर मौनसे बैठा हुआ है। कोई गूढ विचार करनेके लिये उसने अपने मंत्रीको बुलाया है। उसीकी प्रतीक्षामें वह बैठा है। वहींपर विनमिराजने जाकर बहुत प्रसन्नताके साथ भाईको नमस्कार किया व कहने लगा कि भाई! जिस वज्रकपाटके बारेमें अपन लोगोंने बडी ख्याति सुनी है, उसे एक क्षण-मात्रमें भावाजी भरतेश्वरने टुकडा कर दिया। आकाशमें प्रलयकाल की अग्नि व्याप्त होगई। जिस वेगसे भावाजीने दण्डरत्नका कपाटपर प्रहार किया उससे एकदम पर्वत कंपायमान हुआ, जिससे हमारे साथके राजा झूलेके बच्चोंके समान सिंहासनसे नीचे गिर गये। आकाशमें व्याप्त

अग्नि मेघपंक्तिको जला रही है। देव भी आकाशमें भ्रमण करनेके लिये असमर्थ होगये हैं। विजयार्धदेवने भरतजीकी भक्तिसे पूजा की है। भरतजीकी बराबरी कौन करसकते हैं।

विनमिके वचनोंको सुनकर नमिराजको हंसी आई। तिरस्कार युक्त हंसी हंसकर विनमिको बैठनेके लिए कहा। परंतु उसके चेहरेसे संतोषका चिन्ह टपक नहीं रहा था। इतनेमें नमिराजाका मंत्री भी वहांपर आगया। विनमिराजको संदेह उत्पन्न हुआ। कहने लगा कि भाई! संतोषके समय इस प्रकार संक्लेश क्यों? भावाजी भरतेश्वरकी जो विजय हुई है वह हमारी ही तो है। उनकी जो संपत्ति है वह अपनी ही समझनी चाहिये। ऐसे समयमें चिन्ता करनेकी क्या जरूरत है? विनमिके इस प्रकारके वचनको सुनकर नमिराज कहने लगा कि विनमि! अभी तुम्हे राज्यांगका ज्ञान नहीं है। इसलिए इस विषयमें अब अधिक मत बोलो। भावाजीके पौरुषपर तुम प्रसन्न हुए। परंतु अपने लिए वह अब भावाजी नहीं है। यह षट्खंडाधिपति होने जा रहा है। षट्खंडके राजावोंको अपने आधीन बनानेके लिए उसकी तीव्र अभिलाषा होरही है। अब अपन भी उसके सेवक कहलायेंगे। भाई! अपन लोग अभीतक उसके साथ बैठकर सरसविनोद करसकते थे। तू मैं की बात होसकती थी। परंतु अब उसके साथ बोलनेके लिए, उसका दर्शन करनेके लिए भेट लेकर जाना पडेगा। 'आप' शब्दका प्रयोग कर बहुत विनयके बोलना पडेगा। संपत्ति व वैभवमें समानता हो तो बंधुत्वका भी ख्याल रहता है। जब उसकी संपत्ति बढ गई ऐसी अवस्थामें वह अपने साथ बंधुत्वका स्मरण नहीं रख सकता है। सेवकोंको बुलानेके समान अपनेको भी अरे तुरे शब्दका प्रयोगकर वह संबोधन करेगा। बाल्यकालसे लेकर अपन उसके साथ खेल चुके हैं। उसका स्वभाव, गुण, चाल वगैरे सब अपनको मालुम ही है। उसके समानकी वृत्ति लोकमें किसी भी पुरुषमें पाई नहीं जा सकती। याद करो! अपन गेंद खेलते थे, उसमें भी उसी की जीत होती थी। पढनेमें भी वही आगे रहता था। जो काम करनेकी

ठानता था उसे पूरा किये विना नहीं छोडता था। देखो तो सही! आज भी वह षट्खंड विजयके लिये निकला है, उसे हस्तगत किये विना वह छोड नहीं सकता है। मुझे उसकी आदतोंका अच्छी तरह स्मरण है कि कभी खेलमें वह जीतता था, तो जीतनेके बाद चुपचापके वहांसे निकल जाता था। परंतु हम लोग जीतते थे तो हमें वहांसे जाने नहीं देता था, फिर खेल खिलाकर अच्छी तरह हराकर भेजता था। भरतकी जीत होती है तो साथके लडके सब आनंदके साथ चिल्लाते थे। हमारी जीतमें वे लडके चुपचापके खडे रहते थे। भाई! विचार करो, भुजबलि वृषभसेनादिके साथ खेलकर अपन गज [हाथी] के समान लौटते थे। परंतु इसके साथ खेलनेके बाद अज [बकरी] के समान आना पडता था। ऐसा होनेपर भी अभीतक और ही बात थी। परंतु अब संपत्ति, वैभव, पराक्रम, अधिकार वगैरे सभी बातोमें उसकी वृद्धि होगई है। इसलिये अब वह किसीकी भी परवाह नहीं कर सकता है, इसे अच्छी तरह विचार करो।

विनमिराज सभी बातोंको बहुत ध्यानसे सुन रहा था। कहने लगा कि भाई! ठीक है। अब क्या करें? लोकमें सब कुछ पुण्यके उदयसे होते हैं। आज भरतेश्वरको भी यह सब पुण्यके तेजसे प्राप्त हुए हैं, उसे कौन इन्कार कर सकते हैं। कोई हर्जकी बात नहीं। भरत कौन है? वह हमारा भावाजी ही तो है। उसके लिये जो वैभव है वह हमारे लिये है ऐसा समझकर अपन चले। वह अपने पिताकी सहोदरीका पुत्र है। ऐसी अवस्थामें उसके साथ ईर्ष्या करनेसे क्या प्रयोजन? नमिराजने कहा कि भाई! वैसी बात नहीं है। मार्ग छोडकर उसकी सेवावृत्तिको ग्रहण करनेके लिये क्या अपन क्षत्रियपुत्र नहीं हैं? अब अपन उसके पास जायेंगे तो पहिलेके समान उठकर खडा नहीं होगा। हाथ नहीं जोडेगा। क्या यह अपना तिरस्कार नहीं है! अपन दोनों राजा हैं। परंतु वह अपनेको राजाके नामसे नहीं कहेगा। बडे अभिमानके साथ तुम, तू करके बुलायगा। व्यंतरगण, देवगण आदि अपनेको भरतेश्वरके सेवकोंकी दृष्टिसे देखेंगे। जिन्होंने अपनी

कन्यावोंको उन्हे दी है वे यदि हाथ जोडें तो भी उनको वह हाथ नहीं जोडेगा। बाकीके लोगोंकी बात ही क्या है। केवल दिखावटके लिये आप कहकर पुकारेगा। परंतु उन कन्यावोंके सहोदरोंके साथ तो वह भी व्यवहार नहीं होगा। फिर भी मूर्ख लोग इस भरतेश्वरको कन्या देनेके लिये कबूल होंगे व उसमें आनंद मानेंगे। साथमें इस वचनको कहते हुए नमिराज कुछ चिंताक्रांत दिखते थे। उन्होने मंत्रीसे कहा कि मंत्री! तुमने एकदफे यह कहा था कि बहिन सुभद्रादेवीका पाणिग्रहण भरतके साथ कराया जाय तो ठीक होगा, उस बातको अब भूल जावो। मेरी इच्छा अब बिलकुल नहीं है। इसके लिए अब क्या उपाय करना चाहिए। बोलो! यदि उसे मालुम हो जाय कि सुभद्रादेवी सुंदरी है, वह जरूर उसे मांगेगा। परंतु अब देना उचित नहीं है।

भाई! मैं आकर उसका दर्शन नहीं करना चाहता। आपलोग जावें और उसे कहें कि नमिराज किसी एक विद्याको सिद्ध कर रहे हैं, इसलिये वे नहीं आसके। साथमें दक्षिणभागके विद्याधर राजावोंकी सुंदरी कन्यावोंको लेजाकर उनके साथ विवाह करा देवें। बहन सुभद्रा देवीको उसे समर्पण करनेका विचार अब मेरा नहीं है। फिर भी हमारे खजानेसे जो कुछ भी उत्तम वस्तु आप लोग समझें उसे लेजाकर समर्पण करें। जब उत्तरभागकी तरफ वह आयगा हम उसके विषयमें विचार करेंगे इत्यादि प्रकारसे समझाकर मंत्री व विनमिको नमिराजने भेज दिया।

इधर चक्रवर्तिकी सेनामें एक विनोदपूर्ण घटना हुई। चक्रवर्तिकुमार वृषभराज अपने कुछ साथियोंको लेकर अश्वारोही होकर बाहर निकला। जाते समय उसने किसीको भी समाचार नहीं दिया। उसे न मालुम क्यों आज घोडेपर सवार होकर कुछ विनोद करनेका विचार उत्पन्न हुआ। जाते समय मार्गमें अनेक राजा महाराजा उसे मिले। सम्राट्पुत्र को देखकर उन लोगोंने बहुत विनयके साथ वृषभराजको नमस्कार किया। और साथमें आने लगे। वृषभराजके उनको नगरमें जानेके लिए

इशारा किया। आगे बढ़ने पर दक्षिण व नागर मिले। उन लोगोंने नमस्कार कर प्रार्थना की कि कुमार ! आज तुम अपने भाईयोंको छोड कर इस प्रकार अकेले क्यों जाते हो ? हमारे साथ वापिस चलो। नहीं तो हम जाकर स्वामीसे कहते हैं। तब वृषभराजको बहुत संकोच हुआ। तथापि बडी दीनतासे कहने लगा कि राजन् ! माफ करो, मुझे आज बाहर टहलनेके लिए जानेकी इच्छा हुई है। इसलिए मैं जावूंगा ही। तुम लोग पिताजीको जाकर यह समाचार नहीं देना। यदि तुम्हे कुछ चाहिए तो मुझसे लो। इस प्रकार कहकर हाथके सुवर्णकंकणको हाथ लगाने लगा। इतनेमें दक्षिण व नागर समझ गए कि इसे आज बाहर टहलनेकी बडी इच्छा हुई है। उन्होंने प्रकटमें कहा कि अच्छा तुम जाओ, हम नहीं कहते हैं। तुम्हारे कंकणकी हमें जरूरत नहीं। उसे हाथ मत लगाओ। यह कहकर वे दोनों आगे बढे। कुमार भी आगे गया। दक्षिण व नागरने विचार किया कि अपन जाकर चक्रवर्तिको समाचार देंगे एवं कुमारकी रक्षाके लिए कुछ सेना भेज देंगे।

इधर आदिराजको महलमें मालुम हुआ कि वृषभराज आज बाहर अकेला ही टहलने गया है। उसी समय सेवकको घोडा लानेके लिए आज्ञा दी। और स्वतः अर्ककीर्तिको निम्नलिखित प्रकार पत्र लिखा।

श्रीमन्महाराजाधिराज आदिचक्रवर्तिके आदिपुत्र आदरणीयमूर्ति अर्ककीर्तिके चरणोंमें। पादसेवक आदिराजका विनयपूर्वकसाष्टांगनमस्कारपूर्वक विनंतिविशेषः— स्वामिन् !

आज भाई वृषभराज अपने कुछ सेवकोंके साथ अकेला ही बाहर टहलनेके लिए गया है। इसलिए मैं जाकर उसको ले आवूंगा। आप कोई चिंता न करें, आप महलमें स्वस्थ रहें।

आपका सेवक
आदिराज

उपर्युक्त पत्रको अर्ककीर्तिके पास भेजकर आदिराज अश्वारोही होकर चला गया। अर्ककीर्तिसे भी पत्र बांचकर वहां रहा नहीं गया।

वह भी उसी समय अश्वारोही होकर वहांसे चला गया । इधर दक्षिण व नागरने आकर सर्व समाचार सम्राट्से कहा । तब सम्राट्ने भी पुत्रकी रक्षाके लिये अनेक सेना व विश्वस्त राजावोंको भेजदिया । वृषभराज बहुत उत्साहके साथ सेनास्थानको छोडकर आगे बढा । वहां जाकर एक विस्तृत प्रदेशमें अश्वारोहणकलाके अनुभव करनेके लिये प्रारंभ करने ही वाला था, इतनेमें आदिराजको आते हुए देखा । आदिराजको देखकर वृषभराज घोडेसे नीचे उतरकर भाईके पास आया और हाथ जोडकर कहने लगा कि स्वामिन् ! आपका यहांपर आगमन क्यों हुआ ? मुझे तो घोडेपर सवारी करनेकी इच्छा हुई, इसलिये मैं आया । इतनेमें अर्ककीर्तिकुमार भी आया । अर्ककीर्तिको देखकर दोनोंने नमस्कार किया । अर्ककीर्तिने दोनों भाईयोंको घोडेपर चढनेके लिये आदेश दिया, साथमें अश्वारोहणकलाको देखनेकी इच्छा प्रकट की । इतनेमें सम्राट्के द्वारा प्रेषित सेना, राजा वगैरे आ उपस्थित हुए, देखते देखते वहांपर हजारों लोग इकट्ठे हुए । अर्ककीर्तिने भाई वृषभराजसे कहा कि भाई ! आज हम लोग अश्वारोहलीलाको देखना चाहते हैं । कुछ कमाल कर बताओ । तब वृषभराजने अपनी लघुताको व्यक्त करते हुए कहा कि स्वामिन् ! मैं आपके सामने क्या कलाप्रदर्शन कर सकता हूं । मैं डरता हूं । अर्ककीर्तिने " डरनेकी कोई जरूरत नहीं है, हमें देखनेकी इच्छा हुई है । " इत्यादि शब्दोंसे उसके संकोचको हटाया । बादमें वृषभराजने घोडे पर सवार होकर उस कला में उसने जो नैपुण्य प्राप्त किया था उसका प्रदर्शन किया । उस समय उसका घोडा प्रतिदिशामें वायुवेगसे जाने लगा था । घोडे की अनेक प्रकार की चाल, लगामका परिवर्तन, अनेक प्रकारका गमन इत्यादि बहुतसे प्रकारसे अपनी विद्याका दिग्दर्शन कराया । आकाशमें निंबूको रखकर तीव्रवेगसे जाते हुए अश्वसे ही उस निंबूपर ठीक बाण चलाना आदि अनेक प्रकारसे दूसरोंको आश्चर्यान्वित किया । आदिराज व अर्ककीर्तिको भी महान् संतोष हुआ । अर्ककीर्तिने लीला बंद करनेके लिए इशारा किया । इतनेमें वृषभराज घोडेसे उतर कर भाईके पास आया और हाथ

जोडकर खडा रहा। अर्ककीर्तिने प्रसन्न होकर कहा। कि वृषभराज! तुम्हारी विद्याको देखकर मैं प्रसन्न हुआ हूं। मुझे आज मालुम हुआ कि तुम अश्वारोहणकलामें इतना प्रवीण हुए हो। इतना कहकर दोनों भाईयोंने अपने कंठके दोनों हारोंको निकालकर वृषभराजको पहना दिया। वृषभराजने भी दोनोंको बहुत भक्तिपूर्वक नमस्कार किया। अर्ककीर्तिने आशिर्वाद देते हुए कहा कि अब खेल बंद करो, अब महलकी तरफ चलो। तीनों भाई अश्वरोहि होकर परिवारसहित महल की ओर चले। इधर महलमें भरतेश्वर भोजनका समय होने पर भी भोजन न करके पुत्रोंकी प्रतीक्षामें बैठे रहे। उधरसे तीनों कुमार अनेक वाद्य घोषके साथ सेनाकी तरफ आरहे हैं। भरतेश्वरकी आज्ञासे उनके स्वागतके लिये इधरसे भी बहुतसे राजा महाराजा गये हैं। अनेक स्त्रियां आरती आदि मंगलद्रव्य लेकर स्वागतके लिये गईं। कितनी ही वेश्यायें कुमारोंको दरबारके समान ही नमस्कार करने लगी। तीनों कुमारोंने उनके तरफ उपेक्षितदृष्टिसे दृष्टिपात किया। क्यों कि उनको बाल्यकालमें ही परदारसहोदर, गणिकापगतचेष्टि, विरत इत्यादि नामोंसे लोग उल्लेख करते थे। भरतेश्वरको मालुम हुआ कि तीनों पुत्र क्रमशः अर्थात् सबसे आगे अर्ककीर्ति उसके पीछे आदिराज व बादमें वृषभराज इस प्रकार आरहे हैं। उन्होंने उसी समय एक सेवकको बुलाकर उससे कानमें कुछ कहा। वह उसी समय उस जुलुसमें गया व भरतेश्वरकी इच्छाको वहां प्रकट न करके स्वतःही वृषभराज व आदिराजके घोडेको दाहिने और बांये तरफ करके और अर्ककीर्तिके घोडेको बीचमें किया। अनेक स्थानोमें उनपर लोग चामर ढोल रहे हैं। कितने ही स्थानोमें आरति उतार रहे हैं। इस प्रकार बहुत ही आदरको प्राप्त करते हुए वे तीनों कुमार बहुत समारंभके साथ राजभवन की ओर आरहे हैं। सेनाके हर्षमय शब्दोंको सुनकर महलकी माडियोंपर चढकर राणियां अपने पुत्रोंके आगमनको देखने लगी व मन मनमें बहुत ही हर्षित होने लगीं।

इस प्रकार अतुलसंभ्रमके साथ आकर तीनों पुत्र महलके सामने घोडेसे उतरे और अंदर जाकर पिताजीके चरणोमें मस्तक रखा। भरतेश्वरने भी तीनों कुमारोंको आलिंगन देकर अशिर्वाद दिया। अर्ककीर्तिसे कहा कि बेटा! क्या तुम भी इनके साथ लीलाविनोदके लिये गये थे? अर्ककीर्तिने बहुत विनयके साथ कहा कि स्वामिन्! मैं आपसे क्या कहूं? वृषभराजने अश्वारोहणकलामें कमाल ही किया है। उसने उस कलाके अनेक प्रकारको जो दिखाया उसे देखकर हम सब आश्चर्यचकित हुए। स्वामिन्! उसकी लीलाको देखनेके लिये श्रीचरण ही समर्थ हैं। इसलिए आज उसे बंदकरके मैं लाया हूं। इस प्रकार अर्ककीर्तिने भाईकी प्रशंसा की। साथमें आये हुए राजावोंने भी अर्ककीर्तिके वचनका समर्थन किया। भरतेश्वर भी मनमें प्रसन्न होकर मौनसे अपने पुत्रकी प्रशंसा सुन रहे थे। फिर वृषभराजसे कहने लगे कि पुत्र! अश्वारोहणकलामें इस प्रकार नैपुण्यको प्राप्त करनेपर भी उस दिन वज्रकपाटको फोडते समय तुम चुप क्यों रहे? मुझसे भी पहिले जाकर तुमको ही उसे फोडना चाहिये था, इसे सुनकर वृषभराज हसा। सबको योग्य सन्मानके साथ भेजकर सम्राट् अपने पुत्रोंको लेकर महलमें प्रवेश कर गये। वहांपर तीनों कुमारोंको बैठालकर स्त्रियोंसे फिरसे आरती उतरवाई, और उसे स्वतः प्रसन्न होकर देखने लगे। स्त्रियां अनेक मंगलपद गाने लगी। साथ ही राजाने कुंतलावती, चंद्रिका देवी, कुसुमाजी आदि अपनी राणियोंको बुलवाकर सुपुत्रोंके वृत्तांतको कहा। उन पुत्रोंने भी मातावोंके चरणोंमें मस्तक रक्खा, भरतेश्वरने उन राणियोंसे विनोदके लिए कहा कि देवी! क्या तुम्हारे पुत्रोंको तुम लोग योग्य शिक्षा नहीं देती हैं? वे स्वेच्छाचार वर्तन करते हैं। उन राणियोंने भी विनोदसे ही उत्तर दिया कि स्वामिन्! आपको जब हमारी पूज्य सासू शिक्षा देंगी तब हम भी अपने पुत्रोंको शिक्षा देंगी। आपके पुत्र तो आपके समान ही हैं।

इसके बाद भरतेश्वरने उन पुत्रोंके साथ एक पंक्तिमें बैठकर बहुत आनंदके साथमें भोजन किया। बादमें उन तीनों पुत्रोंको उनके महलमें

भेजकर हमेशाके समान लीलाविनोदके साथ अपनी राणियोंके साथ भरतेश्वर पुत्रोंके गांभीर्य, चातुर्य, आदिकी चर्चा करते हुए अपने महलमें रहे। भरतेश्वर सदा आनंदमग्न रहते हैं। उनको हर समय हर काममें सुखका ही अनुभव होता है, इसका कारण तो क्या है? यह उन्होंने पूर्वमें सतत परिश्रमसे अर्जित आत्मभावनाका फल है। उनकी सदा भावना रहती है कि—

" हे सिद्धात्मन्! आप अनंतसुखी हैं। क्यों कि आपने नित्य समाधिभावनाके बलसे सच्चिदानंद अवस्थाको प्राप्त किया है। जहांपर सुख दुःखकी हीनाधिक कल्पना ही नहीं, वहांपर अनंत सुख ही सुख विद्यमान है। इसलिए हे स्वामिन्! मुझे भी परमसुखकी प्राप्तिके लिए उस प्रकारकी सुबुद्धि दीजिए "।

" हे परमात्मन्! आप उपमातीत हैं। आपकी महिमा अपार है। मुनिजनोंके द्वारा आप वंद्य हैं। निरंजन हैं, अनंतसुखोंका पिंड है। इसलिए आप और कहीं न जाकर मेरे हृदयमें ही विराजे रहें "।

इस प्रकारकी आत्मभावनाका ही फल है कि भरतेश्वरके हृदयमें बिलकुल आकुलताको स्थान नहीं, अतएव दुःखका लवलेश नहीं। हमेशा प्रत्येककार्य में वे सुखका ही अनुभव ही किया करते हैं। कारण कि आत्मभावना मनुष्यके हृदयमें अलौकिक निराकुलताका अनुभव कराता है। वह व्यक्ति कभी भी किसी भी हालतमें मार्गच्युत होकर व्यवहार नहीं करता है। उसे संसारकी समस्तवस्तुस्थितिका यथार्थ परिज्ञान है। स्त्रियो में, पुत्रों में, परिवारमें, वह मिलकर रहनेपर भी वह अपनेको नहीं भूलता है, यही कारण है कि उसे इस संसारमें एक विचित्र आनंद आता है। श्री भरतेश्वरने भी इसीका अभ्यास किया है।

॥ इति कुमारविनोद संधि ॥

सुमतिसागर मंत्रीके साथ विमानारूढ होकर नमिराज अनेक गाजे बाजे सहित भरतेश्वरकी सेनाकी ओर आरहा है। सेनाके पासमें आनेपर स्वर्गके देवताओंके समान विमानसे नीचे उतरा और सेनाकी शोभा देखते हुए महलकी ओर चला। भरतेश्वरको पहिलेसे मालुम था कि विनमिराज आरहा है। सो इस समाचारके ज्ञात होते ही बुद्धिसागर आदि मंत्रियोंके साथ अनेक राज्यकारभारके विषयमें परामर्श करते हुए दरबारमें विराजमान हुए। विनमिराजको सूचना दी गई कि वह स्वयं पहिले आवे, साथके आये हुए विद्याधर राजा बादमें आवें। उसी प्रकार विनमिने सर्व विद्याधर राजावोंको महलसे बाहर ही खडा कर दिया और स्वयं दरबारमें गया। भरतचक्रवर्तिके देवनिर्मित दरबारकी शोभा व सौंदर्यको देखकर विनमिराज दंग रहा। उस आश्चर्यके मारे वह अपनेको भी भूल गया। भरतचक्रवर्तिके लिए विनय करनेका भी उसे स्मरण नहीं रहा। केवल पासमें जाकर एक रत्नको भेट रखकर नमस्कार किया। इसी प्रकार सुमतिसागर मंत्रीने भी भेंट समर्पण कर साष्टांग नमस्कार किया। सम्राट्ने पासमें ही एक आसन दिलाया और उनको बैठनेके लिए इशारा किया। दोनोंने अपने २ आसनको अलंकृत किया। " विनमि! तुम कुशल तो हो न? नमिराज कुशलपूर्वक है न? और घरमें सर्व परिवार आनंदसे है न? ", भरतेश्वरने विनमिसे प्रश्न किया।

" आपकी कृपासे मैं कुशल हूं, नमिराज भी क्षेमपूर्वक है, घरमें सब आनंद मंगल है "। " भगवान् आदिनाथका पुत्र होकर आप भरतखंडके राज्यको पालन करते हुए हम सब बंधुजनवनको वसंतके समान हैं। फिर हमें आनंद क्यों नहीं होगा ?। विनमिने हंसते हुए कहा। " भाई नमिराज भी यहां आते थे। परन्तु आपके पधारनेके पहिले उन्होंने भ्रमरी नामक एक विद्या सिद्ध करनेके लिए

प्रारंभ किया है। इसलिए उनका प्रयाण स्थगित हुआ। वे मंत्रयोगमें लगे हुए हैं। उनको मैं समाचार देकर मंत्रीके साथ चले आया " इस प्रकार विनमिने तंत्रके साथ कहा। भरतेश्वर मन मनमें इस तंत्रको समझकर भी मौनसे रहे। पुनः विनमिराज बोला। " आपके गंभीर राज्यवैभव-ऐश्वर्यको देखकर लोकमें किसे संतोष न होगा। इसलिए इस विजयार्द्धके अनेक विद्याधर राजा अपनी २ सुंदर उत्तम कन्यावोंको आपको समर्पण करनेके लिये लाये हैं। अनेक राजा उत्तमोत्तम अन्य भेंट लेकर आये हैं। उनको अंदर आनेके लिये आज्ञा होनी चाहिये "। इस संबंधमें पहिलेसे सम्राटने दक्षिण नायकको सूचना दे रखी थी; इसलिये समयको जानकर दक्षिणांकने सुमतिसागर मंत्रीके साथ कहा कि मंत्री! तुम्हारे राजावोंमें जो सम्राटको समर्पण करनेके लिये अपनी कन्यावोंको साथ लाये हैं उनको पहिले अंदर आने दो, बादमें बाकीके राजावोंको आकर भरतेश्वरको नमस्कार करने दो। सुमतिसागर मंत्रिने भी उसी प्रकार व्यवस्था की। उसी समय बहुतसे विद्याधर राजा संतोषके साथ दरबारमें प्रविष्ट हुए, और उन्होंने चक्रवर्तिको नमस्कार किया, उनको योग्य आसन दिलाये गये। वे उनपर बैठ गये। इसी प्रकार बादमें अन्य विद्याधर राजा भी बुलाये गये, उन्होंने आकर साष्टांग नमस्कार किया और उनको बैठनेके लिए नीचे आसन दिये गये। वे उनपर बहुत आनंदके साथ बैठे। सम्राट्के मित्रोंने मन मनमें ही विचार किया कि उत्तमरूपवती कन्यावोंको उत्पन्न करना यह भी एक भाग्यकी ही बात है। सचमुचमें संसारमें स्त्री ही भोगांग है। इसलिए इन राजावोंका इस प्रकार सन्मान हो रहा है। चक्रवर्तीके शरीर सौंदर्यको देखकर वे विद्याधर राजा आश्चर्यचकित हुए। उनको ऐसा मालुम हुआ कि हम देवेंद्रकी सभामें प्रविष्ट हुए हैं। वे मनमें अपने जीवनको धिक्कारने लगे। इस उमरमें यह शरीर सौंदर्य, संपत्ति, गौरव, गांभीर्यको प्राप्त करना यह मनुष्यके लिए भूषण है। हम लोगोंका जीवन व्यर्थ है। सुमतिसागर मंत्री खडे होकर कहने लगा कि स्वामिन! विद्याधर राजा आपके दर्शनके लिए बहुत कालसे

उत्सुक थे। पुण्यके संयोगसे आज उनकी इच्छा पूर्ति हुई । देव! लोकमें सामान्य पदको प्राप्त करनेवाले बहुत हैं। परंतु षट्खण्ड पृथ्वीके राज्यभारको वहनेवाले कौन हैं? कदाचित् षट्खण्ड भूमीको पालन करनेपर भी स्वामिन्! आपकी सुंदरता देवेंद्र और नरेंद्रोंमें किसने पाई है?

मैं मुखस्तुति नहीं कर रहा हूं। भगवान् आदिनाथके पदोंकी साक्षीपूर्वक कह रहा हूं कि आपके शरीर सौंदर्यको देखकर मुग्ध न होनेवाले स्त्रीपुरुष क्या इस भूमंडलमें मिल सकते हैं?

स्वामिन्! हमारे साथ आये हुए राजा तीन सौ सुंदर कन्यावोंको आपको समर्पण करनेके लिए लाये हैं। इसलिए विवाहके लिए आज्ञा होनी चाहिए। इत्यादि विषय बहुत विनयके साथ सुमतिसागरने निवेदन किया। भरतेश्वरने भी मुसकराकर सुमतिसागरको बैठनेके लिए कहा। बुद्धिसागर मंत्रीने समयको जानकर सुमतिसागरकी प्रशंसा की। साथमें अन्य मित्रोंने भी प्रशंसा की। बुद्धिसागरने सम्राट्से यह भी कहा कि विवाह कलकी रातमें हो। आज इन लोगोंको विश्रांति लेनेके लिए आज्ञा होनी चाहिए। सम्राट्ने भी बुद्धिसागरके वचनको सम्मति दी। सुखके आगमनकी प्रतीक्षा कौन नहीं करते हैं?

आये हुए सज्जनोंको योग्य रीतिसे आदरसत्कार करनेके लिए सम्राट्ने बुद्धिसागरको आज्ञा दी। साथमें उन विद्याधर राजावोंको उसी समय अनेक रत्नवस्त्राभरणोंको भरतेश्वरने भेंट किया। साथमें विनमिराज व सुमतिसागरको भी उत्तमोत्तम रत्नोंको समर्पण किया। और सबको उनके लिए निर्मित महलोंमें भेजा।

दूसरे दिन उस सेनाराज्यमें विवाहकी तैयारी होने लगी। सर्वत्र लोग आनंद ही आनंद मनाने लगे। मंदिरोंमें तोरण, पताका वगैरे फड़कने लगे। करोडों प्रकारके वाद्यविशेष बजने लगे। परकोटा, राजद्वार, गोपुर आदि स्थान अत्यधिक सुशोभित किए गए। राजागण व व्यंतर भी अपने २ शृंगार करने लगे। साथमें सुवर्ण व रत्नमय तीन सौ विवाहमंडप भी निर्मित हुए, विशेष क्या! महलका शृंगार हुआ,

राणियोंने अपना श्रृंगार उत्साहके साथ किया। भरतेश्वरने अपना श्रृंगार कर लिया। वहांपर वातकी वातमें एक महोत्सव ही हुआ।

विद्याधर राजाओंने अपनी पुत्रियोंको नवरत्ननिर्मित सुंदर आभूषणोंका श्रृंगार कराया। उनकी दासियोंने सब प्रकारसे सुंदर आभूषणोंको धारण कराकर उन्हें विवाहकालोचित सर्व अलंकारोंसे अलंकृत किया।

लोकमें भरतेश्वर बुद्धिमान् हैं यह सब जानते थे। साथमें वह कामदेवके समान ही सुंदर है यह जगजाहिर था। ऐसी अवस्थामें भरतेश्वर भी प्रसन्न होसकें इसे दृष्टिकोणमें रखकर उन चतुरदासियोंने, उन विद्याधर कन्यावोंको विविध प्रकारसे अलंकृत किया। भरतेश्वरकी राणियां भी महाबुद्धिमती हैं। वे भी आज इन नववधुवोंको देखेंगी, वे भी प्रसन्न होजाय इसी प्रकार उनका श्रृंगार हुआ। सब श्रृंगार होनेके वाद स्वयं ही अपने द्वारा किये हुए श्रृंगारको देखकर वे दासियां प्रसन्न हुई, और विनोदसे कहने लगी कि देवी! आजतक भूचर स्त्रियोंने भरतेश्वरके चित्त व नेत्रको प्रसन्नकर जो उनके हृदयको वश किया उसे आप खेचरस्त्रियां अपने सौंदर्य व प्रेममय व्यवहारसे भुला देवें। उन कन्यकाओंने भी सुन लिया। वे पहिलेसे भरतेश्वरके जगद्विश्रुत गुणोंको जानती थीं। इसलिये मनमें विचार करने लगी कि भरतेश्वरको जीतनेवाली स्त्रियां लोकमें कोई नहीं है। ऐसी अवस्थामें यह सब विचार व्यर्थ है। तथापि हम लोग पतिके अनुकूल वृत्तिको धारण कर रहेंगी। इस प्रकार सर्व श्रृंगार पूर्ण होनेके वाद दासियोंने उन कन्यकाओंकी आरति उतारी। और " भरतेश्वरके मनको आप लोग प्रसन्न करें " इस प्रकार आशिर्वाद दिया। रात्रिके प्रथम प्रहरमें जब चक्रवर्तिके सेवकोंने आकर सब विद्याधर राजावोंको यह समाचार दिया कि अब विवाहका मुहूर्त अतिनिकट है, सभी राजा अपने २ विवाहके लिये सुसज्जित कन्यावोंको पल्लकियोंपर चढाकर गाजेबाजेके साथ विवाहमंडपकी ओर गये। उस समय सेनानायकने भी अपनी सेना व परिवारके साथ इन राजावोंका स्वागत सामनेसे आकर किया। इस प्रकार बहुत आनंदके साथ सभी विवाहमंडपमें प्रविष्ट हुए। तीनसौ

कन्यकाओंने तीनसौ खास निर्मित मंडपोंको सुशोभित किया। साथकी स्त्रियां अनेक प्रकारसे सुंदर मंगल गान कर रही हैं। वे कन्यायें मंडपमें खडी होकर भरतेश्वरका ध्यान कर रही हैं और उनके आगमनकी प्रतीक्षा कर रही हैं। परंतु भरतेश्वर जल्दी नहीं आरहे हैं।

इधर भरतेश्वरने भी विवाहोचित श्रृंगार कर लिया। और समय समीप आते ही जिनेंद्रमंदिरमें गये वहांपर भक्तिपूर्वक जिनेंद्रवंदना की। परमहंस गुरु परमात्माका भी स्मरण किया। तदनंतर आनंदके साथ आकर महलमें रहे। इधर उधरसे उनकी राणियां बैठी हुई हैं। अपने पतिदेवके अलौकिक सौंदर्यको देखकर उनकी आंखें तृप्त नहीं होती, एक राणी विनोदके लिये कहने लगी कि:—स्वामिन्! कुछ निवेदन करना चाहती हूं। एक हंसको हजारों हंसिनी पहिलेसे मोजूद हैं, फिर भी वह हंस अनेक हंसिनियोंको प्राप्त कर रहा है। ऐसी अवस्थामें पहिलेकी हंसिनियोंको दुःख होगा या नहीं? भरतेश्वरने हसकर उत्तर दिया कि देवी! एक ही हंस जब हजारों रूपको धारणकर आगत व स्थित ऐसी हजारो हंसिनियोंको सुख देता है तो फिर दुःखका क्या कारण है? इतनेमें दूसरी राणी कहने लगी कि राजन्! फूलके दुकान में एक भ्रमर था। वह हर एक फूलपर बैठकर रस चूस रहा था। फुलारी फिर नवीन पुष्पोंको दुकानमें लाया; ऐसी अवस्थामें उस भ्रमरको किन फूलोंपर इच्छा होगी, नवीन फूलोंपर या पुराने फूलोंपर?

भरतेश्वरने उसके मनको समझकर कहा कि देवी! वह भ्रमर कुत्सित विचारका नहीं है। वह परमपरंज्योति परमात्माका दर्शन रात्रिंदिन करनेवाला भ्रमर है। ऐसी अवस्थामें उस भ्रमरको पुराने और नये सभी फूल समान प्रीतिके पात्र हैं। आत्मविज्ञानीकी दृष्टिसे सोना और कंकर, महल और जंगल जब एक सरीखे हैं फिर नवीन और पुराने पदार्थोंमें वह भेद क्यों मानेगा? उसी समय बाकीकी राणियोंने कहा कि देवियों! आप लोग इस मंगल समयमें ऐसी बातें क्यों कर रही हैं। पतिराजके हृदयमें कैसी चोट लगेगी? सरसमें विरस क्यों?

इस समयमें आप लोग चुप रहे। लोककी सभी स्त्रियां आजावें तो भी एक पुरुष जिस प्रकार एक स्त्रीका पालन करता है, उसी प्रकार अव्याहतरूपसे पालन करनेका सामर्थ्य जब पुरुषोत्तम पतिराजको मौजूद है, फिर हमें चिंता करनेकी क्या जरूरत है?

भरतेश्वरने भी उन राणियोंको संतुष्ट करते हुए कहा कि देवियो! इस प्रसंगको कौन चाहते थे? हजारों राणियोंके होते हुए और अधिक स्त्रियोंकी लालसा मुझे नहीं है। फिर भी पूर्वमें जो मैंने आत्मभावना की है उसका ही फल है कि आज उस पुण्यका उदय इस प्रकार आरहा है। आप लोग ही विचार करें कि मैंने आप लोगोंसे भी जब विवाह किया तब मैं चाह करके तो नहीं आया था? आजकी कन्या- वोंको भी मैं निमंत्रण देने नहीं गया था। फिर भी उस पूर्वपुण्यने आप लोगोंको व इनको बुलाकर मेरे साथ संबंध किया। जबतक कर्मका संबंध है उसके भोगको अनुभव करना ही पड़ेगा, यह संसारकी रीत है, यही परतंत्रता है। भरतेश्वरके मनको तिलमात्र भी दुःख न होवें, ऐसी भावना करनेवाली उन राणीमणियोंने उसी समय उस बातको बदलकर कहा कि स्वामिन्! जाने दीजिए। अब विवाहका समय अत्यंत निकट है। आप विवाहमंडपमें पधारियेगा। भरतेश्वर भी वहांसे उठकर विवाहमंडपकी ओर चले गए।

उस समय भरतेश्वरकी शोभा देखने लायक थी। उस समय वे विवाहके योग्य वस्त्राभूषणको धारण किये हुए थे। रास्तेमें अनेक सेवक उनको देखते हुए हाथ जोड रहे हैं और आनंदके साथ कहते हैं कि भोगसाम्राज्यके अधिपति, लोकागम्यसुखी कामदेव विजयी भरतेश्वरकी जय हो। इसी प्रकार गायन करनेवाले गारहे हैं। स्तुतिपाठक स्तोत्र कर रहे हैं। इन सबको देखते हुए भरतेश्वर विवाह मंडपमें दाखिल हुए। उन विवाहमंडपोंमें सब विद्याधरकन्यकायें पश्चिममुखी होकर खडी थीं। भरतेश्वर जाकर पूर्वमुखी होकर खडे हुए। आते समय भरतेश्वर अकेले ही आये थे। अब उन्होंने अपनेको तीन सौ संख्यामें

बना लिया अर्थात् अपने तीन सौ रूप बनाकर तीन सौ मंडपोंमें खडे हो गये। सामनेसे अनेक द्विजगण मंगलाष्टकका पाठ बहुत जोरसे कररहे हैं। अनेक विद्वान् विवाह समयोचित सिद्धांतमंत्रका उच्चारण कर रहे हैं। और उत्तमोत्तम मंगलवचनोंसे आशिर्वाद दे रहे हैं। अनेक सुवासिनी स्त्रियां मंगलपदोंको गा रही हैं। इस प्रकार बहुत वैभवके साथ आगमोक्त विवाहविधि संपन्न हो रही है। मंगलाष्टक पूर्ण होनेके बाद वधूवरके बीचमें स्थित परदा हटाया गया। उसी समय भरतेश्वरने उन सब कन्याओंका पाणिग्रहण किया। जिस समय भरतेश्वरने उनको हाथ लगाया उन देवियोंको एकदम रोमांच हुआ। उसके बाद उन वधुवोंके साथ भरतेश्वर होमकुंडके पास आये। और वहांपर विधिपूर्वक पूजनकर नववधूसमूहके साथ होमकुंडकी तीन प्रदक्षिणा दी। भरतेश्वर जिस समय उन पाणिगृहीत कन्यावोंके साथ उस होमकुंडकी प्रदक्षिणा दे रहे थे, उस समयकी शोभा अपूर्व थी। चंद्रदेव स्वयं अपने अनेक रूपोंको बनाकर साथमें रोहिणीको भी अनेकरूप धारण कराकर मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा दे रहा है, ऐसा मालुम हो रहा था। कन्यावोंके मातापितावोंको बहुत हीं हर्ष हुआ। उन्होंने भरतेश्वरको कन्या देकर अपनेको धन्य माना। विवाहका विधान विधिपूर्वक पूर्ण हुआ। भरतेश्वरने मंत्री, सेनाधिपति आदिको इषारा किया कि सर्व सज्जनोंको अपने २ स्थानोंमें पहुंचाकर उनकी उचित व्यवस्था कीजियेगा। तदनुसार क्षणभरमें वह मंडप रिक्त हो गया। भरतेश्वर भी उन विवाहित नारियोंको लेकर महलमें प्रवेश कर गए।

महलमें उन्होंने शयनागारमें पहुंचकर उन नववधुओंके साथ अनेक विनोद संकथालाप किए। साथमें अनेक प्रकारसे सुखोंका अनुभव किया एवं बादमें सुखनिद्रामें मग्न हुए। उनके साथमें जितने भी सुखोंका अनुभव किया वह पुण्यनिर्जरा है इस प्रकार भरतेश्वर विचार कर रहे थे। प्रातःकालके प्रहरमें भरतेश्वर उन नारीमणियोंका निद्राभंग न हो उस प्रकार उठकर अपने तल्पपर ध्यान करनेके लिए बैठे। पापरहित निरंजन सिद्धका उन्होंने अपने हृदयमें अनुभव किया। बादमें अरुणो-

दय हुआ। सुप्रभात मंगलको गानेवाले वहांपर उपस्थित होकर सुंदर गायन करने लगे। भरतेश्वर अभीतक आत्मदर्शन ही कर रहे हैं। गायनको सुनकर वे सब स्त्रियां अपनी शय्यासे उठी और भरतेश्वरकी ध्यानमग्नावस्थाकी शोभाको देखने लगी। भरतेश्वरने ध्यान पूर्ण किया। साथमें अपने अनेक रूपोंको अदृश्य किया। नवविवाहित स्त्रियोंको आश्चर्य हुआ भरतेश्वर अपने शय्यागृहसे बाहर आये व नित्यकर्ममें लीन हुए। इस प्रकार भरतेश्वरको तीन सौ विद्याधर कन्याओंके साथ विवाह हुआ। यह उनके पुण्यका फल है। उन्होंने पूर्व जन्ममें सातिशय पुण्यका उपार्जन किया था, और अब भी अखंड साम्राज्यको भोगते हुए भी उसके यथार्थस्वरूपको जान रहे हैं, अपने आत्माको बिलकुल भूल नहीं जाते हैं। सुखोंके भोग करनेमें वे उदासीनतासे विचार करते हैं कि इतने समयतक मेरी पुण्यकर्मकी निर्जरा हुई। यह मुझे पुण्यकर्मके फलका अनुभव करना पड रहा है।

सतत उनकी भावना यह रहती है कि " हे परमात्मन् ! तुम लोकके सर्व सुख दुःख के लिए साक्षीके रूपमें रहते हो। परंतु उनको साक्षात् अनुभव नहीं करते, क्यों कि तुम मोक्षके स्वरूपमें हो। इसी प्रकार मेरी आत्मा है। इंद्रियजन्य सुखोंके लिए केवल वह साक्षी है। साक्षात् अनुभवी नहीं है। यह केवल पुण्यवर्गणाओंकी लीला है।

हे सिद्धात्मन् ! कर्मों की निर्जरा जितने प्रमाण में होती जाती है उतना हीं अधिक सुख आत्माको मिलता जाता है। इसका साक्षात्कार आप कर चुके हैं, इसलिए आप लोकपूजित हुए हैं। इसलिए मुझे भी उसी प्रकारकी सुबुद्धि दीजियेगा। "

इसी प्रकारकी भावनाका फल है कि भरतेश्वर विशिष्ट सुखका अनुभव कर रहे हैं।

॥ इति खेचरिविवाहसंधिः ॥

भूचरीविवाहसंधिः

दूसरे दिनकी बात है। विनमिराज आदि अनेक विद्याधरराजावोंको महलमें बुलाकर भरतेश्वरने उनका सत्कार किया, उनको बहुत ही आदरके साथ देवोचित भोजन कराया। साथमें अनेक वस्त्राभूषण रत्नोपहार आदिको समर्पण करते हुए यह भी कहा कि आजसे आप लोग यहां महलमें आकर भोजन करते हुए कुछ दिनतक हमारे आतिथ्यको ग्रहण करें। इसी प्रकार सर्व परिवार दासी दास आदि जनोंका भी यथोचित सत्कार किया गया। पहिलेकी राणियोंके बीचमें बैठकर भरतेश्वरने नववधुवोंको बुलाया और उनसे यह कहना चाहते थे कि तुम्हारी बडी बहिनोंको नमस्कार करो। परंतु भरतेश्वरके कहनेके पहिले ही उन चतुर वधुवोंने उन राणियोंको नमस्कार किया। उन राणियोंनें भी बहुत ही प्रेम व आदरके साथ उनका स्वागत किया। और आलिंगन देकर अपने पास बैठाल लिया। इस प्रकार अनेक विनोद संकथालाप करते हुए कुछ दिन वहींपर सुखसे काल व्यतीत कर रहे थे। इतनेमें और एक संतोषकी घटना हुई। पुण्यशालियोंको सुखोंके ऊपर सुख मिला करते हैं। पापीजनोंको दुखोंपर दुःख आया करते हैं।

एक दिनकी बात है भरतेश्वर अपने मंत्री आदिके साथ अनेक राजाप्रजावोंसे युक्त होकर दरबारमें विराजमान हैं। उस समय एक दूतने लाकर एक पत्र दिया। वह पत्र विजयराजका था। उसे खोलकर भरतेश्वर बांचने लगे। उसमें निम्नलिखित मंगलवाक्य उनको बांचनेको मिले।

स्वस्ति श्रीमन्महानिस्सीमसामर्थ्य विस्तारितोर्वरातल दुस्तररिपुराज वैयांसराजस्तोमसंतोषकरकामिनीजनपचंबाण, षट्खंडभूमंडलाग्रगण्य, नाममात्रश्रवणसुक्षेमकर सुजनेंदुभरतभूपति भरतेशकी चरणसेवामें:— विजयके भयभक्तिपूर्वक साष्टांग नमस्कार। स्वामिन्!

पश्चिम म्लेच्छखंड हस्तगत हुआ। विजय लक्ष्मीने आपके गलेमें माला डाल दी, इस देशके राजा लोग हे सध्यात्मसूर्य! बहुत संतोषके

साथ आपके चरणोंके दर्शनके लिये उत्सुक थे। कितने ही राजा आपके आगमनकी वार्ता सुनकर आपकी सेवामें भेंट करनेके लिये कितने ही उत्तम हाथी उत्तम हाथी घोडोंकी तैयारी कर रहे थे। कितने ही राजावोंने हाथियोंके समान गमनकरनेवाली मंदगजगामिनी कन्यवोंको शृंगार कर रखा था। वे लोग जातिक्षत्रिय हैं, इस विचारसे उन्होंने समझा था कि हमारी कन्यावोंको सम्राट् झट स्वीकार करलेंगे। परंतु मैंने उनको कहा कि हमारे स्वामी व्रतगात्र कन्यावोंको ही ग्रहण करते हैं। व्रतरहितोंको वे स्वीकार नहीं करते हैं। व्रतोंको ग्रहण करनेके लिये दीक्षकाचार्य मुनियोंकी आवश्यकता है, परंतु इस खंडमें धर्मपद्धति नहीं है। मुनियोंका अस्तित्व नहीं। ऐसी परिस्थितिमें उन लोगोंने स्वीकार किया कि हम लोग आर्यभूमिमें आकर योगियोंसे व्रतग्रहण करलेंगे। परंतु आपके पुण्योदयसे संतोष व आश्चर्यकी एक घटना हुई। अपने इष्ट स्थानमें जानेवाले दो चारण मुनीश्वर आकर इस भूमिमें उतर गये। उनके हाथसे हमारे महलमें सबको चारित्र धारण कराया। हमारा कार्य हुआ। वे मुनिराज अपने मार्गसे चले गये। आगे निवेदन इतना ही है कि सुवर्णकी पुतलियोंके समान सुंदर ऐसी तीनसौ बीस कन्यावोंको लेकर वे राजागण बहुत हर्षके साथ आरहे हैं। कलतक आपकी सेवामें उपस्थित हो जायेंगे।

भवदीय चरणसेवक— **विजय.**

इस पत्रको सुनकर सबको हर्ष हुआ। सबने भरतेश्वरकी जयघोषणा की। इस शुभ समाचारको लानेवाले दूतको बुद्धिसागरने अनेक वस्त्राभरणोंको इनाममें दिए। वह दिन व्यतीत हुआ, दूसरे दिनकी बात है। विजयराज बहुत संभ्रमके साथ सिंधुनदीको पार कर अपनी सेनाके साथ भरतेश्वरकी सेनाके पासमें आये। वाद्यध्वनि सुननेमें आई। भरतेश्वरने विजयांकको बुलानेके लिए अपने सेवकोंको भेजा। विजयांकने भी उसी समय आकर भरतेश्वरका दर्शन किया। साथमें अनेक नोत्तम उपहार पदार्थोंको भेंटमें समर्पण किया। साथमें अनेक

राजाओंने भी भरतेश्वरको अनेक उत्तम वस्तुओंको भेंटमें समर्पण करते हुए नमस्कार किया। और भरतेश्वरके इशारे पर उचित आसनों पर बैठ गए। विजयराजने सामने आकर कहा कि स्वामिन्! ये जितने भी राजा हैं वे सब सज्जन हैं। परंतु इनमें मुख्य उद्दण्ड नामक भूपति है। ये अपनी दो कन्याओंको लेकर आए हुए हैं। मैंने इनसे कहा है कि कलके रात्रिको विवाहके लिए योग्य मुहूर्त है, आशा है कि आप लोग भी इसे स्वीकार करेंगे। उपस्थित सब लोगोंने उसका समर्थन किया। उस समय भरतेश्वरने सबको आदरसत्कारपूर्वक बिदा किया। वह दिन गया। दूसरे दिन योग्य मुहूर्तमें उन राजाओंकी तीन सौ बीस कन्याओंके साथ सम्राट्का विवाह संपन्न हुआ। सर्वत्र उत्सव ही उत्सव हो रहा है। इसके बाद सम्राट् उन नवविवाहित वधुवोंके साथ शयनगृहमें गये। वहां उनके साथ अनेक प्रकारसे आनंदक्रीडा की। उन स्त्रियोंमें सभी स्त्रियां एकसे एक वढ कर सुंदरी थीं, परंतु उनमें रंगाणि और गंगाणि नामकी दो स्त्रियां अत्यधिक सुंदरी थीं जिनको देखने पर भरतजी भी एक दफे मोहित हुए।

प्रातःकाल नित्यक्रियासे निवृत्त होकर विजयराजको आदि लेकर सर्व परिजनोंको आनंदभोजन कराकर सत्कार किया। कुछ समय तक बहुत सुखसे समय व्यतीत हुआ। पुनः एक दिन दरवारमें विराजमान थे, उस समय एक और आनंदका समाचार आया। जयराज पूर्वखंडकी ओर गया था, वह उस खंडको जीतकर वह वहुत आनंदसे गाजे वाजेके साथ आरहा है। दूसरे मंगल शब्द भी सुननेमें आरहे हैं। उसके साथ असंख्यात सेना है। हाथी है, घोडा है, रथ है, एक राजकीय ठाटवाटसे ही वह आरहा है। सचमुचमें जयराज एक राजाधिराज है। दुनियामें भरतेश्वरका ही वह सेवक है। वाकी और कोई राजा ऐसे नहीं जो उसे जीत सके। वह जातिक्षत्रिय है। जाते समय जितनी सेनाको वह ले गया था उससे दुगनी सेनाको अब साथ लेकर उस स्थानमें दाखिल हुआ।

जिन राजावोंने चक्रवर्तीको समर्पण करनेके लिये उत्तमोत्तम हाथी घोडा वगैरे ले आये थे, उनको व उनकी सेनाको एक तरफ स्थान दिया और जो कन्यारत्नोंको ले आये थे, उनको एक तरफ स्थान दिया। वेतंडराज नामक भूपति अपने साथ सुंदरी दो कन्यावोंको ले आया है। उसके साथ ही अन्य ४०० कन्यायें भी आई हैं। अपने खंडसे जिस समय उन्होंने कर्मभूमिमें प्रवेश किया उस समय गुरुसन्निधिमें नियतव्रतोंको ग्रहण कराये। क्योंकि जयराज बुद्धिमान् है, उसे मालुम था कि सम्राट् व्रतसंस्कारहीन कयनवोंको ग्रहण नहीं करेंगे। विशेष क्या कहें ! पूर्वोक्त प्रकार जयकुमार सम्राटके पास गये। सम्राटका उन कन्यावोंके साथ विवाह हुआ। पूर्वोक्त प्रकार भरतेश्वरने अपने महलमें उन देवियोंके साथ अनेक प्रकारसे क्रीडा की। उन स्त्रियों मे सिंधुरावती वंधुरावती नामक दो स्त्रियां अत्यधिक सुंदर थी। ये दोनों वेतंडराजकी पुत्रियां हैं। इन दोनोंके प्रति सम्राट्को विशेष अनुराग हुआ। उनके सौंदर्यको देखकर आश्चर्य हुआ। उन्होंने अपने मनमें विचार किया कि ये दोनों परमसुंदरी हैं। म्लेच्छखण्डमें उत्पन्न होनेपर भी इनमें कुछ विशेषता है। स्वच्छरूपको धारण कर अत्यधिक कुशल युवतियोंके उत्पन्न होनेसे ही शायद इस खण्डको म्लेच्छखंड नाम पडा होगा। वहांपर धर्माचरण नहीं है, इतने मात्रसे उसे म्लेच्छखण्ड कहते हैं। बाकी सौंदर्य कामकलाकौशल्य आदि बातोंमें ये कर्मभूमिज स्त्रियोंसे क्या कम हैं। धर्माचरण इनमें और मिल जाय तो किसी भी बातमें कम नहीं हैं। कोई हर्जकी बात नहीं, इनको अब धर्मपालनक्रमको सिखाना चाहिए। मेरे भाग्यसे ही मुझे ऐसी सुंदरियों की प्राप्ति हुई है। इस विषयको दूसरोंके साथ बोलना उचित नहीं है ! अपने मनमें ही रखना चाहिए। यह मेरे परमात्माकी कृपा है। धन्य है परमात्मा ! भक्तिपूर्वक जो तुह्मारी भावना करते हैं उन्हें कैवल्यसुखकी प्राप्ति होती है, फिर लौकिकसुख मिले इसमें आश्चर्यकी क्या बात है ! आये हुए सुखका त्याग नहीं करना चाहिए, नहीं आते हुए की अभिलाषा नहीं करनी चाहिए। अपने शरीरमें स्थित आत्माको

कभी भूलना नहीं चाहिये। उस व्यक्तिके पास दुःख कभी नहीं आ सकता। सांसारिक सुखका अनुभव करना कोई पाप नहीं, परंतु उसके साथ अपनेको भुलाना यह पाप है। आत्मज्ञानी स्त्रियोंके भोगको भोगते हुए भी "पुवेयं वेदंतो" इस सिद्धांतसूत्रके अनुसार वेदनीय कर्मकी निर्जरा ही करता है। इस रहस्यको विवेकी ही जान सकते हैं। हरएकको इसे समझनेकी पात्रता नहीं। यह परम रहस्य है। इसे लोगोंके सामने कहूं तो वे हसेंगे इत्यादि प्रकारसे मनमें ही विचार करने लगे एवं उन रमणियोंके साथ यथेष्ट सुख भोगे। इतना ही नहीं, भरतेश्वरके व्यवहारसे संतुष्ट वे स्त्रियां अपने मातापितावोंको भी भूल गई। इस प्रकार बहुत आनंदके साथ उन्होंने समय व्यतीत किया। विवाहके उपलक्ष्यमें पहिलेके समान ही मंत्री सेनापति एवं कन्यावोंके पिता आदिका यथोचित सन्मान किया गया।

रात्रिंदिन सेना—कटकस्थानमें उत्सव ही उत्सव होते रहते हैं। उस स्थानमें छह महीनेसे भी कुछ दिन अधिक व्यतीत हुए, परंतु उत्साहसे बीतनेसे वह समय बहुत थोडा मालुम हुआ।

एक दिन भरतेश्वर दरबारमें विराजमान हैं। उस समय बुद्धिसागर मंत्रीने आकर नम्रशद्बोंमें निवेदन किया। "स्वामिन् ! तीन खंडका राज्य वश होगया, अब विजयार्धके आगेके तीन खंडोंको वशमें करना चाहिए। इस स्थानमें अपनेको ६ महीने व्यतीत हुए। विजयार्ध गुफाकी अग्नि भी शांत होगई है। अब आगे प्रयाण करनेमें कोई आपत्ति नहीं। इसलिए अब आज्ञा होनी चाहिए। जिन राजावोंने आपके चरणोंमें स्त्रीरत्नोंको समर्पण किये हैं उनको भी अब यथोचित सत्कार करके संतोषके साथ अपने नगरोंको जानेके लिए आज्ञा देवें। क्योंकि उनको अपने साथ कष्ट होगा" इत्यादि। मंत्रीके निवेदनको सुनकर उसी समय कुछ विचार कर भरतेश्वर महलकी ओर चले गये। एवं अपने अनेक रूपोंको बनाकर उन नव विवाहित खेचरभूचरकन्यावोंके अंतःपुरमें प्रवेश कर गये। वहां जाकर उन्होंने उन स्त्रियोंसे यह कहा कि

प्रियदेवी ! तुम्हारे पिता अब अपने नगरको जारहे हैं । अब आगे क्या होना चाहिए, बोलो । देवी ! जाते समय तुम्हारे पिताका यथोचित सत्कार किया जायगा । परंतु तुम्हारी माता यहांपर नहीं आई हैं : ऐसी हालतमें मैं उनको कुछ भेंट भेजना चाहता हूं, बोलो । उनको क्या प्रिय है । कौनसे पदार्थमें उनकी इच्छा रहती है । आभूषणोंमें उनको कौनसा प्रिय है । वस्त्रोंमें कौनसी साडी उनको पसंत है । एवं अन्य भोग्य पदार्थोंमें उन्हें कौनसा इष्ट है ? उनको जो पसंद है उसे ही मैं भेजना चाहता हूं । आप लोग बोलो ।

भरतेश्वरकी बातको सुनकर वे कुछ जवाब न देकर हंस रही हैं । फिर भरतेश्वर पूछने लगे कि तुम्हारी माताकी क्या इच्छा है बोलो तो सही । पुनः वे हंसने लगी । पुनः भरतेश्वर–' अच्छा हमारी सासूकी क्या इच्छा है, बोलो तो सही ' कहने लगे । परंतु वे स्त्रियां पुनः हंसने लगी । जब भरतेश्वरने आग्रहपूर्वक पूछा तो उन्हें आखरको कहना पडा । भरतेश्वरने अपने सामने ही सभी वस्त्र आभूषण भेंट आदिको बंधवाये व उनकी दासियोंको बुलाकर कहा कि इन्हे लेजाकर मेरी सासुवोंके पास पहुंचाना । एवं बहुत दिन वहांपर नहीं लगाना । जल्दी यहांपर लौट आना, नहीं तो सासुबाईकी पुत्रीको यहांपर कष्ट होगा ।

इस प्रकार महलके कार्यको करके भरतेश्वर पुनः दरबारमें आये । वहांपर जो राजा थे उनमेंसे जिन्होंने कन्यावोंको समर्पण किया था उनको अपनी २ पुत्रियोंसे मिलकर आनेके लिए महलमें भेजदिया । एवं बाकी बचे हुए राजावोंका यथेष्ट सत्कार किया । विद्याधर लोकके एवं म्लेच्छ खंडके राजावोंको बुलाकर सम्राट्ने कहा कि आप लोगोंका ही मैं पहिले सत्कार करता हूं, नहीं तो आप लोग कहेंगे लडकी देनेवालोंका सत्कार पहिले किया । इसलिए आप लोगोंका सत्कार पहिले कर बादमें उनका किया जायगा । सबका यथोचित सत्कार करनेके बाद जयकुमारने समय जानकर कहा कि आप लोगोंमें कुछ लोग अपने २ राज्यमें जा सकते हैं । कुछ लोग यहांपर सम्राट्की

सेवामें रह सकते हैं। जयकुमारकी बात सुनकर उन सबने उत्तर दिया कि सेनानायक! हम लोगोंमें कुछ लोग राज्यमें जाकर क्या करें? हम लोगोंकी यही इच्छा है कि हमें सतत सम्राट्की चरणसेवा मिले। इसलिए हम यहींपर रहकर अपने समयको व्यतीत करना चाहते हैं। सम्राट् व जयकुमारने उसके लिए अनुमति दी। उनको परमहर्ष हुआ। उन सबने सम्राट्के चरणोंमें भक्तिके साथ नमस्कार किया।

अपनी पुत्रियोंके महलमें गये हुए सभी राजागण लौटे। उद्दंण्ड राज वेतण्डराज आदि लेकर सर्व राजावोंको भरतेश्वरने यथेष्ट सन्मान किया व मित्रोंकी ओर देखते हुए कहा कि अब आपलोग अपने २ राज्योंमें जासकते हैं। वहांपर सुखसे राज्यपालन करें। जब आप लोगोंको हमें देखनेकी इच्छा होगी उस समय हमारे पास आसकते हैं।

मित्रोंने भी समय जानकर बहुत संतोषके साथ कहा कि स्वामिन्! इनका भाग्य बहुत बडा है। आपके राजमहलको बेरोकटोक प्रवेश कर सुखसे रहनेके बहुभाग्यको उन्होंने प्राप्त किया है।

बादमें सब राजावोंने भरतेश्वरको नमस्कार किया एवं भरतेश्वरने भी उनकी संतोषके साथ विदाई की। उनके साथमें सासुवोंको भी अनेक उपहारकी पेटियोंको भेजे। बडे २ राजावोंको भी अरे, तुरे शब्दसे संबोधन करनेवाले सम्राट् अपनी स्त्रियोंको सासू शब्दसे उच्चारण किया, यह जानकर इन राजावोंको षट्खंड ही हाथमें आनेके समान संतोष हुआ। हर्षके साथ प्रयाण करते समय उद्दण्ड व वेतण्ड-राज अपने सेनानायक व सेनाको भरतेश्वरकी सेवामें नियुक्त कर चले गये।

इस प्रकार आये हुए सभी राजा महाराजावोंको सम्राट्ने उनका यथोचित आदर सत्कार कर भेजा। अब केवल विनमिराज व विद्याधर मंत्री मौजूद हैं। उनको भी भेजनेके लिये भरतेश्वर विचार कर रहे हैं। आजकलमें भेजने वाले हैं।

इस प्रकार भरतेश्वरके दिन अत्यंत आनंदोत्सवमें ही व्यतीत हो रहे हैं। नित्य नये उत्सव, नित्य नया मंगल, जहां देखो वहां आनंदके

तरंग उमड रहे हैं। इसका कारण भी क्या है। इसका एक मात्र कारण यह है कि भरतेश्वरके हृदयमें रहनेवाला धैर्य, स्थैर्य व विवेक। संपत्तिके मिलनेपर अविवेकी न होना। अत्यधिक सुखकी प्राप्ति होनेपर भी अपने आत्माको न भूलना यही महापुरुषोंकी विशेषता है। भरतेश्वर परमात्माकी भावना इस हृदयसे करते हैं कि—

"हे परमात्मन्! आप प्रौढोंके परमाराध्य देव हैं। पराक्रमियोंके परम आराधनीय हृदय हैं। अध्यात्मगाढोंके अतिहृद्य हृदय हैं। गूढस्थानमें वास करनेवाले हैं एवं लोकरूढ हैं, मेरे हृदयमें बने रहे। हे सिद्धात्मन्! आप परमगुरु, परमाराध्य परात्पर वस्तु हैं। इसलिये आपको नमोस्तु. आप सौख्यतत्पर हैं, अतएव हमें भी सुबुद्धि दीजियेगा'

इसी सद्भावनासे उनको उत्तरोत्तर आनंदराशिकी प्राप्ति हो रही है।

॥ इति भूचरीविवाहसंधिः ॥

——*×*——

विनमिवार्तालापसंधिः

एक दिनकी बात है, भरतेश्वर अपने मित्र व मंत्रीके साथ दरबारमें विराजमान हैं। विनमि भी अब अपने राज्यको जाना चाहता है, उसे सम्राट्के पास बहुत दिन हो चुके हैं। भरतेश्वरने भी अब जानेकी सम्मति देनेका विचार किया था। मौका पाकर भरतेश्वरने विनमिसे कहा कि विनमि! देखो नमिने अपनी बडप्पन दिखला ही दीया। न मालुम उसने मुझे क्या समझ लिया हो। भगवन्! शायद उसे इस बातका अभिमान होगा कि मैं चांदीके पर्वतपर (विजयार्ध) हूं। रहने दो! देखा जायगा।

विनमि विनयके साथ बोला कि स्वामिन्! नमिराजने ऐसा कौनसा अभिमान बतलाया? आप ऐसा क्यों कह रहे हैं? यह हमारे पूर्वजन्मके कर्मका फल है।

नवीन कर्म पहिले द्रव्यकर्मके साथ संबंधित होते हैं। और वह द्रव्यकर्म भावकर्मके साथ मिल जाता है और भावकर्मका आत्मप्रदेशमें बंध होता है। इस प्रकार बंधपरंपरा है। नवीनकर्मका पूर्वकर्मके साथ बंध है, पूर्व कर्मका भावकर्मके साथ बंध है। भावकर्मका जीवके साथ बंध है। इस प्रकार बंधका तीन भेद है। वैसे तो बंधका प्रकृति, स्थिति, प्रदेश व अनुभागके भेदसे चार भेद है। परन्तु विशेष वर्णनसे क्या उपयोग? बंधतत्वके कथनको संक्षेपसे इतना ही समझो। आगे संवरतत्वका निरूपण करेंगे।

आनेवाले कर्मोंके तीन द्वारको तीन गुप्तियोंके द्वारा बंद करके अपनी आत्माको स्वयं देखना यह संवर है।

मौनको धारण कर, वचन व कायकी चेष्टाको बंदकर, आंख-मीचकर, मनको आत्मामें लगाना वही संवर है। उसे ही त्रिगुप्ति कहते हैं। जहाजके छिद्रको जिस प्रकार बंद करनेपर उसमें पानी अंदर नहीं आता है, उसी प्रकार तीव्रयोगसे जानेवाले योगोंको मुद्रित करनेपर कर्म अंदर प्रविष्ट नहीं होता है। अर्थात् गुप्तिके होनेपर संवर होता है। तीन गुप्तियोंमें चित्तगुप्तिकी प्राप्ति होना बहुत ही कष्टसाध्य है। जो संसारकी समस्त व्याप्तियोंको छोडकर आत्मामें मन लगाते हैं, उन्हींको इस गुप्तिकी सिद्धि होती है।

बंध व निर्जरा तो इस आत्माको प्रतिसमय प्राप्त होते रहते हैं। परंतु बंधवैरी संवरकी प्राप्ति होना बहुत ही कठिन है। निजात्मसंपत्ति की प्राप्तिके लिए वह अनन्यबंधु है। पहिले बद्धकर्म तो निर्जराके द्वारा निकल जाते हैं। नवीन आनेवाले कर्मोंको रोकने पर आत्माकी सिद्धि अपने आप होती है, हे रविकीर्ति! इसमें आश्चर्यकी क्या बात है?

श्रीमंतका खजाना कितना ही बडा क्यों न हो, आयको रोकनेपर, व्ययके चालु रहनेपर एक दिन वह खाली हुए विना नहीं रह सकता

है । इसी प्रकार आनेवाले कर्मोको रोकनेपर पूर्वसंचित कर्म निकल जावे तो यह जीव एक दिन अवश्य कर्मरहित होता है ।

इस प्रकार यह संवरतत्वका कथन है, पूर्वसंचित कर्मोको थोडे थोडे अंशमें वाहर निकालना व नष्ट करना उसे निर्जरा कहते हैं ।

नवीन आनेवाले कर्मोको रोकना संवर है, पुराने कर्मोको आत्म प्रदेशसे निकालना उसे निर्जरा कहते हैं, संवर और निर्जरामें इतना ही अंतर है । परमाणुमात्र भी स्नेह और कोपको धारण न कर एकाकी होकर परमहंस परमात्माको देखनेपर यह कर्म निर्जरित होकर जाता है, इसमें आश्चर्यकी क्या बात है ।

उपवास आदि संयमको धारण कर मनमें उपशांतिको प्राप्त करते हुए शुद्धात्माका निरीक्षण करें तो यह कर्म क्षपित होता है ।

निर्जराका दो भेद है, एक सविपाक निर्जरा और दूसरा अविपाक निर्जरा । सविपाकनिर्जरा तो सर्व प्राणियोंमें होती है । परंतु अविपाक निर्जरा मुनियोमें ही होती है, सबको नहीं है ।

अपने आप उदयमें आकर जो प्रतिनित्य कर्म निकल जाते हैं उसे सविपाकनिर्जरा कहते हैं । अनेक प्रकारके तपश्चर्याके द्वारा शरीरको कष्ट देकर कर्म उदयमें लाया जाता है, एवं वह कर्म निर्जरित होता है उसे कृतपाक या अविपाकनिर्जरा कहते हैं ।

एक फल तो ऐसा है जो अपने आप पककर वृक्षसे पडता है, और एक ऐसा है जिसे अनेक उपायोंसे पकाकर गिराते हैं । दोनों फल पक जाते हैं, इसी प्रकार कर्मोके भी फल देकर खिरनेके प्रकार दो हैं ।

संवरको सतत साथ लेकर जो निर्जरा होती है, वह उस आत्माको मोक्षमें ले जाती है । और उस संवरको छोडकर जो निर्जरा होती है वह इस आत्माको संसारबंधनमें डालती है । और भवरूपी समुद्रमें भ्रमण कराती है ।

इस आत्माको ध्यानमें मग्न होकर प्रतिनित्य देखना चाहिए। ध्यान जिस समय करना न बने अर्थात् चित्तचंचल होजाय उस समय पहिले जो ध्यानके समय जिस आत्माका दर्शन किया है उसीका स्मरण करते हुए मौनसे रहना चाहिए।

ध्यानके समय निर्जरा होती है, ध्यान जिस समय न लगे उस समय ध्यान शास्त्रको छोडकर अन्य विचारमें समय बितावें तो हाथीके स्नानके समान है। वचन व कायमें चंचलता आनेपर भी मनको तो आत्मामें ही लगाना चाहिए। आत्मामें उस मनको लगावे तो राग द्वेषकी उत्पत्ति नहीं होती है। रागद्वेषके अभावसे संवरकी सिद्धि होती है।

इस आत्माको एक तरफसे कर्म आता है और एक तरफसे जाता है। आया हुआ कर्म बद्ध होता है। इस प्रकार आत्मा सदा कर्मसे बद्ध रहता है। इसलिए आते हुए कर्मोंके द्वारको बंद करके, पहिलेके आये हुए कर्मोंको आत्मप्रदेशसे निकाल बाहर करें तो यह आत्मा मोक्षमंदिरमे जा विराजता है। उसके मार्गको न समझकर यह आत्मा व्यर्थ ही संसारमें परिभ्रमण कर रहा है। सरोवरको आनेवाले पानीको रोककर पहिले संचितजलको निकाल देवें तो जिस प्रकार वह रिक्त होता है, उसी प्रकार संवर व निर्जराके मिलनेपर आत्मसिद्धि होती है।

धूलसे धुंदले हुए दर्पणको साफ करनेपर जिस प्रकार उसमें मुख दीखता है, उसी प्रकार कर्मधूलसे मलिन लेपको सुध्यानके बलसे दूर करें तो यह आत्मा परिशुद्ध होता है। हे भव्य यह निर्जरा तत्व है। इसे प्राप्तकर यह आत्मा आठों कर्मोकी निर्जरा करते हुए समस्त कर्मोको जब दूर करता है। एवं अपने आत्मामें स्थिर होता है उसे मोक्ष कहते है।

एकदेश अंशमें कर्मोका निकलना उसे निर्जरा कहते हैं। समस्त कर्मोंका क्षय होना उसे मोक्ष कहते हैं। मोक्ष और निर्जरामें इतना ही अंतर है।

कोई कोई आत्मा पहिले घातिया कर्मोंको नाश करते हैं, और बादमें अघातिया कर्मोंको नाश करते हैं। और कोई घातिया और अघातिया कर्मोंको एक ही साथ नाश कर मुक्तिको जाते हैं।

कोई दंड, कपाट, प्रतर, लोकपूरणको करके मुक्तिको जाते हैं, और कोई इन चार समुद्घातकी अवस्थाको प्राप्त न करके ही मुक्ति चले जाते हैं। त्रिशरीररूपी कारागृहको जलाकर अष्टगुणोंको यह आत्मा जब वश में कर लेता है तब वह अशरीर आत्मा एक ही समयमें अमृतलोकमें पहुंच जाता है।

वह सिद्धलोक इस भूलोकसे सात रज्जु उन्नतस्थानपर है। परंतु सात रज्जुवोंके स्थानको यह आत्मा लीलामात्रसे एक ही समयमें तय कर जाता है।

तीन शरीर जब अलग हो जाते हैं तब यह आत्मा लोकाग्रभागको निरायास पहुंच जाता है जिस प्रकार कि एरंड फलके सूखनेपर उसका बीज, ऊपर उड जाता है। ऊपरके वातवलयमें क्यों ठहर जाते हैं? उससे ऊपर क्यों नहीं जाते हैं। इसका उत्तर इतना ही है कि उस वातवलयसे ऊपर धर्मास्तिकाय नहीं है जो कि उन जीवोंको गमन करनेमें सहकारी है। इसलिए वहींपर सिद्धात्मा विराजमान होते हैं।

वह संपत्ति अविनश्वर है, बाधारहित आनंद है। अनंत वैभवका वह साम्राज्य है, विशेष क्या? वचनसे उसका वर्णन नहीं हो सकता है। यह लोकातिशायी संपत्ति है, निश्रेयस है। यह सप्त तत्वोंमें अंतिम तत्व है।

इस प्रकार हे भव्य! सप्ततत्वोंके स्वरूपको जानकर उनमें पुण्य पापोंको मिलानेपर नवपदार्थ होते हैं। उनका भी विभाग सुनो।

आस्रव व बंधतत्वमें तो वे पुण्यपाप अंतर्भूत हैं। क्यों कि आस्रव में पुण्यास्रव, पापास्रव इस प्रकार दो भेद है। और बंधमें भी पुण्यबंध और पापबंध इस तरह दो भेद हैं।

गुरु, देव, शास्त्रचिंता, पूजा आदिके लिए जो मन वचन कायका उपयोग लगाया जाता है वह सब पुण्ययोग है। मद्यपान, जुआ, शिकार आदिके लिए उपयुक्त योग पापयोग है।

तीर्थवंदन व्रताराधना, जप, देवतावंदन आदिके लिए उपयुक्त योग पुण्य है। अनर्थके कार्यमें, एवं जार चोरादिक कथामें उपयुक्त योग पाप योग है। पुण्याचरणके लिए युपयुक्त योग पुण्यास्त्रवरूप है, पाप मार्गमें प्रवृत्त योग पापास्त्रव कहलाता है।

रागद्वेष और मोहके संयोगसे बंध होता है। राग और मोहका पुण्य और पापके प्रति उपयोग होता है, परंतु क्रोध अथवा द्वेष तो पापबंधके लिए ही कारण है। देवभक्ति, गुरुभक्ति, शास्त्रभक्ति, सद्गुण, विनयसंपन्नता आदि पुण्यबंधके लिए कारण हैं। स्त्री, पुत्र, धन, कनक आदिके प्रति जो ममता है वह पाप बंधके लिए कारण है। व्रत, दान, जप, तप, संघ आदिके प्रति जो ममत्व परिणति है वह पुण्य बंधके लिए कारण है, और हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार, व परिग्रह आदिके प्रति जो स्नेह है वह पापबंधके लिए कारण है।

आत्मा स्वयं ही आत्माका है। इसे छोडकर अन्य पदार्थोंके प्रति आत्मबुद्धि करना वही मोह है। देव शास्त्र गुरुओंके प्रति ममत्वबुद्धि करना पुण्य है। शरीरके प्रति ममत्वबुद्धि करना वह पाप है।

जिनबिंब, पुस्तक, जपसर आदिके प्रति ममत्व बुद्धि करना वह पुण्य है। क्षिति, हेम, नारी आदियोंके प्रति जो अतिमोह है वह पाप है।

मोहको मिथ्यात्व भी कहते हैं। मोहको अज्ञान भी कहते हैं। यह सब आगम व अध्यात्मभाषाके भेदसे कथन है।

हे रविकीर्ति ! इस प्रकार स्नेह और मोह पुण्य और पापके लिए जन्मगेहके रूप में हैं। परन्तु वह कोप इस आत्माको जलाता है। इसलिए वह पापरूप है। और राहुके समान है। धर्मके लिए अथवा भोगके लिए, किसी भी कारण के लिए क्यों न हो क्रोध करें तो वे धर्म और भोग भस्म होते हैं। और पापकर्मका ही बंध होता है।

पाप इस आत्माको नरक और तिर्यंचगतिमें लेजाता है, पुण्य स्वर्गलोकमें लेजाता है। दोनोंकी समानता होनेपर इस आत्माको मनुष्य गतिमें लेजाते हैं।

हे भव्य! ये दोनों पाप और पुण्य कर्मलेप हैं, आत्माके निज भाव नहीं हैं। वे पाप पुण्य आठ कर्मोंके रूपमें परिणत होकर आत्माको इस संसारमें परिभ्रमण कराते हैं।

वे कर्म कभी इस आत्माको सुंदर बनाते हैं तो कभी कुरूपी बनाते हैं। कभी यह आत्मा ज्ञानी है तो कभी मूर्ख कहलाता है। कभी देव, कभी नारकी, और कभी मनुष्य, और कभी तिर्यंचके रूपमें यह आत्मा दिखता है। यह सब उन पापपुण्योंका तंत्र है। कभी यह आत्मा क्रूर कहलाता है तो कभी शांत कहलाता है। कभी वीर कहलाता है और कभी डरपोक कहलाता है, कभी स्त्री बनता है और कभी पुरुष। यह सब विचित्रतायें आत्माको कर्मजनित हैं।

शुभ व अशुभ कर्मके वशीभूत होकर संसारके समस्त प्राणी इस भवबंधनमें पडकर दुःख उठाते हैं। जब इस अशुभ व शुभ कर्मको अपने आत्मप्रदेशसे दूर करते हैं तब वे मुक्तिको प्राप्त करते हैं।

सुकृत व दुष्कृत दोनों पदार्थ आत्माके लिए उपयोगी नहीं है। उन दोनोंको समान रूपमें देखकर जो परित्याग करते हैं वे विकृतिको दूर कर मुक्तिको प्राप्त करते हैं।

एक सुवर्णकी श्रृंखला है, और दूसरी लोहेकी श्रृंखला है। परंतु दोनों बंधनके लिए ही कारण है। ऐसे पुण्यपाप आत्माके विकारके लिए कारण है। इस प्रकार जीव पुद्गलके संसर्गसे सप्ततत्वोंका विभाग हुआ। और उनमें पुण्य पापोंको मिलानेपर नव पदार्थ हुए।

इस प्रकार सप्ततत्व और नव पदार्थोंका विवेचन हुआ। अब उनमें हेय और उपादेय इस प्रकार दो विभाग है। अजीव, पुण्यास्रव पापास्रव, पुण्यबंध, पापबंध, इनको हेय समझकर छोडना चाहिये। निर्जरा, संवर, जीव और मोक्ष इन तत्वोंको उपादेय समझकर ग्रहण करना चाहिये।

जीवास्तिकाय, जीवतत्व, जीवपदार्थ इन सबका एकार्थ है। इसे आत्मकल्याणके लिए ग्रहण करना चाहिए। बाकी सर्वपदार्थ हेय हैं। आगमको जाननेका यही फल है। जीवद्रव्यको उपादेय समझकर अन्य द्रव्योंका परित्याग करना ही लोकमें सार है। जिस प्रकार सोनेकी खनिको खोदकर, मट्टीको राशी कर एवं शोधन कर बादमें उसमेसे सोनेको लिया जाता है, बाकी सर्वपदार्थोंको छोड दिया जाता है, उसी प्रकार सप्ततत्वोंको जानकर उनमेंसे छह तत्वोंको छोडकर जीवतत्वका ग्रहण करना ही बुद्धिमानोंका कर्तव्य है।

आस्रव व बंधसे इस आत्माको संसारकी वृद्धि होती है, आस्रव व बंधको छोडकर संवर व निर्जराके आश्रयमें जानेसे मुक्ति होती है। क्षमा ही क्रोधका शत्रु है, निस्संगभावना ही मोहका वैरी है, परमवैराग्य ही ममकारका शत्रु है, इन तीनोंको संयमी ग्रहण करें तो उसे बंध क्यों कर हो सकता है? पहिले पापकर्मको छोडकर पुण्यमें ठहरना चाहिए अर्थात् अशुभको छोडकर शुभमें ठहरना चाहिये। तदनंतर उसे भी परित्यागकर सुध्यानमें मग्न होना चाहिए। क्यों कि ध्यानसे ही मुक्ति होती है।

हे रविकीर्ति! इस प्रकार षड्द्रव्य, पंचास्तिकाय, सप्ततत्व, नवपदार्थोंका निरूपण किया। अब आत्मसिद्धि किस प्रकार होती है, उसका कथन किया जायगा। इस प्रकार भगवान् आदिप्रभुने अपने मृदु-मधुर-गंभीर दिव्यनिनाद के द्वारा तत्वोंका निरूपण किया एवं आगे आत्मसिद्धिके निरूपणके लिए प्रारंभ किया। उपस्थित भव्यगण बहुत आतुरताके साथ उसे सुन रहे हैं।

भरतनंदन सचमुचमें धन्य हैं, जिन्होंने तीर्थंकर केवलीके पादमूलमें पहुंचकर ऐसे पुण्यमय, लोककल्याणकारी उपदेशको सुननेके भाग्यको पाया है। तत्वश्रवणमें तन्मयता, बीचमें तर्कणा पूर्ण सरलशंकायें आदि करनेकी कुशलता एवं सबसे अधिक आत्मकल्याण कर लेनेकी उत्कट

संलग्नताको देखनेपर उनके सातिशय महत्वपर आश्चर्य होता है। ऐसे सत्पुत्रोंको पानेवाले भरतेश्वर भी असदृश पुण्यशाली हैं। जिन्होंने पूर्व-जन्ममें उच्च भावनाओंके द्वारा पुण्योपार्जन किया है। जिससे उन्हे ऐसे लोकविजयी पुत्ररत्न प्राप्त हुए।

भरतेश्वर सदा इस प्रकार भावना करते थे कि—

हे परमात्मन्! आप विमललोचन हैं, विमलाकार हैं। विमलांग हैं। विमलपुरुष हैं। विमलात्मा हैं। इसलिए लोकविमल हैं। अतः निर्मल मेरे अंतःकरणमें सदा बने रहो।

हे सिद्धात्मन्! आप त्रिभुवनसार हैं। दिव्यध्वनिसार हैं और अभिनव तत्वार्थसार हैं। विभवैकसार हैं, विद्यासार हैं, इसलिए हे निरंजनासिद्ध! मुझे सन्मति प्रदान कीजिये!!

इति तत्वार्थसंधिः।

—×—

अथ मोक्षमार्ग संधिः।

भगवान् आदिप्रभुने उन कुमारोंको पहिले विश्वके समस्ततत्वोंको समझाकर बादमें आत्मसिद्धिका परिज्ञान कराया। क्यों कि आत्मज्ञान ही लोकमें सार है। हे भव्य! परमात्मसिद्धिकी कलाको सुनो! हमने जो अभीतक तत्वोंका विवेचन किया है, उन तत्वोंके प्रति यथार्थश्रद्धान करते हुए जो उनको जानते हैं व यथार्थसंयमको धारण करते हैं, उनको आत्मसिद्धि होती है।

श्रद्धान, ज्ञान व चारित्रको रत्नत्रयके नामसे भी कहते हैं। इन रत्नत्रयोंको धारण करनेसे अवश्य आत्मकल्याण होता है। उन रत्नत्रयों में भेद और अभेद इस प्रकार दो भेद हैं। कारण कार्यमें विभिन्नता होनेसे ये दो भेद हो गये हैं। उन्हींको व्यवहाररत्नत्रय और निश्चय-रत्नत्रयके नामसे भी कहते हैं।

नवपदार्थ, सप्ततत्व, पंचास्तिकाय, षड्द्रव्य, इनको भिन्न भिन्न रूपसे जानकर अच्छी तरह श्रद्धान करना, एवं व्रतोंको विकल्परूपसे आचरण करना इसे भेदरत्नत्रय अथवा व्यवहाररत्नत्रय कहते हैं।

परपदार्थोंकी चिंताको छोडकर अपने आत्माका ही श्रद्धान एवं उसीके स्वरूपका ज्ञान व मनको उसीमें मग्न करना यह अभेदरत्नत्रय है एवं इसे निश्चयरत्नत्रय भी कहते हैं। आत्मासे भिन्न पदार्थोंके अवलंबनमें जो रत्नत्रय होता है उसे भेद रत्नत्रय कहते हैं, अभेदरूपसे अपने ही श्रद्धान, ज्ञान व ध्यानका अवलंबन वह अभिन्न रत्नत्रय अर्थात् अभेद-रत्नत्रय है।

पहिले व्यवहाररत्नत्रयके अवलंबनकी अवश्यकता है। व्यवहार रत्नत्रयको धारणकर व्यवहारमार्गके आचरणमें निष्णात होनेपर निश्चयार्थको साधन करना चाहिये, जिससे निश्चलसिद्धि होती है।

हे रविकीर्ति! व्यवहारमार्गसे निश्चयमार्गकी सिद्धि करलेनी चाहिये और उस विशुद्ध निश्चयमार्गसे आत्मसिद्धिको साधलेनी चाहिये, यही आत्मकल्याणका राजमार्ग है। यह चित्त हवाके समान अत्यंत चंचल है, दुनियामें सर्वत्र वह विहार करता है। ऐसे चित्तको निरोध कर तत्व-विचारमें लगालेना चाहिये, फिर उन तत्वोंसे फिराकर अपने आत्माकी ओर लगाना चाहिये।

मनको यथेच्छसंचार करने दिया जाय तो वह चाहे जिधर चला जाता है। यदि रोकें तो रुक भी जाता है। इसलिए ऐसे चंचल मनको तत्वविचारमें लगाना एवं अपनेमें स्थिर करना यह विवेकियोंका कर्तव्य है।

रविकीर्ति! लोकमें घोरतपश्चर्या करनेसे क्या प्रयोजन? अनेक शास्त्रोंके पठनसे क्या मतलब? इस चपलचित्तको जबतक स्थिर नहीं करते हैं तबतक उस तपश्चर्या व शास्त्रपठनका कोई प्रयोजन नहीं है। जो व्यक्ति उस चंचलचित्तको रोककर अपने आत्मविचारमें लगाता है वही वास्तवमें तपस्वी है, एवं शास्त्रके ज्ञाता है।

मनके विकल्प, इंद्रियोंके विषय कषायोंको उत्पन्न करते हैं एवं स्वयं अलग होते हैं, इससे योगोंके निमित्तसे आत्मप्रदेशका परिस्पंद होता है। एवं आस्रव बंध होते हैं, इसलिए मन ही कर्मोंके लिए घर है।

इस मनको आत्मामें न लगाकर परपदार्थोंमें लगावें तो उससे कर्मबंध होता है, वह जिस प्रकार एक एक पदार्थका विचार करता है उसी प्रकार नवीन नवीन कर्मोंका बंध होता है। उसे रोककर आत्मामें लगाने पर कर्मकी एकदम निर्जरा होती है।

इस दुष्टमनके स्वेच्छविहारसे कर्मबंध होता है। यह आत्मा आठ कर्मोंके जालमें फंसता है। उससे संसारकी वृद्धि होती है। इसलिए उस दुष्ट मनको ही जीतना चाहिए।

चतुरंगके खेलमें राजाको ही बांधने पर जिस प्रकार खेल खतम हो जाता है उसी प्रकार इस संचरणशील मनको ही बांधनेपर आस्रव नहीं, बंध नहीं, फिर अपने आप संवर और निर्जरा होती है।

प्राणावादपूर्व नामके महाशास्त्रको पठनकर कोई दशवायुवोंको वशमें कर लेते हैं, एवं उससे हरिणके समान चंचलवेगसे युक्त चित्तको रोककर आत्मामें लगा देते हैं। और कोई इस प्राणायामके अभ्यासके विना ही इस चंचलमनको स्थिर कर आत्मामें लगाते हैं एवं आत्मानुभव करते हैं। इस प्रकार मनका अनुभव दो प्रकारसे हैं।

प्राणियोंके चित्तका दो विकल्प हैं, एक मृदुचित्त और दूसरा कठिन चित्त। मृदुचित्तके लिए प्राणायामयोगकी आवश्यकता नहीं है। और कठिनचित्तको वायुयोगसे मृदु बनाकर आत्मामें लगाना चाहिए। हे रविकीर्ति! यह ब्रह्मयोग है। एवं ब्रह्मयोगका मूल है। नाभि से लेकर उस वायुको जिह्वाके ऊपर स्थित ब्रह्मरंध्रको चढावे तो उस परब्रह्मका दर्शन होता है। उस प्राणायाममें कला, नाद, बिंदु इत्यादि अनेक विधान हैं। उन को उक्त विषयक शास्त्रोंसे जान लेना! यहांपर हम इतना ही कहते हैं कि अनेक उपायोंसे मनको रोक कर आत्मामें लगानेपर आत्मसिद्धि होती है।

ध्यानके विना कर्मकी निर्जरा नहीं हो सकती है, सहज ही प्रश्न उठता है कि वह ध्यान क्या है ? चित्तके अनेक विकल्पोंको छोडकर इस मनका आत्मामें संधान होना उसे ध्यान कहते हैं।

बोल, चाल, दृष्टि, शरीरकी चेष्टा आदिको रोकते हुए लेपकी पुतली के समान निश्चल बैठकर इस चंचल मनको आत्मविचारमें लगाना उसे सर्वजन ध्यान कहते हैं।

अनेक प्रकारसे तत्वचिंतवन करना वह स्वाध्याय है। एक ही विचार में उस मनको लगाना वह ध्यान है। उस ध्यानमें भी धर्म्य व शुक्लके भेदसे दो विकल्प हैं।

आंखमीचकर मनकी एकाग्रतासे ध्यान किया जाता है जब आत्माकी कांति दिखती है और अदृश्य होती है एवं अल्पसुखका अनुभव कराता है, उसे धर्म्यध्यान कहते हैं।

कभी एकदम देहभरकर प्रकाश दिखता है एवं तदनंतर हृदय व मुखमें दिखता है, इस प्रकार कुछ अधिक प्रकाशको लिए हुए वह परब्रह्मको प्राप्त करनेके लिए बीजरूप वह धर्मयोग है।

जैसे जैसे ध्यानका अभ्यास बढता है वह प्रकाश दिन प्रतिदिन बढता ही रहता है एवं कर्मरज आत्मप्रदेशसे निकल जाते हैं। मनमें सुज्ञानकी मात्रा बढती है। एवं सुखके अनुभव में भी वृद्धि होती है।

उस सुखको वह लोकके सामने बोलकर बतला नहीं सकता है। केवल उसको स्वतः अनुभव कर खूब तृप्त हो जाता है। बोल चालकी इस जगकी सर्वचेष्टायें उसे जड़ मालुम होती हैं।

उसे सर्वलोक पागलके समान मालुम होता है। वह लोगोंकी दृष्टिमें पागलके समान मालुम देता है। वह आत्मयोगी कभी मौनसे रहता है, फिर कभी बोलकर मूकके समान हो जाता है, उसकी वृत्ति विचित्र है।

एकांतकी अपेक्षा करनेवाली वृत्तियोंकी वह अपेक्षा नहीं करता है, परंतु वह एकांगी रहता है। एक वार लोकके अग्रभागमें पहुंचता है

अर्थात् सिद्धलोक व सिद्धात्माओंका विचार करता है, फिर अपने आत्म-लोकमें संचरण करता है।

अपनी आत्माको स्वतः आप देखकर अपने सुखका अनुभव करता है एवं उससे उत्पन्न हर्षसे फूलता है, हसता है, दूसरोंको नहीं कहता है। यह धर्मयोगको साधन करनेवालेके लक्षण हैं।

वह धर्मयोग यदि साध्य हुआ तो भव्योंके हितके लिए कुछ उपदेश देता है, यदि भव्योंने उपदेशको अनंदसे सुना तो उसे कोई आनंद नहीं है, और नहीं सुना तो कोई दुःख भी उसे नहीं है।

स्वतः जो कुछ भी अनुभव करता है कभी उस मिष्टसुखको कृतिके रूपमें लोकके सामने रखता है। एवं प्रत्यक्ष जो कुछ भी देखा उसे कभी उपदेशमें बोल कर वता देता है। इस प्रकार कोई २ आत्मकल्याणके साथ लोकोपकार भी करते हैं, परंतु कोई इस झगडेमें नहीं पडते हैं। उस धर्मयोगके वलसे अपने कर्मके संवर, और निर्जरा करते हुए आगे वढते हैं, हे भव्य! यह धर्म ध्यान है।

दशविध धर्मके भेदोंसे एवं चार प्रकारके (आज्ञाविचय, अपाय-विचय विपाकविचय, संस्थानविचय) ध्यानके भेदोंसे उस ध्यानका वर्णन किया जाता है, वह सव व्यवहार धर्म है। इस चित्तको आत्मामें लगा देना वह निश्चय--उत्तम--धर्म योग है।

इस चर्मदृष्टिको वंदकर आत्मसूर्यको देखने पर वह सूर्य मेघ मंडल के अंदर उज्वल रूपसे जिस प्रकार दिखता है उस प्रकार दिखता है एवं साथमें सुज्ञान व सुख का विशेष अनुभव कराता है वह शुक्लयोग है।

ज्ञान, प्रकाश, सुख, कुछ अल्पप्रमाणमें दिखते हुए अदृश्य होते हुए जो आत्मानुभव होता है वह धर्मयोग है। और वही सुज्ञान, प्रकाश व सुखकी विशालरूपसे दिखते हुए स्थिरताकी जिसमें प्राप्त होते हैं वह शुक्लयोग है।

इस शरीरमें कोई २ विशेष स्थानको पाकर प्रकाशका परिज्ञान होना वह धर्मयोग है। चांदनीकी पुतलीके समान यह आत्मा सर्वांगमें जब दिखता है वह शुक्लयोग है।

हवामें स्थित दीपकके समान हिलते हुए चंचलरूपसे जिसमें आत्माका दर्शन होता है वह धर्मयोग है। और हवासे रहित निश्चल दीपकके समान निष्कंपरूपसे आत्माका दर्शन होना वह शुक्लयोग है।

एकवार पुरुषाकारके रूपमें, फिर वही अदृश्य होकर, इस प्रकार जो प्रकाश दिखता है वह धर्मयोग है, परंतु वही पुरुषाकार अदृश्य न होकर शरीरमें, सर्वांगमें प्रकाशरूप में ठहर जाय उसे शुक्लयोग कहते हैं।

चंद्रकी कला जिस प्रकार क्रमसे धीरे २ बढती जाती है उसी प्रकार धर्मध्यानमें धीरे २ आत्मानुभव बढता है। प्रातःकालका सूर्य तेजःपुंज होते हुए मध्यान्हमें जिस प्रकार अपने प्रतापको लोकमें व्यक्त करता है, उस प्रकार शुक्लध्यान इस आत्माको प्रभावित करता है।

बरसातका पानी जिस प्रकार इस जमीनको कोरता है उस प्रकार यह धर्मयोग कर्मको जर्जरित करता है। नदीका जल जिस प्रकार इस जमीन को कोरता है उस प्रकार यह शुक्लयोग कर्मसंकुलको निर्जरित करता है।

मड अर्थात् तीक्ष्णधारसे युक्त नहीं है ऐसा फरसा जिस प्रकार लकडीको काटता है उस प्रकार कर्मोंको धर्मयोग काटता है। तीक्ष्ण-धारसे युक्त फरसेके समान शुक्लयोग कर्मोंको काटता है।

विशेष क्या ? एक अल्पकांति है, दूसरी महाकांति है। इतना ही अंतर है। विचार करने पर वह दोनों एक ही है। क्यों कि उन दोनोंको आत्माके सिवाय दूसरा कोई आधार नहीं है।

सिंहके बच्चेको बालसिंह कहते हैं, बडा होनेपर उसे ही सिंहके नामसे कहते हैं, परंतु बालसिंह ही सिंह बन गया न ? इसी प्रकार ध्यानके बाल्यकालमें वह ध्यान धर्मध्यान कहलाता है और पूर्णताको

प्राप्त होनेपर उसे ही शुक्लध्यान कहते हैं। वह भवगजके समूहको नाश करनेके लिए समर्थ है।

व्यंजनार्थको लेकर जब उस ध्यानका चार भेदसे विभंजन होता है वह व्यवहार है। उन विकल्पोंको हटाकर आत्मामें ही मग्न हो जाना निरंजन, निश्चय शुक्लध्यान है। धर्मध्यान बहुशास्त्री [विशेष विद्वान्] अल्पशास्त्री मुनि, श्रावक सबको होता है। परंतु शुक्लध्यान तो विशिष्ट ज्ञानी या अल्पज्ञानी योगीको ही हो सकता है, गृहस्थोंको नहीं हो सकता है।

आजसे लेकर कलिकालके अंततक भी धर्मयोग तो रहता ही है। परंतु शुक्लध्यान आजसे कई कालतक रहेगा। परंतु कलिकालमें इस (भरत भूमिमें) शुक्लध्यानकी प्राप्ति नहीं हो सकती है।

धर्मध्यानसे विकलनिर्जरा होती है, और शुक्लध्यानसे सकल निर्जरा होती है। विकलनिर्जरासे देवलोककी संपत्ति मिलती है और सकल-निर्जरासे मोक्षसाम्राज्यका वैभव मिलता है।

एक ही जन्ममें धर्मयोगको पाकर पुनश्च शुक्लयोगमें पहुंचकर कोई भव्य मुक्त होते हैं। और कोई धर्मयोगसे आगे न बढकर स्वर्गमें पहुंचते हैं व सुखसे जीवन व्यतीत करते हैं।

धर्मयोगके लिए वह काल, यह काल वगैरेकी आवश्यकता नहीं है। वह कभी भी अनुभव किया जा सकता है, जो निर्मल चित्तसे उस धर्मयोगका अनुभव करते हैं वे लोकांतिक, सौधर्मेंद्र आदि पदवीको पाकर दूसरे भवसे निश्चयसे मुक्तिको प्राप्त करते हैं।

व्यवहारधर्मका जो अनुभव करते हैं उनको स्वर्गसंपत्ति तो नियमसे मिलेगी। इसमें कोई शक नहीं है। भवनाश अर्थात् मोक्षप्राप्तिका कोई नियम नहीं है। आत्मानुभव ही उसके लिए नियम है। आत्मानुभव होनेके बाद नियमसे मोक्षकी प्राप्ति होगी।

आज निश्चयधर्मयोगकी प्राप्ति नहीं हुई तो क्या हुआ। अपने चित्तमें उसकी श्रद्धाके साथ दुश्चरितका त्याग करते हुए शुभाचरण करें तो कल निश्चयधर्मयोगको अवश्य प्राप्त करेगा।

संसारमें अविवेकी मूढात्माको वह निश्चयधर्मयोग प्राप्त नहीं हो सकता है, जो कि स्वतः उस निश्चयधर्मयोगसे शून्य रहता है। एवं निश्चयधर्मको धारण करनेवाले सज्जनोंको वह वृश्चिकके समान रहता है एवं उनकी निंदा करता है। ऐसे दुश्चित्तको वह धर्मयोग क्योंकर प्राप्त हो सकता है?

भव्योंमें दो भेद है। एक सारभव्य दूसरा दूरभव्य। सारभव्य [आसन्नभव्य] उस आत्माको ध्यानमें देखते है। परंतु दूरभव्योंको उस आत्माका दर्शन नहीं होता है। तथापि वे सारभव्योंकी वृत्तिके प्रति अनुराग को व्यक्त करते हैं। इसलिए वे कल आत्मसिद्धिको प्राप्त करते हैं।

सारभव्य आत्माका दर्शन करते हैं, तब दूरभव्य प्रसन्न होते हैं। उस समय अभव्य उनकी निंदा करते हैं, उनसे द्वेष करते हैं। फलतः वे नरकगतिमें पहुंच जाते हैं। कभी व्यवहारका विषय उनके सामने आवे तो बडा उत्साह दिखाते हैं। परंतु सुविशुद्ध निश्चयनयका विषय उनके सामने आवे तो चुपचापके निकल जाते हैं, उसका तिरस्कार करते हैं।

स्वतः उन अभव्योंको आत्मयोग प्राप्त नहीं हो सकता है। जो स्वात्मानुभव करते हैं उनको देखनेपर उनके हृदयमें क्रोधोद्रेक होता है। उन भव्योंकी निंदा करते हैं, यदि उनकी निंदा न करें तो उनको ध्रुव व अविनाशी संसार कैसे प्राप्त हो सकता है? वे अभव्य द्वादशांग शास्त्रोंमें एकादशांगतक पठन करते हैं। परिग्रहोंको छोडकर निर्ग्रंथ तपस्वी भी होते हैं। परंतु बाह्याचरणमें ही रहते हैं।

शरीरको नग्न करना यह देहनिर्वाण है। शरीरके अंदर स्थित आत्माको शरीररूपी थैलेसे अलग कर देखना आत्मनिर्वाण है। केवल

बाह्य नग्नतासे क्या प्रयोजन ? देहनग्नताके साथ आत्मनग्नताकी परम आवश्यकता है।

मूर्तिनिर्वाण अर्थात् देहनिर्वाणके साथ हंसनिर्वाण अर्थात् आत्म निर्वाणको ग्रहण करें तो मुक्तिकी प्राप्ति होती है। वे धूर्त अभव्य मूर्ति-निर्वाणको स्वीकार करते हैं, हंसनिर्वाणको मानते नहीं है।

अंदरके कषायोंका त्याग न कर बाहर सब कुछ छोडें तो क्या प्रयोजन है ? सर्प अपनी काचलीका परित्याग करें तो क्या वह विषरहित होजाता है ? आत्मसिद्धिके लिए अंदर तिलमात्र भी रागद्वेष मोहका अंश नहीं होना चाहिये एवं स्वयं आत्मा आत्मामें लीन होजावे।

इस प्रकारके उपदेशको अभव्य नहीं मानते हैं। वे ध्यानकी अनेक प्रकारसे निंदा करते हैं। उसकी खिल्ली उडाते हैं। जो ध्यान करते हैं, उनकी हसी करते हैं, " ये ध्यान क्या करते हैं, कैसे करते हैं, आत्मा आत्मा कहां है ? " इत्यादि प्रकारसे विवाद करते हैं।

वे अभव्य ' ध्यानसिद्धि स्वतःको नहीं है, ' इस मात्सर्यसे " इसे आत्मध्यान नहीं हो सकता है, उसे आत्मध्यान नहीं होता है, यह काल उचित नहीं है, वह काल चाहिए, उसके लिए अमुक सामग्री चाहिए, तमुक चाहिये, आपका ध्यान, हमारा ध्यान अलग है " इत्यादि अनेक प्रकारसे बहानेबाजी करते हैं।

वे अभव्य शरीरको कष्ट देते हैं, पढाते हैं, पढते हैं। अनेक कष्ट सहन करते हैं। इन सब बातोंके फलसे संसारमें कुछ सुखका अनुभव करते हैं। परंतु मुक्तिसुखको वे कभी प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

बीचमें ही रविकीर्तिराजने प्रश्न किया कि भगवन् ! एक प्रार्थना है। आत्माको आत्माका दर्शन नहीं हुआ तो मुक्ति नहीं होती है, ऐसा आपने कहा। यह समझमें नहीं आया। सदा काल आपकी भक्तिमें जो अपना समय व्यतीत करते हैं उनको आत्मसिद्धि होने में आपत्ति क्या है ?

भव्य ! सुनो ! भगवंतने फिरसे निरूपण किया। हमारे प्रति जो भक्ति है वह मुक्तिका कारण जरूर है। परंतु उस भक्तिके लिए युक्तिकी आवश्यकता है। हमारे निरूपणको सुनकर उसके अनुसार चलना, वही हमारी भक्ति है। अपनी इच्छानुसार भक्ति करना वह मूर्खभक्ति है।

' स्वामिन् ! वह स्वेच्छाचारपूर्ण भक्ति कैसी है ? अपनी आत्माके विचारसे युक्त भक्ति स्वेच्छापूर्ण कही जा सकती है। परंतु मुक्तिको जिनेंद्र ही शरण है इस प्रकार आपकी भक्ति करें तो स्वेच्छापूर्ण भक्ति कैसे हो सकती है ? " इस प्रकार पुनश्च रविकीर्तिने विनयसे पूछा।

" हे रविकीर्ति ! ' तुम्हारा आत्मयोग ही हमारी भक्ति है ' यह तुम जानते हुए भी प्रश्न कर रहे हो, सब विषय स्पष्ट रूपसे कहता हूं। सुनो ! युक्तिको जानकर जो जो भक्ति करते हैं वे मुक्तिको नियमसे प्राप्त करते हैं। युक्तिरहित भक्ति भवकी वृद्धि करती है। इसलिए भक्तिके रहस्यको जानकर भक्ति करनी चाहिए " इस प्रकार आदि प्रभुने निरूपण किया।

पुनश्च रविकीर्तिराजने हाथ जोडकर विनयसे प्रार्थना की कि प्रभो ! हम मंदमति अज्ञानी क्या जाने कि वह युक्तिसहित भक्ति क्या है ? और युक्तिरहित भक्ति क्या है ? हे सर्वज्ञ ! उसके स्वरूपका निरूपण कीजियेगा।

" तब हे भव्य ! सुनो ! " इस प्रकार भगवंतने अपने गंभीर दिव्यनिनादसे निरूपण किया।

हे भव्य ! वह भक्ति भेद और अभेदके भेदसे दो भेदोंमें विभक्त है। उनके रहस्यको जानकर भक्ति करें तो मुक्ति होती है।

यहां समवसरणमें हम रहते हैं, सिद्ध परमेष्ठी लोकाग्रभागमें रहते हैं, इत्यादि प्रकारसे अपनी आत्मासे हमें व सिद्ध परमेष्ठियोंको अलग रखकर विचार करना, पूजा करना, यह भेदभक्ति है।

हमें व सिद्ध परमेष्ठियोंको इधर उधर न रखकर अपनी आत्मामें ही रखकर भावपूजा करना वह परब्रम्हाकी अभेदभक्ति है। हमें अलग रखकर देखना वह भेदभक्ति है। भक्तिके साथ अपनी आत्मामें ही

अभिन्नरूपसे हमें देखना वह कर्मोको ध्वंस करनेमें समर्थ अभेदभक्ति है । लेप, कांसा, पीतल आदिके द्वारा हमारी मूर्ति बनाकर उपासना करना वह भेदभक्ति है । आत्मामें विराजमानकर हमें देखना वह हमारे पसंदकी अभेदभक्ति है ।

सिद्ध व अरिहंतके समान ही मेरी आत्मा भी परिशुद्ध है, इस प्रकार अपनी आत्माको देखना वही सिद्धभक्ति है । वही हमारी भक्ति है । तभी सिद्ध व हम वहां निवास करते हैं ।

भेदभक्तिको अनेक सज्जन करते हैं । परंतु अभेदभक्तिको नहीं कर सकते हैं । भेदभक्तिको पहिले अभ्यास कर बादमें अभेदभक्तिका अवलंबन करना चाहिए ।

भेदभक्तिको सभी अभव्य भी कर सकते हैं, परन्तु अभेदभक्ति तो उनके लिए असाध्य है । मोक्षसाम्राज्यको मिलादेनेवाली वह भक्ति अभागियोंको क्यों कर प्राप्त हो सकती है ?

स्वयं भक्ति न कर सके तो क्या हुआ ? जो भक्ति करते हैं उनके प्रति मनसे प्रसन्न होवे एवं अनुमोदना देवें तो कल वह भक्ति प्राप्त हो सकती है । परंतु उनको भक्ति सिद्ध होती नहीं । और दूसरोंकी भक्तिको देखकर प्रसन्न भी नहीं होते हैं । इसलिए वे मुक्तिसे दूर रहते हैं ।

भिन्नतासे युक्त भक्ति ही भेदभक्ति है, वह आत्माको उस भक्तिसे भिन्न करता है । और भेदरहित भक्ति है, वह अभेदभक्ति है, वह आत्मासे अभिन्न ही है ।

इसके लिए एक दृष्टांत कहेंगे सुनो ! गुरुके घरमें जाकर उनकी पूजा करना यह गुरुभक्ति है । परंतु गुरुको अपने घरमें बुलाकर पूजा करना वह विशिष्ट गुरुभक्ति है ।

भक्तिमें श्रेष्ठ अभेदभक्ति है । सर्व संपत्तियोमें श्रेष्ठ मुक्तिसंपत्ति है । मुक्तिके योग्य भक्ति करना आवश्यक है, यही युक्तिसहित भक्ति है, इसे अच्छी तरह जानना । भिन्नभक्ति अर्थात् भेदभक्तिका फल स्वर्ग संपदाकी

प्राप्ति होना है, परंतु अभेदभक्तिका फल तो मुक्तिसाम्राज्यको प्राप्त करना है। कभी भिन्न भक्तिसे स्वर्गमें भी पहुंचे तो पुनः स्वर्ग सुखको अनुभव कर वह दूसरे जन्मसे मुक्तिको जायगा। यह मेरी आज्ञा है, इसे श्रद्धान करो। भेदरत्नत्रय, व्यवहार रत्नत्रय, शुभयोग, भेदभक्ति इन सबका अर्थ एक ही है। अभेद रत्नत्रय, निश्चयं, शुद्धोपयोग, अभेद्भक्ति इन सबका एक अर्थ है।

ध्यानके अभ्यास कालमें चित्तके चांचल्यको दूर करने के लिए शुभ योगका आचरण करना आवश्यक है, बादमें जब चित्तक्षोभ दूर होनेके बाद आत्मामें स्थिर होजाना उसे शुद्धोपयोग कहते हैं।

चैतन्यरहित शिला आदिमें मेरा उद्योत करें तो सामान्य भक्ति है, चैतन्यसहित आत्मामें रखकर मेरी जो प्रतिष्ठा की जाती है वह विशेषभक्ति है।

रविकीर्तिकुमारने बीचमें ही एक प्रश्न किया। भगवन्! पाषाण अचेतन स्वरूप है। यह सत्य है। तथापि उसमें मलादिक दूषण नहीं है। परंतु जो अनेक मलदूषणोंसे युक्त है, ऐसे देहमें आपको स्थापन करना वह भूषण कैसे हो सकता है ?।

उत्तरमें भगवंतने फरमाया कि भव्य! यह देह अपवित्र जरूर है। परंतु उस देहमें हमारी कल्पना करनेकी जरूरत नहीं है। देहमें जो शुद्ध आत्मा है उसमें हमारे रूपकी कल्पना करो। समझे ?

पुनश्च रविकीर्तिने कहा कि स्वामिन्! यह समझ गया। अंदर वह आत्मा परिशुद्ध है, यह सत्य है। तथापि मांसास्थि, चर्मरक्त व मलसे पूर्ण अपवित्र देहके संसर्गदोषके विना आपकी स्थापना उसमें हम कैसे कर सकते हैं ? कृपया समझाकर कहिये।

प्रभुने कहा कि भव्य! इतना जल्दी भूल गये ? इससे पहिले ही कहा था कि गायके स्तनभागमें स्थित दूधके समान शरीरमें स्थित आत्मा परिशुद्ध है। शरीरके अंदर रहनेपर भी वह आत्मा शरीरको

स्पर्श न करके रहता है। इसलिए वह पवित्र है। उसी स्थानमें हमारी स्थापना करो। गौके गर्भमें स्थित गोरोचन लोकमें पावन है न? जीव शरीरमें रहा तो क्या हुआ? वह निर्मलस्वरूपी है, उसे प्रतिनित्य देखनेका यत्न करो।

मृगकी नाभिमे रहने मात्रसे क्या? कस्तूरी तो लोकमें महासेव्य पदार्थ माना जाता है। इसी प्रकार इस चर्मास्थिमय शरीरमें रहनेपर भी आत्मा स्वयं पवित्र है। सीपमें रहनेपर भी मोती जिस प्रकार पवित्र है, उसी प्रकार रक्त मांसके शरीरमें रहनेपर भी विरक्त जीवात्मा पवित्र है। इसे श्रद्धान करो। इसलिए जिस प्रकार दूध, मोती, कस्तूरी आदि पवित्र हैं, उसी प्रकार यह मन ही जिसका शरीर है वह आत्मा भी पवित्र है। इस विषयमें विचार करनेकी क्या आवश्यकता है?

अज्ञानीकी दृष्टिमें यह आत्मा अपवित्र है। सत्य है! परंतु आत्मज्ञानी सुज्ञानीकी दृष्टिमें वह पवित्र है। अज्ञान भावनासे अज्ञान होता है, सुज्ञानसे सुज्ञान होता है।

जबतक इस आत्माको बद्धके रूपमें देखता है तबतक वह आत्मा भवबद्ध ही है। जबसे इसे शुद्धके रूपमें देखने लगता है, तबसे वह मोक्षमार्गका पथिक है।

'शरीर ही मैं हूं' ऐसा अथवा शरीरको ही आत्मा समझनेवाला बहिरात्मा है। आत्मा और शरीरको भिन्न समझनेवाला अंतरात्मा है। शरीररहित आत्मा परमात्मा है। आत्माका दर्शन जिस समय होता है, उस समय सभी परमात्मा हैं।

बहिरात्मा बद्ध है, परमात्मा शुद्ध है, अंतरात्मा अपने हितमें लगा हुआ है। वह बाह्यचिंतामें जब रहता है तब बद्ध है। अपने आत्मचिंतवनमें जब मग्न होता है तब शुद्ध है।

अपने आत्माको अल्प समझनेवाला स्वयं अल्प है। अपने आत्माको श्रेष्ठ समझकर आदर करनेवाला अल्प नहीं है, वह मेरे समान लोकपूजित है। इसे मेरी आज्ञा समझकर श्रद्धान करो।

दर्शन, ज्ञान, चारित्र, और तपके भेदसे चार विकल्प आचारका व्यवहारसे होनेपर भी निश्चयसे परमात्मयोगमें ही वे सब अंतर्भूत होते हैं। यह निश्चय मोक्षमार्ग है। मूल गुण, उत्तरगुण आदिका विकल्प सभी व्यवहार हैं। मूलगुण तो अनंतज्ञानादिक आठ हैं और मेरे स्वरूपमें हैं। इस प्रकार समझकर आत्मामें आराम करना यह निश्चय है। हे भव्य ! जो व्यक्ति सर्व विकल्पोंको छोडकर ध्यानमें मग्न होते हुए मुझे देखता है वही देववंदना है, अनेक व्रतभावना है।

वायुवेगसे जानेवाले इस चित्तको आत्ममार्गमें स्थिर करना यही घोर तपश्चर्या है। उग्र तपश्चर्या है। श्रेष्ठ तपश्चर्या है। इसे विश्वास करो।

अध्यात्मको जानकर चित्तसाध्यको करते हुए जो अपने आत्मामें ठहर जाना है,वही स्वाध्याय है,वही पंचाचार है। वही महाध्यान है। जप है,तप है।

पारेके समान इधर उधर जानेवाले चित्तको लाकर आत्मामें संधान करना वही द्वादशांग शास्त्राध्ययन है। वही चतुर्दशपूर्वाभ्यास है।

साम्यभावनासे चित्तको रोककर आत्मगम्य करना वही सम्यक्त्व है, सम्यग्ज्ञान है, सम्यक्चारित्र है और साम्यतप है।

भिन्न भिन्न स्थानमें पलायन करनेवाले चित्तको आत्मामें अभिन्न रूपसे लगा देना वही मेरी मुद्रा है, वही तीर्थवंदना है, और वही मेरी उपासना है, इसे श्रद्धान करो।

दुर्जयचित्तको जीतकर, सर्व विकल्पोंको वर्जित करते हुए जो स्वयंको देखना है वही निर्जरा है, संवर है, वही परमात्माकी ऊर्जित मुक्ति है।

दाक्षिण्य (लिहाज) छोडकर चित्तको दबाते हुए आत्मसाक्षीसे अंदर देखना वह मोक्षपद्धति है, वही मोक्षसंपत्ति है। विशेष क्या ? वही मोक्ष है, इसे विश्वास करो, विश्वास करो।

हे रविकीर्ति ! यह आत्मचिंतवन परमरहस्यपूर्ण है, एवं मुझे प्राप्त करनेके लिए सन्निकट मार्ग है। जो इस दुष्टमनको जीतते हैं उन शिष्टोंको इसका अनुभव हो सकता है।

' प्रभो ! एक शंका है, ' बीचमें ही रविकीर्तिकुमारने कहा।

जब इस परमात्माको इतनी अलौकिक सामर्थ्य है फिर वह इस संकुचित शरीरमें फंसकर क्यों रहता है ? जन्म और मरणके संकटोंको क्यों अनुभव करता है ? श्रेष्ठ मुक्तिमें क्यों नहीं रहता है ? ।

भगवंतने उत्तर दिया कि भव्य ! वह अतुलसामर्थ्यसे युक्त है, यह सत्य है, तथापि अपनी सामर्थ्यको न जानकर बिगड गया । रागद्वेषको छोडकर अपने आपको देखें तो यह बहुत सुखका अनुभव करता है ।

वृक्षको जलानेकी सामर्थ्य अग्निमें है, परंतु वह आग वृक्षमें ही छिपी रहती है । जब दो वृक्षोंका परस्पर संघर्षण होता है तब वही अग्नि उसी वृक्षको जला देती है । ठीक इसी प्रकार कर्मको जलानेकी सामर्थ्य आत्मामें है, परंतु वह कर्मके अंदर ही छिपा हुआ है । कर्मको जान कर स्वतः अपनेको देखें तो उसी कर्मको वह जला देता है ।

आत्मामें अनंतशक्ति है, परंतु वह शक्तिरूपमें ही विद्यमान है । उसे व्यक्तिके रूपमें लानेकी आवश्यकता है । शक्तिको व्यक्तिके रूपमें लानेके लिए विरक्तिसे युक्त ध्यान ही समर्थ है ।

अंकुर तो बीजके अंदर मौजूद है । भूमिका स्पर्श न होनेपर वह वृक्ष कैसे बन सकता है ? । पंकयुक्त भूमि (कीचडसे युक्त जमीन) के संसर्गसे वही बीज अंकुरित होकर वृक्ष बनजाता है ।

ज्ञानसामर्थ्य इस शरीरमें स्थित आत्मामें विद्यमान है, तथापि ध्यानके बिना वह प्रकट नहीं हो सकती है । उसे आनंद रसके सुध्या-नमें रखनेपर तीन लोकमें ही वह व्याप्त हो जाता है ।

वनमूलिकासारको (नवसादर) सुवर्ण शोधक सांचेमें (मूसमें) डालकर अग्निसे उस अशुद्ध सुवर्णको तपानेपर किट्टकालिमादि दोषसे रहित शुद्ध सुवर्ण बन जाता है, उसी प्रकार आत्मशोधन करना चाहिये ।

शरीर सुवर्णशोधक सांचा (मूस) है । रत्नत्रय यहांपर नवसादर (सुहागा) है, और सुध्यान ही अग्नि है । इन सबके मिलनेपर कर्मका विध्वंस होता है, और वह आत्मा शुद्धसुवर्णके समान उज्वल होता है ।

हलके सोनेको शुद्ध जहां किया जाता है वहां वह नवसादर, मूस अग्नि, किट्ट, कालिमा, आदि सब अलग अलग ही हैं। और वह सिद्ध [शुद्ध] करनेवाला अलग ही है। परंतु यह आत्मशोधनकार्य उससे विचित्र है, यह उस सुवर्णपुटके समान नहीं है।

" सिद्धोऽहम् ! सोऽहम् " इत्यादि रूपसे जो उस आत्मशोधनमें तत्पर हैं उनको समझानेके लिए निरूपण करते हैं। अच्छी तरह सुनो ! और समझो।

आत्मपुटकार्यमें वह मूस, किट्ट, कालिमा, यह आत्मासे भिन्न हैं। बाकी सुवर्ण, औषधि, और शोधकसिद्ध सभी आत्मा स्वयं है। इस विषय पर विशेष विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है, भव्य ! यह वस्तुस्वभाव है। समस्त तत्वोंमें यह आत्मतत्व प्रधानतत्व है, उसका दर्शन होनेपर अन्यविकल्प हृदयमें उत्पन्न नहीं होते हैं।

निक्षेप, नय, प्रमाण यह सब आत्मपरीक्षणके कालमें रहते हैं, सर्व पक्षको छोडकर आत्मनिरीक्षणपर जब यह मग्न हो जाता है तब उनकी आवश्यकता नहीं है।

मदगज यदि खो जाय तो उसके पादके चिन्होंको देखते हुए उसे ढूंडते हैं। परंतु सामने ही वह मदगज दिखे तो फिर उन चिन्होंकी आवश्यकता नहीं रहती है। अनेक शास्त्रोंका अध्ययन, मनन आदि आत्मान्वेषणके लिए मार्ग हैं, ध्यानके बलसे आत्माको देखनेके बाद अनेक विकल्प व भ्रांतिकी क्या आवश्यकता है ?

आत्मसंपर्कमें जो रहते हैं उनको तर्कपुराणादिक आगम रुचते नहीं हैं। अर्कके समीप जो रहते हैं वे दीपकको क्यों पसंद करते हैं ? क्या राजशर्करासे भी खडकी कभी कीमत अधिक हो सकती है ?

हे भव्य ! यह मेरी पसंदकी चीज है। सिद्ध भी इसे पसंद करते हैं, मैं हूं सो यह है, यह है सो मैं हूं। इसलिए तुम इसे विश्वास करो। पसंद करो। निरीक्षण करो। यही मेरी आज्ञा है।

पहिले जितने भी सिद्ध मुक्त हुए हैं वे सब इसी आचरणसे मुक्त हुए हैं। और हमें व आगे होनेवाले सिद्धोंको भी यही मुक्तिका राजमार्ग है। यही पद्धति है। इस आज्ञाको तुम दृढताके साथ पालन करो।

हे भव्य! आत्मसिद्धिके लिए और एक कलाके ज्ञानकी आवश्यकता है। उसे भी जानलेना चाहिये। इस लोकमें कार्माणवर्गणायें [कर्मरूप बनने योग्य पुद्गल परमाणु] सर्वत्र भरी हुई हैं। उन पुद्गलपरमाणुरूपी समुद्रके बीचमें मछलियोंके समान यह असंख्यात जीव डुबकी लगा रहे हैं।

राग द्वेष, मोह आदियोंके द्वारा उन परमाणुवोंका आत्माके साथ संबंध होता है। परस्पर संबंध होकर वे ही कार्माणरज आठ कर्मोंके रूपको धारण करते हैं। उन कर्मोंके बंधनको तोडना सरल बात नहीं है।

उस बंधनको ढीला करनेके लिए यह आत्मा स्वयं ही समर्थ है। एक की गांठ दूसरा खोलकर छुडाना चाहे तो वह असंभव है। स्वयं स्वयंके आत्मापर मग्न होकर यदि उस गांठको खोलना चाहे तो आत्मा खोल सकता है। मैं तुम्हारी गांठको खोलता हूं यह जो कहा जाता है यहीं तो मोह है, उससे तो बंधन ढीला न होकर पुनः मजबूत हो जाता है। इसलिये किसीके बंधनको खोलनेके लिये, कोई जावें तो वह मोहके कारणसे उलटा बंधनसे बद्ध होता है। एक गांठको खोलनेके लिए जाकर वह तीन गांठसे बद्ध होता है। इसलिए विवेकियोंको उचित है कि वे कभी ऐसा प्रयत्न न करें। इसलिए आत्मकल्याणेच्छु भव्यको उचित है कि वह अनेक विषयोंको जानकर आत्मयोगमें स्थिर हो जावे, तभी उसे सुख मिल सकता है। अणुमात्र भी भाव कर्मोंको अपनाना उचित नहीं है, ध्यानमें मग्न होना ही आत्माका धर्म है। तुम भी ध्यानी बनो।

हे रविकीर्ति! तुम्हे, तुम्हारे सहोदरोंको, एवं तुम्हारे पिताको अब संसार दूर नहीं है। इसी भवमें मुक्तिकी प्राप्ति होगी। इस प्रकार आदि प्रभुने अपने अमृतवाणीसे फरमाया।

इस बातको सुनते ही रविकीर्तिके मुखमें हंसीकी रेखा उत्पन्न हुई, आनंदसे वह फूला न समाया। स्वामिन्! मेरे हृदयकी शंका दूर हुई, भक्तिका भेद अब ठीक समझमें आगया। आपके चरणोंके दर्शनसे मेरा जीवन सफल हुआ, इस प्रकार कहते हुए बडी भक्तिसे भगवंतके चरणोंमें साष्टांग नमस्कार किया व पुनः हर्षातिरेकसे कहने लगा कि भगवन्! मैं जीत गया, मैं जीतगया!!

चिद्रूपको जिन समझकर उपासना करना यह उत्तम भक्ति है। उस चिद्रूपको न देखकर इस क्षुद्रशरीरको ही जिन समझना यह कौनसी भक्ति है।

कदाचित् शिलामयमूर्तिको किसी अपेक्षासे जिन कह सकते हैं। शुद्धात्मकलाको तो जिन कहना ही चाहिये, मलपूर्ण शरीरको वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत कर उसे जिन कहना व पूजना वह तो मूर्खभक्ति है।

हंसमुद्राको पसंद करनेसे यह देहमुद्रा आत्मसिद्धिमें सहकारी होती है। हंसमुद्राको छोडकर देहमुद्राको ही ग्रहण करें तो उसका उपयोग क्या होसकता है? प्रभो! युक्तिरहित भक्तिकी हमें आवश्यकता नहीं है! हमें तो युक्तियुक्त भक्तिकी आवश्यकता है। वह युक्तियुक्तभक्ति अर्थात् मुक्तिपंथ आपके द्वारा व्यक्त हुआ। इसलिए आपकी भक्ति तो अलौकिक फलको प्रदान करनेवाली है। हम धन्य हैं!!

स्वामिन्! आपने पिताजीको [चक्रवर्ति] एक दफे इसी प्रकार तत्वोपदेश दिया था। उस समय उनके साथ मैं भी आया था। वह उपदेश अभीतक मेरे हृदयमें अंकित है। आज वह द्विगुणित हुआ। आज हम सब बुद्धिविक्रम बन गये। प्रभो! कर्मकर्दममें जो फंसे हुए हैं, उनको ऊपर उठाकर धर्मजलसे धोनेमें एवं उन्हें निर्मल करनेमें समर्थ आपके सिवाय दयानिधि दूसरे कौन हैं।

विषय [पंचेंद्रिय] के मदरूपी विषका वेग जिनको चढ जाता है, उनको तुषमषमात्र—बोधमंत्रसे जागृत कर विषको दूर करनेवाले एवं शांत करनेवाले आप परमनिर्विषरूप हैं।

आठकर्मरूपी आठ सर्पोंके गलेमें फसे हुए जीवोंको बचाकर उनको मुक्तिपथमें पहुंचानेवाले लोकबंधु आपके सिवाय दूसरे कौन हो सकते हैं।

भवरूपी समुद्रमें यमरूपी मगरके मुखमें जो हम फंसे हुए थे उनको उठाकर मोक्षपथमें लगानेमें दक्ष आप ही हैं। और कोई नहीं है।

स्वामिन्! हम बच गये। आपके पादकमलोंके दर्शनसे आत्मसिद्धिका मार्ग भी सरल हुआ है। इससे अधिकलाभकी हमें आवश्यकता नहीं है। अब हमारे मार्गको हम ही सोच लेते हैं।

तदनंतर रविकीर्तिने अपने भाईयोंसे कहा कि शत्रुंजय! महाजय! अरिंजय! आप सबने भगवंतके दिव्यवाक्यको सुन लिया? रतिवीर्य आदि सभी भाईयोंने सुना? तब उन भाईयोंने विनयसे कहा कि भाई! सुननेमें समर्थ आप हैं, आत्मसिद्धिको कहनेमें समर्थ महाप्रभु हैं। हम लोग सुनना क्या जाने, आप जो कहेंगे उसे हम सुनना जानते हैं। उससे अधिक हम कुछ भी नहीं जानते हैं। भाई! क्या ही अच्छा निरूपण हुआ। भगवंतका यह दिव्य तत्वोपदेश क्या, कर्मरूप भूमिके अंदर छिपी हुई परमात्मनिधिको दिखानेवाला यह दिव्यांजन है। वह परमात्माका दिव्यवाक्य क्या? देहकूपपापांधकारमें मग्न परमात्माके स्वरूपको दिखानेवाला रत्नदीप है। कलिलहर भगवंतका तत्वोपदेश क्या? भवरूपी संतापसे संतप्त प्राणियोंको गुलाबजलकी नदीके समान है। हमारे शरीरमें ही हमें परमात्माका दर्शन हुआ। अगाधभवसमुद्र हमें चुल्लूभर पानीके समान मालुम हो रहा है। भगवन्! हम अब इस फंदेमें पडे नहीं रह सकते हैं।

बडे भाई जिस प्रकार चलता है उसी प्रकार घरभरकी चाल होती है। इसलिए भाई! आप जो कहेंगे वही हमारा निश्चय है। हमारा उद्धार करो।

रविकीर्तिराजने कहा कि ठीक है। अब अपन सब कैलासनाथ प्रभुके हाथसे दीक्षा लेवें। यही आगेका मार्ग है। तब सबने एकस्वरसे सम्मति दी।

भगवंतकी पूजा कर नंतर दीक्षा लेंगे,इस विचारसे वे सबसे पहिले भगवंतकी पूजामें लवलीन हुए। इस प्रकार व्यवहार व निश्चयमार्गको जानकर वे भरतकुमार आगेकी तैयारी करने लगे।

वे सुकुमार धन्य हैं जिनके हृदयमें ऐसे बाल्यकालमें भी विरक्तिका उदय हुआ। ऐसे सुपुत्रोंको पानेवाले भरतेश्वर भी धन्य हैं जिनकी सदा इस प्रकार की भावना रहती है कि:—

" हे परमात्मन्! आप सकलविकल्पवर्जित हो! विश्वतत्व दीपक हो, दिव्यसुज्ञानस्वरूपी हो, अकलंक हो, त्रिभुवनके लिए दर्पणके समान हो, इसलिए मेरे हृदयमें सदा निवास करो।

हे सिद्धात्मन्! आप मोक्ष मार्ग हैं, मोक्षकारण हैं, साक्षात् मोक्षरूप हैं, मोक्षसुख हैं, मोक्षसंपत्स्रूप हैं। हे निरंजनसिद्ध! मुझे सन्मतिप्रदान कीजिये "

इसी भावनाका फल है कि उन्हे ऐसे लोकविजयी पुत्र प्राप्त होते हैं।

इति मोक्षमार्ग संधिः।

—x—

अथ दीक्षासंधिः।

भगवन्! भरतचक्रवर्तिके पुत्रोंके भव्यविनयका क्या वर्णन करूं? भगवंतके मुखसे प्रत्यक्ष उपदेशको सुननेपर भी दीक्षाकी याचना नहीं की। अपितु भगवंतकी पूजाके लिए वे तैयार हुए।

यद्यपि वे विवेकी इस बातको अच्छी तरह जानते थे कि भगवान् आदिप्रभु पूजाके भूखे नहीं हैं। तथापि मंगलार्थ उन्होंने पूजा की। अच्छे कार्यके प्रारंभमें पहिले मंगलाचरण करना आवश्यक है। इस व्यवहारको एकदम नहीं छोडना चाहिए। इसी विचारसे उन्होंने की।

कुछ मिनटोंमें ही वे स्नानकर पूजाके योग्य श्रृंगारसे युक्त नये एवं पूजासामग्री लेकर देवेंद्रकी अनुमतिसे पूजा करने लगे। कोई उनमें स्वयं

पूजा कर रहे हैं तो कोई पूजामें परिचारकवृत्तिका कार्य कर रहे हैं। अर्थात् सामग्री वगैरे तैयार कर दे रहे हैं। कोई उसीमें अनुमोदना देकर आनंदित हो रहे हैं। उनकी भक्तिका क्या वर्णन करें ?

ओंकारपूर्वक मंत्रोच्चारण करते हुए ह्रींकार, अर्हंकारके साथ हुंकार की सूचनासे जलपात्रके जलको झंकारके शद्बसे अर्पण करने लगे। दोनों हाथोंसे सुवर्णकलशको उठाकर मंत्रसाक्षीसे भगवंतके चरणोंमें जलधारा दें रहे हैं। उस समय वहां उपस्थित देवगण जयजयकार शद्ब कर रहे थे। सुरभेरी, शंख, वाद्य आदि लेकर साडेबारह करोड तरहके बाजे उस समय बजने लगे थे। विविध प्रकारसे उनके जब शद्ब हो रहे थे, मालूम हो रहा था कि समुद्रका ही घोष हो। गंधगजारि अर्थात् सिंहके ऊपर जो कमलासन था उसके सुगंधसे संयुक्त भगवंतके चरणोंमें उन भरतकुमारोंने दिव्यगंधका समर्पण किया जिस समय गंधर्व जातिके देव जयजयकार शद्ब कर रहे थे।

अक्षयमहिमासे युक्त, विमलाक्ष, विजिताक्ष श्री भगवंतके चरणोंमें जब उन्होंने भक्तिसे अक्षताका समर्पण किया तब सिद्धयक्षजातिके देव जयजयकार शद्ब कर रहे थे। पुष्पबाण कामदेवके समान सुंदर रूपको धारण करनेवाले वे कुमार कोटिसूर्यचंद्रोंके प्रकाशको धारण करनेवाले भगवंतको पुष्पका जब समर्पण कर रहे थे तब उनका वपुष्पुलकित [शरीररोमांच] हो रहा था अर्थात् अत्यधिक आनंदित होते थे। परसंगसे विरहित होकर आत्मानंदमें लीन होनेवाले भगवंतको वे अनुरागसे परमान्न नैवेद्यको नवीन सुवर्णपात्रसे समर्पण कर रहे हैं। सूर्यको दीपक दिखानेके समान तीनलोकके सूर्यकी कर्पूरदीपकसे आरति वे कुमार कर रहे हैं, उस समय आर्यजन जयजयकार कर रहे हैं। भगवंतको वे धूपका अर्पण कर रहे हैं। उस धूपका धूम कृष्णवर्ण विरहित कांतिसे युक्त होकर आकाशप्रदेशमें जिस समय जा रहा था, उस समय सुगंधसे युक्त इंद्रधनुषके समान मालूम हो रहा था। स्वामिन् !

विफल होनेवाला यह जन्म आपके दर्शनसे सफल भया। इसलिये कर्म-नाटक अफल हो, एवं मुक्ति सफल हो। इस प्रकार कहते हुए उत्तम फलको समर्पण करने लगे। उत्तम रत्नदीप, सुवर्ण व रत्ननिर्मित उत्तम-फलोंसे युक्त मेरुपर्वतके समान उन्नत अर्घ्यसे भगवंतकी पूजा की।

संतापको पानेवाले समस्त प्राणियोंके दुःखकी शांति हो इस विचारसे भगवंतके चरणोंमें शांतिधारा की। वह शांतिधारा नहीं थी, अपितु मुक्ति-कांताके साथ पाणिग्रहण होते समय कीजानेवाली जलधारा थी। एवं चांदी सोना आदिसे निर्मित उत्तमपुष्पोंसे भगवंतकी पुष्पांजलि की। साथ ही मोती, माणिक, नील, गोमेधिक हीरा, वैडूर्य, पुष्यराग आदि उत्तमोत्तमरत्नोंको भगवंतके चरणोंमें समर्पण किया।

अब वाद्यघोष [बाजेका शब्द] बंद हो गया। विद्यानंद वे कुमार प्रभुके सामने खडे होकर स्तुति करनेके लिए उद्युक्त हुए।

भगवन्! अद्य वयं सुखिनो भूम—
जयजय जातिजरातंक मृत्युसंचयदूर दुःखसंहार!
जयजय निश्चिंत शांत निर्लेप! भवदीय पावन चरण वर शरण
पापांधकारविद्रावण मदनदर्पापहरण भवमंथन!
कोपाग्नि शीतल जलधर! संसार संताप निवारक
कर्ममहारण्यदावाग्नि! दशविधधर्मोद्धार सुसार!
धर्माधर्मस्वरूपं दर्शय! कर्म निर्मूलसे निर्मल पदसारकर

हे महादेव! यह जगत् अत्यंत विशाल है। उस जगत्से भी विशाल आकाश है। उससे भी वढकर विशाल आपका ज्ञान है। आप की स्तुति हम क्या कर सकते हैं?

कल्पवृक्षसे प्राप्त दिव्यान्नके सुखसे भी वढकर निरुपम निजसुखको अनुभव करनेवाले आपको सामान्य वृक्षके फल व भक्ष्योंको हम अर्पण कर प्रसन्न होते हैं यही हम बालकोंकी चंचलभक्ति है।

स्वामिन् ! ध्यानमें आत्माके अंदर आपको लाकर भावशुद्धिके साथ ज्ञान-पूजा जबतक हम नहीं कर सकते हैं, तबतक आपकी इन फलोंसे पूजा करेंगे।

पुनः पुनः साष्टांग नमस्कार करते हुए हाथ जोडकर स्तुति करते हैं। भक्तिसे हर्षित होते हुए भगवंतकी प्रदक्षिणा दे रहे हैं।

हेमगिरीको प्रदक्षिणा देते हुए आनेवाली सोमसूर्यकी सेनाके समान वे हेमवर्णके कुमार भगवंतको प्रदक्षिणा दे रहे हैं, उनकी भक्तिका वर्णन क्या करना है ? । भगवंतकी शरीरकांति वहांपर सर्वत्र व्याप्त हो गई है। उस बीचमें ये कुमार जा रहे थे। मालुम हो रहा था कि ये कांतिके तीर्थमें ही जा रहे हैं।

अत्यंत ठण्डे धूपके मार्गमें चलनेके समान तथा ठण्डे प्रकाशको धारण करनेवाले दीपकके प्रकाशमें चलनेके समान वे कुमार वहांपर प्रदक्षिणा दे रहे हैं।

रत्नसुवर्णके द्वारा निर्मित गंधकुटिमें रत्नगर्भ वे कुमार जिनरत्नोंके बीच रत्नदीपके समान जा रहे हैं, उस शोभाका क्या वर्णन करें ?

जिनेंद्रभगवंतके सिंहासनके चारों ओर विराजमान हजारों केवलियोंकी वंदना करते हुए वे विनयरत्नकुमार रविकीर्तिराजको आगे रखकर जा रहे हैं, उनकी भक्तिका क्या वर्णन करें ?

उन केवलियोंमें अनेक केवली रविकीर्तिराजके पूर्वपरिचयके थे। इसलिये अपने भाईयोंको भी परिचय देनेके उद्देशसे रविकीर्ति कुमारने उनको इस क्रमसे नमोस्तु किया।

उन महायोगियोंके बीच सबसे पहिले एक योगिराजको रविकीर्ति राजने देखा, जो कि अपनी कांतिसे सूर्यचंद्रको भी तिरस्कृत कर रहे हैं। उनको देखकर कुमारने कहा कि ' मैं स्वामी अकंपकेवलीको नमस्कार करता हूं, सभी भाई उसी समय समझ गये कि यह वाराणसी राज्यके अधिपति राजा अकंप है। उन्होंने राज्यवैभवको त्यागकर तपश्चर्या की, व केवलज्ञानको प्राप्त किया। साथमें सबने अकंपकेवलीकी वंदना की।

युवराज अर्ककीर्तिको अपनी कन्या दी व राज्यको अपने पुत्रको दिया एवं स्वयं तपोराज्यके आश्रयमें आकर केवली हुए। धन्य है! इससे बढकर हमें दृष्टांतकी क्या आवश्यकता है! इस प्रकार विचार करते हुए वे कुमार आगे बढ रहे थे कि इतनेमें वहांपर उस जिनसमूहमें दो योगिराज देखनेमें आये। मालुम होता था कि स्वयं चंद्र और सूर्य ही जिनरूपको लेकर वहांपर उपस्थित हैं।

रविकीर्तिकुमारने कहा कि सोमप्रभ जिन जयवंत रहें। श्रेयांस-स्वामीको नमोस्तु। इस वचनसे वे सब कुमार इन केवलियोंसे परिचित हुए। हस्तिनापुरके राजा सोमप्रभ व श्रेयांस सहोदर हैं। उन्होंने अपनी सर्व राज्यसंपत्तिको मेघेश्वरके (जयकुमार) हवालाकर दीक्षा ली एवं आज इस वैभवको प्राप्त किया। जिन! जिन! धन्य है, जिनदीक्षा कोई सामान्य चीज नहीं है। वह तो लोकपावन है। इस प्रकार कहते हुए उन दोनों केवलियोंको भक्तिसे प्रणाम किया व आगे बढे! आगे बढनेपर अत्यंत कांतियुक्त दो केवलियोंका दर्शन हुआ। रविकीर्ति कुमारने कहा कि कच्छ व महाकच्छ जिनको मैं भक्तिसे वंदना करता हूं। ये तो दोनों चक्रवर्ति भरतके खास मामा हैं। और अपने राज्यसे मोहको त्यागकर यहां केवली हुए हैं, धन्य हैं, इस प्रकार विचार करते हुए वे आगे बढे। वहांपर उन्होंने जिस केवलीका दर्शन किया वह वहां उपस्थित सर्व केवलियोंसे शरीरसे हृष्टपुष्ट दीर्घकाय था, और सुंदर था, विशेष क्या, उस समयका कामदेव ही था। रत्नपर्वत ही आकर जिन रूपमें खडा हो इस प्रकार लोगोंको आश्चर्यमें डाल रहा था। रविकीर्ति राजने भक्तिसे कहा कि भगवान् बाहुबलि स्वामीके चरणोंमें नमस्कार हो। सर्व कुमारोंने आश्चर्य व भक्तिके साथ उनकी वंदना की।

आगे बढनेपर और भी अनेक केवली मिले, जिनमें इन कु... कई काका भी थे, जो भरतेशके सहोदर हैं। परन्तु हम न... तिको नमस्कार नहीं करेंगे, इस विचारसे अपने २ राज्यको

दीक्षित हुए। ऐसे सौ राजा हैं। उनमेंसे कईयोंको केवलज्ञानकी प्राप्ति हुई थी। उन केवलियोंकी उन्होंने भक्तिसे वंदना की। और मनमें विचार करते हुए आगे बढे कि जब हमारे इस पितृसमुदायने दीक्षा लेकर कर्मनाश किया तो क्या हमारा कर्तव्य नहीं है कि हम भी उनके समान ही होवें ?।

अंदरके लक्ष्मीमंडपमें आनंदके साथ तीन प्रदक्षिणा देकर बाहरके लक्ष्मी मंडपमें आये। वहांपर १२ सभाओंकी व्यवस्था है। वहांपर सबसे पहिली सभा आचार्यसभा कहलाती हैं। वे कुमार बहुत आनंदके साथ उस सभामें प्रविष्ट हुए। उस ऋषिकोष्ठकमें हजारों मुनिजन हैं। तथापि उनमें ८४ मुख्य हैं, वे गणनायक कहलाते हैं। उनमें भी मुख्य वृषभसेन नामक गणधर थे, उनको कुमारोंने बहुत भक्तिके साथ नमस्कार किया। सार्वभौम चक्रवर्ति भरतके तो वे छोटे भाई हैं, परन्तु शेष सौ अनुजोंके लिए तो बडे भाई हैं। और सर्वज्ञ भगवान् आदि प्रभुके वे प्रधान मंत्री हैं, ऐसे अपूर्वयोगी वृषभसेन गणधरको उन्होंने भक्तिपूर्वक नमस्कार किया। वहांपर उपस्थित गणधरोंको क्रमसे नमस्कार करते हुए वे कुमार आगे बढे। इतनेमें वहांपर उन्होंने अनेक तत्वचर्चामें चित्त विशुद्धि करनेवाले २१ वें गणधरको देखा। उनके सामने वे कुमार खडे होकर कहने लगे कि हे मेघेश्वरयोगि! आप विचित्र महापुरुष हैं, आप जयवंत रहे! इसी प्रकार विजय, जयंतयोगी जो मेघेश्वर [जयकुमार] के सहोदर हैं, की भी भक्तिसे वंदना की, और कहने लगे कि दीक्षाकार्यका दिग्विजय हमें हो गया। अब हमारा निश्चय होगया है। उस समय वे कुमार आनंदसे फूले न समा रहे थे।

मुनि समुदायकी वंदना कर वे कुमार अनिमिषराज देवेंद्रके पास आये व बहुत विनयके साथ उन्होंने अपने अनुभवको देवेंद्रसे व्यक्त किया। देवराज! हमारे निवेदनको सुनो, उन कुमारोंने प्रार्थना की " आप अपने स्वामीसे निवेदन कर हमें दीक्षा दिलावें, इससे तुम्हें

सातिशय पुण्य मिलेगा। वह पुण्य आगे तुम्हे मुक्ति दिला देगा, हम लोगोंने भगवंतका कभी दर्शन नहीं किया, उनसे दीक्षाके लिए विनंती करनेका क्रम भी हमें मालुम नहीं है। इसलिए हे ऊर्ध्वलोकके अधिपति! मौनसे हमें देखते हुए क्यों खडे हो! चलो, प्रभुको कहो "। तब देवेंद्रने उत्तर दिया कि कुमार! आप लोगोंका अनुभव, विचार, परमात्माके ज्ञानको भरपूर व्यक्त कर रहा है। इसलिए मुझे आप लोग क्यों पूछ रहे हैं। आप लोग जो भी करेंगे उसमें मेरी सम्मति है। जाईयेगा। तदनंतर वे कुमार वहांसे आगे बढे, और गणधरोंके अधिपति वृषभसेनाचार्यको पुनश्च वंदनाकर कहने लगे कि मुनिनाथ! कृपया जिननाथसे हमें दीक्षा दिलाईये, तब वृषभसेनस्वामीने कहा कि कुमार! आप लोगोंका पुण्य ही आप लोगोंके साथमें आकर दीक्षा दिला रहा है, फिर आप लोग इधर उधरकी अपेक्षा क्यों करते हैं। जावो, आप लोग स्वयं त्रिलोकपतिसे दीक्षाकी याचना करना, वे बराबर दीक्षा देंगे। साथमें यह भी कहा कि हमारी अनुमति है, वही यहां द्वादशगणको भी सम्मत है, लोकके लिए पुण्यकारण है, आप लोग जावो, अपना काम करो। इस प्रकार कहकर गणनायक वृषभसेनाचार्यने उनको आगे रवाना किया। गणकी अनुमतिसे आगे बढकर वे भगवान् आदिप्रभुके सामने खडे हुए व करबद्ध होकर विनयसे प्रार्थना करने लगे हे फणिसुरनरलोकगतिके एवं विश्वके समस्तजीवोंको रक्षण करनेवाले हे प्रभो! हमारे निवेदनकी ओर अनुग्रह कीजिये।

भगवन्! अनादिकालसे इस भयंकर भवसागरमें फिरते फिरते थक गये हैं। हैरान होगये। अब हमारे कष्टोंको अर्ज करनेके लिए आप दयानिधिके पास आये हैं। स्वामिन्! आपके दर्शनके पहिले हम बहुत दुःखी थे। परंतु आपके दर्शन होनेके बाद हमें कोई दुःख नहीं रहा। इस बातको हम अच्छीतरह जानते हैं। इसलिए हमारी प्रार्थनाको अवश्य सुननेकी कृपा करें।

भगवन् ! कालको भगाकर, कामको लात मारकर, दुष्कर्मजालको नष्ट कर, हम मुक्तिराज्यकी ओर जाना चाहते हैं। इसलिए हमें जिन-दीक्षाको प्रदान करें। दीक्षा देनेपर मनको दंडितकर आत्मामें रक्खेंगे एवं ध्यान दंडसे कर्मोंको खंड खंडकर दिखायेंगे आप देखिये तो सही। अर्हन् ! हम गरीब व छोटे जरूर हैं, परन्तु आपकी दीक्षाको हस्तगत करनेके बाद हमारे बराबरी करनेवाले लोकमें कौन हैं ? उसे बातोंसे क्यों बताना चाहिए। आप दीक्षा दीजिये, तदनंतर देखिये हम क्या करते हैं ?।

प्रभो ! इस आत्मप्रदेशमें व्याप्त कर्मोंको जलाकर कोटिसूर्यचंद्रोंके प्रकाशको पाकर, यदि आपके समान लोकमें हम लोकपूजित न बनें तो आपके पुत्रके पुत्र हम कैसे कहला सकते हैं ? जरा देखिये तो सही।

हमारे पिता छह खंडके विजयी हुए। हमारे दादा [आदिप्रभु] त्रेसठ कर्मोंके विजयी हुए। फिर हमें तीन लोकके कर्मकी क्या परवाह है। आप दीक्षा दीजिये, फिर देखिये। भगवन् ! मोक्षके लिए ध्यानकी परम आवश्यकता है। ध्यानके लिए जिनदीक्षा ही बाह्यसाधन है। इसलिए " स्वामिन् ! दीक्षां देहि ! दीक्षां देहि ! " इस प्रकार कहते हुए सबने साष्टांग नमस्कार किया।

भक्तिसे बद्ध दीर्घबाहु, विस्तारित पाद, भूमिको स्पर्श करते हुए ललाट प्रदेश, एकाग्रतासे जगदीशके सामने पडे हुए वे कुमार उस समय सोनेकी पुतलीके समान मालुम होते थे।

" अस्तु भव्याः समुत्तिष्ठत " आदिप्रभुने निरूपण किया। तब वे कुमार उठकर खडे हुए। वहां उपस्थित असंख्य देवगण जयजयकार करने लगे। देवदुंदुभि बजने लगी। देवांगनायें मंगलगान करने लगीं। समयको जानकर वृषभसेनयोगी व देवेंद्र वहांपर उपस्थित हुए। नील-रत्नकी फरसीके ऊपर मोतीकी अक्षतावोंसे निर्मित स्वस्तिकके ऊपर उन सौ कुमारोंको पूर्व व उत्तरमुखसे बैठाल दिया, वे बहुत आतुरताके साथ

वहां बैठ गये। उनके हाथमें रत्नत्रययंत्रको स्वस्तिकके ऊपर रखकर उसके ऊपर पुष्पफलाक्षतादि मंगलद्रव्योंको विन्यस्त किया, इतनेमें हल्ला गुल्ला बंद होगया, अब दीक्षाविधि होनेवाली है। वे सुकुमार भगवान्के प्रति ही बहुत भक्तिसे देख रहे थे। इतनेमें मेघपटलसे जिस प्रकार जल बरसता है उसी प्रकार भगवंतके मुखकमलसे दिव्यध्वनिका उदय हुआ।

वे कुमार भवके मूल, भवनाशके मूल कारण एवं मोक्षसिद्धिके साध्यसाधनको कान देकर सुन रहे थे, भगवान् विस्तारसे निरूपण कर रहे थे। हे भव्य! मोक्षमार्गसंधिमें विस्तारसे जिसका कथन किया जा चुका है, वही मोक्षका उपाय है। परिग्रहका सर्वथा त्याग करना ही जिनदीक्षा है। बाह्यपरिग्रह दस प्रकारके हैं। अंतरंग परिग्रह चौदह प्रकारके हैं। ये चौवीस परिग्रह आत्माके साथ लगे हुए हैं। इन चौवीस परिग्रहोंका परित्याग करना ही जिनदीक्षा है। क्षेत्र, वास्तु, धन, धान्य, हिरण्य, सुवर्ण, दासी दास, पशु, वस्त्र, बरतन इन बाह्य परिग्रहोंसे मोहका त्याग करना चाहिए। इसी प्रकार रागद्वेष मोह हास्यादिक चौदह अंतरंग परिग्रहोंका भी त्याग करना चाहिए। जो अत्यंत दरिद्र हैं उनके पास बाह्यपरिग्रह कुछ भी नहीं रहते हैं, तथापि अंतरंग परिग्रहोंको त्याग किये विना कोई उपयोग नहीं है। अंतरंग परिग्रहोंके त्याग करनेपर कर्म भी आत्माका त्याग करता है। इसलिए बाह्य परिग्रहका त्याग ही त्याग है, ऐसा न समझना चाहिए। बाह्य-परिग्रहके त्यागसे जो आत्मविशुद्धि होती है, उसके बलसे अंतरंग मोह रागादिकका परित्याग करें जिससे ध्यानकी व सुखकी सिद्धि होती है।

इस आत्मासे शरीरकी भिन्नता है, इस बातको दृढ करनेके लिए मुनिको केशलोच व इंद्रियोंके दमनके लिए एकभुक्तिकी आवश्यकता है। शरीरशुद्धिके लिए कमंडलु व जीवरक्षाके लिए पिंछकी आवश्यकता है। एवं अपने ज्ञानकी वृद्धिके लिए आचारसूत्रकी आवश्यकता है। यह योगियोंके उपकरण हैं।

शास्त्रोंमें वर्णित मूलगुण, उत्तरगुणादि ध्यानके लिए बाह्य सहकारि हैं। यह सब ध्यानकी सिद्धिके लिए आवश्यक हैं।

इस प्रकार गंभीरनिनादसे निरूपण करते हुए भगवंतने यह भी कहा कि अब अधिक उपदेशकी जरूरत नहीं है। अब अपने शरीरके अलंकारोंका परित्याग कीजिये। राजवेषको छोडकर तापसी वेषको ग्रहण कीजिए।

सर्व पुत्रोंने 'इच्छामि, इच्छामि' कहते हुए हाथके फलाक्षतको भगवंतके पादमूलमें अर्पण करनेके लिए पासमें खडे हुए देवोंके हाथमें दे दिया। अपने शरीरके वस्त्रको उन्होंने उतारकर फेंका। इसी प्रकार कंठहार, कर्णाभरण, सुवर्णमुद्रिका, कटीसूत्र, रत्नमुद्रिका आदि सर्वाभरणोंको उतार दिया। तिलक, यज्ञोपवीत, आदिका भी त्याग किया। यह विचार करते हुए कि हम कौन हैं यह शरीर कौन है, अपने केशपाशको अपने हाथसे लुंचन करते हुए वहां रखने लगे। वे केशपाशको संक्लेशपाश, दुर्मोहपाश, आशापाश व मायापाशके समान फाडने लगे। विशेष क्या? जन्मके समयके समान वे जातरूपधर बने। शरीरका आवरण दूर होते ही शरीरमें नवीन कांति उत्पन्न होगई। जिस प्रकार कि माणिकको जलानेपर उसमें रंग चढता है।

कांति व शांति दोनोंमें वे कुमार जातरूपधर बने। कांति अब तो पहिलेसे भी बहुत बढ गई है। वे बहुत ही भाग्यशाली हैं।

भगवान् आदिप्रभु दीक्षागुरु हैं। कैलासपर्वत दीक्षाक्षेत्र है। देवेंद्र व गणधर दीक्षाकार्यमें सहायक हैं। ऐसा वैभव लोकमें किसे प्राप्त होसकता है।

स्वस्तिकके ऊपरसे उठकर सभी कुमार आदिप्रभुके चरणोंमें पहुंचे व भक्तिसे नमस्कार करने लगे, तब वीतरागने आशिर्वाद दिया कि 'आत्मसिद्धिरेवास्तु'। इस समय देवगण आकाश प्रदेशमें खडे होकर पुष्पवृष्टि करने लगे। एवं जयजयकार करने लगे। इसी समय करोडों बाजे बजने लगे। एवं मंगलगान करने लगे। वृषभसेन गणधरने

उपकरणोंको वृषभनाथ स्वामीके सामने रखा तो नूतन ऋषियोंने वृषभनाथाय नमः स्वाहा कहते हुए ग्रहण किया। उनके हाथमें पिंछ तो बिजलीके गुच्छके समान मालुम होरहे थे। इसी प्रकार स्फटिकके द्वारा निर्मित कमंडलुको भी उन्होंने ग्रहण किया। एवं बालवयके वे सौ मुनि वहांसे आगे बढे। वृषभसेनाचार्यके साथ वे जब आगे बढ रहे थे, तब वहां सभी जयजयकार करने लगे। मालुम हो रहा था कि समुद्र ही उमडकर घोषित कर रहा हो।

'रविकीर्ति योगी आवो, गजसिंहयोगी आवो, दिग्विजेंद्रयोगी आवो' इस प्रकार कहते हुए योगिजन उनको अपनी सभामें बुला रहे थे। उन्होंने भी उनके बीचमें आसन ग्रहण किया। देवेंद्र शची महादेवीके साथ आये व उन्होंने उन नूतनयोगियोंको बहुत भक्तिके साथ नमस्कार किया। उन योगियोंने भी "धर्मवृद्धिरस्तु" कहा। देवेंद्र भी मनमें यह कहते हुए गया कि स्वामिन्! आप लोगोंके आशिर्वादसे वृद्धिमें कोई अंतर नहीं होगा। अवश्य इसकी सिद्धि होगी। इसी प्रकार यक्ष, सुर, गरुड, गंधर्व, नक्षत्र, देव, मनुष्य आदि सबने आकर उन योगियोंको नमस्कार किया।

मुनिकुमारोंने जिन वस्त्राभरण केश आदिका परित्याग किया था उनको देवगणोंने बहुत वैभवके साथ समुद्रमें पहुंचाया जाते समय उनके वैराग्यकी भूरि भूरि प्रशंसा हो रही थी।

बाल्यकालमें सौंदर्ययुक्त शरीरको पाकर एकदम मोहका परित्याग करनेवाले कौन हैं? इस प्रकार जगह जगह खडे हुए देवगण प्रशंसा कर रहे थे।

हजार सुवर्णमुद्रा मिली तो बस, खर्चकर खाकर मरते हैं, परंतु संसार नहीं छोडते हैं। भूवलयको एक छत्राधिपत्यसे पालनेवाले सम्राट्के पुत्र इस प्रकार परिग्रहग्रहोंका परित्याग करें, यह क्या कम बात है?

मूछें सफेद होजाय तो उसे कलप वगैरे लगाकर पुनः काले दिखानेका लोगोंको शौक रहता है। परंतु अच्छी तरह मूछ आनेके पहिले ही संसारको छोडनेवाले अतिथि इन कुमारोंके समान दूसरे कौन हो सकते हैं।

दांत न हों तो तांबूलको खलबत्तेमें कूटकर तो जरूर खाते हैं। परंतु छोडते नहीं हैं। इन कुमारोंने इस बाल्य अवस्थामें संसारका परित्याग किया। आश्चर्य है!

अपने विकृत शरीरको तेल साबून, अत्तर वगैरेसे मलकर सुंदर बनानेके लिए प्रयत्न करनेवाले लोकमें बहुत हैं। परंतु सातिशय सौंदर्यको धारण करनेवाले शरीरोंको तपको प्रदान करनेवाले इन कुमारोंके समान लोकमें कितने हैं?

काले शरीरको पावडर मलकर सफेद करनेके लिए प्रयत्न करनेवाले लोकमें बहुत हैं। परंतु पुरुष भी मोहित हों ऐसे शरीरको धारण करनेवाले इन कुमारोंके समान दीक्षा लेनेवाले कौन हैं?

भरतचक्रवर्तिकी सेवा करनेका भाग्य मिले तो उससे बढकर दूसरा पुण्य नहीं है ऐसा समझनेवाले लोकमें बहुत हैं। परंतु खास भरतचक्रवर्तिके पुत्र होकर संपत्तिसे तिरस्कार करें, यह आश्चर्यकी बात है।

इन कुमारोंकी मोक्षप्राप्तिमें क्या कठिनता है? यह जरूर जल्दी ही मोक्षधाममें पधारेंगे इत्यादि प्रकारसे वहांपर देवगण उन कुमारोंकी प्रशंसा कर रहे थे, ये दीक्षित कुमार आत्मयोगमें मग्न थे।

भरतचक्रवर्ति महान् भाग्यशाली हैं। अखंडसाम्राज्यके अतुल वैभवको भोगते हुए सम्राट्को तिलमात्र भी चिंता या दुःख नहीं है। कारण वे सदा वस्तुस्वरूपको विचार करते रहते हैं। उनके कुमार भी पिताके समान ही परमभाग्यशाली हैं। नहीं तो, उद्यानवनमें क्रीडाके लिए पहुंचते क्या? वहींसे समवसरणमें जाते क्या! वहां तीर्थंकरयोगीके हस्तसे

दीक्षा लेते क्या ! यह सब अजब बातें हैं । इस प्रकारका योग बडे पुण्यशालियोंको ही प्राप्त होता है । भरतेश्वरने अनेक भवोंसे सातिशय पुण्यको अर्जन किया है । वे सदा चिंतवन करते हैं कि,

" हे चिदंबरपुरुष ! आप आगे पीछे, दाहिने बांए, बाहर अंदर; ऊपर नीचे आदि भेदविरहित होकर अमृतस्वरूप हैं । इसलिए हे सच्चिदानंद ! मेरे चित्तमें सदा निवास कीजिए ।

हे सिद्धात्मन् ! आप स्वच्छ प्रकाशके तीर्थस्वरूप हैं चांदनीसे निर्मित बिंबके समान हो, इसलिए मुझे सदा सन्मति प्रदान कीजिए ।

इति दीक्षासंधिः ।

—०—

अथ कुमारवियोग संधिः ।

भरतके सौ कुमार दीक्षित हुए । तदनंतर उनके सेवक बहुत दुःखके साथ वहांसे लौटे । उस समय उनको इतना दुःख हो रहा था कि जैसे किसी व्यापारीको समुद्रमें अपनी मालभरी जहाजके डूबनेसे दुःख होता हो । वह जिस प्रकार जहाजके डूबनेपर दुःखसे अपने गामको लौटता है, उसी प्रकार वे सेवक अत्यंत दुःखसे अयोध्याकी ओर जा रहे हैं । कैलासपर्वतसे नीचे उतरते ही उनका दुःख उद्रिक्त हो उठा । रास्तेमें मिलनेवाले अनेक ग्रामवासी उनको पूछ रहे हैं, ये सेवक दुःखभरी आवाजसे रोते रोते अपने स्वामियोंके वृत्तांतको कह रहे हैं । किसी प्रकार स्वयं रोते हुए सबको रुलाते हुए चक्रवर्तिके नगरकी ओर वे सेवक आये ।

रविकीर्ति राजकुमारका सेवक अरविंद है । उसे ही सबने आगे किया । बाकी सब उसके पीछे २ चल रहे हैं । वे दुःखसे चलते समय पतियोंको खोए हुए ब्राह्मणालियोंके समान मालुम हो रहे थे । कला-

रहित चेहरा, पट्टुत्वरहित चाल, प्रवाहित अश्रु, मौनमुद्रासे युक्त मुख व उत्तरीय वस्त्रसे ढके हुए मस्तकसे युक्त होकर वे बहुत दुःखके साथ नगरमें प्रवेश कर रहे हैं। उनके बगलमें उन कुमारोंके पुस्तक, आयुध, वीणा वगैरे हैं। नगरवासी, जन आगे बढकर पूछ रहे हैं कि राजकुमार कहां हैं? तो ये सेवक मूक बनकर जा रहे हैं। बुद्धिमान् लोग समझ गये कि राजकुमार सबके सब दीक्षा लेकर चले गये। वह कैसे? इनके हाथमें जो खड्ग, कठारी, वीणा, वगैरे हैं, ये ही तो इस बातके लिए साक्षी हैं। नहीं तो ये सेवक तो अपने स्वामियोंको छोडकर कभी वापिस नहीं आ सकते हैं। हमारे सम्राट्के सुपुत्रोंको परबाधा भी नहीं है अर्थात् शत्रुओंको अस्त्रशस्त्रादिकसे उनका अपमरण नहीं हो सकता है। क्योंकि वे मोक्षगामी हैं। इनकी मुखमुद्रा ही कह रही है कि कुमारोंने दीक्षा ली है। सब लोगोंने इसी बातका निश्चय किया। कोई इस बातमें सम्मत हैं। कोई असम्मत हैं। तथापि सबने यह निश्चय किया, जब कि ये सेवक हमसे नहीं कहते हैं तो राजा भरतसे तो जरूर कहेंगे। चलो, हम वहींपर सुनेंगे। इस प्रकार कहते हुए सर्व नगरवासी उनके पीछे लगे।

उस समय चक्रवर्ति भरत एकदम बाहरके दीवानखानेमें बैठे हुए थे। उस समय सेवकोंने पहुंचकर अपने हाथके कठारी, खड्ग, वीणादिकको चक्रवर्तिके सामने रखा व साष्टांग नमस्कार किया।

वहां उपस्थित सभा आश्चर्यचकित हुई। सम्राट् भरत भी आश्चर्य दृष्टिसे देखने लगे। आंसुओंसे भरी हुई आंखोंको लेकर वे सेवक उठे। उपस्थित सर्वजन स्तब्ध हुए। हाथ जोडकर सेवकोंने प्रार्थना की कि स्वामिन्! श्रीसंपन्न सौ कुमार दीक्षा लेकर चले गये।

इस बातको सुनते ही चक्रवर्तिके हृदयमें एकदम आघातसा होगया। वे अवाक् हुए, हाथका तांबूल नीचे गिर पडा। उस दरबारमें उपस्थित सर्व जन जोर जोरसे रोने लगे। तब सम्राट्ने हाथसे इशारा

कर सबको रोक दिया व अरविंदसे पुनः पूछने लगे। "क्या सच-मुचमें गये ? अरविंद! बोलो तो सही!"। अरविंदने उत्तरमें निवेदन किया कि स्वामिन्! हम लोग अपनी आंखोंसे कैलासपर्वतमें दीक्षा लेते हुए देखकर आये। उन्होंने दीक्षा ली, इतना ही नहीं, देवेंद्रके नमस्कार करने पर 'धर्मवृद्धिरस्तु' यह आशिर्वाद भी दिया।

देखते देखते बच्चोंके दीक्षा लेनेके समाचारको सुनकर सम्राट्का मुख एकदम मलिन हुआ, बोली बंद होगई। हृदय एकदम उडने लगा। दुःख का उद्रेक हो उठा।

नाकके ऊपर उंगली रखकर, मकुटको हिलाकर एक दीर्घ निश्वासको छोडा। उसी समय आंखोंसे आंसू भी उमड पडा, दुःखका वेग वढने लगा, उसे फिर भरतेश्वरने शांत करनेका यत्न किया। तुरंत मूर्च्छा आ रही थी, उसे भी रोकनेका यत्न किया। पुत्रोंका मोह जरूर दुःख उत्पन्न करता है। परन्तु हाथसे निकलनेके बाद अब क्या कर सकते हैं ! अधिक दुःख करना यह विवेकशून्यता है। इस प्रकार विचार करते हुए उस दुःखको शांत करनेका यत्न किया। पहिले एक दफे आंखोंसे आंसू जरूर आया, फिर चित्तके स्थैर्यसे उसे रोक दिया। हृदयमें शोकाग्नि प्रज्वालित हो रही थी, परंतु शांतिजलसे उसे बुझाने लगे। भरतेश्वर उस समय विचार करने लगे कि आपत्तिके समय धैर्य, शोकानलके उद्रेकके समय विवेक व शांति, त्यक्त पदार्थोंमें हेयता, गृहीत विषयोंमें दृढता रहनी चाहिए, यही श्रेष्ठ-मनुष्यका कर्तव्य है। शरीर भिन्न है, आत्मा भिन्न है, इस प्रकार भावना करनेवाले भावुकोंको स्वप्न में भी भ्रांतिका उदय नहीं हो सकता, यदि कदाचित् आवे तो उसी समय दूर हो जाती है। आत्मवेदीके पास दुःख जाते ही नहीं हैं। यदि उनके पास दुःख पहुंचा तो आत्माके दर्शन मात्रसे वह दुःख दूर भाग जाता है। आत्मभावनाके सामने अज्ञान क्या टिक सकता है ! क्या गरुडके सामने सर्प टिक सकता है !

हृदयमें व्याप्त मोहांधकारको सुज्ञानसूर्यकी सामर्थ्यसे सम्राट्ने दूर किया एवं एक दो घडीके बाद हृदयको सांत्वना देकर फिर बोलने लगे।

जिन ! जिन ! जिन सिद्ध ! उनके साहसको गुरु हंसनाथ ही जानते हैं। क्या उनकी यह दीक्षा लेनेकी अवस्था है ? यह क्या दीक्षोचित दिन है ? आश्चर्य है। कोमल मूछें अभी बढी भी नहीं हैं। अंगके सर्व अवयव अभी पूर्ण भी नहीं हुए हैं। अभी जवान होने ही लगे हैं। इतनेमें ऐसा हुआ ? इन लोगोंने माताके हाथका भोजन किया है। अभीतक अपनी स्त्रियोंके हाथका भोजन नहीं किया है। उमरमें आगये हैं। अब शादी करनेके विचारमें ही था। इतनेमें ऐसा हुआ। आश्चर्य है। अपने भाईयोंके साथ ही खेल कूदमें इन्होंने दिन बिताया, अपनी बाईयोंके साथ एक रात भी नहीं बिताया। इनका विवाह कर अपनी आंखोंको तृप्त करनेके विचारमें था, इतनेमें ऐसा हुआ। आश्चर्य है। सुजयको छोडकर सुकांत नहीं रहता था। रिपुविजयके साथ हमेशा महाजयकुमार रहता था, इस प्रकार अनेक प्रकारसे अपने पुत्रोंका स्मरण करने लगे वीरंजय व शत्रुवीर्य, रतिवीर्य व रविकीर्ति पराक्रममें एकसे एक बढकर थे। उनके सदृश कौन हैं ? इस प्रकार अपने पुत्रोंका गुणस्मरण करने लगे। हाथीके सवारीमें राजमार्तंड, और घोडेकी सवारीमें विक्रमांक, और राजमंदर हाथी घोडे दोनोंकी सवारीमें श्रेष्ठ था। रथमें रत्नरथ, और पद्मरथकी बराबरी करनेवाले कौन हैं ? पृथ्वीमें मेरे पुत्र सर्वश्रेष्ठ हैं, ऐसा मैं समझ रहा था। परन्तु वे एक कथा बनाकर चले गये। अनेक व्रतविधानोंको आचरणकर, बच्चोंकी अपेक्षासे पंचनमस्कारमंत्रको जपते हुए आनंदके साथ जिन माताओंने उनको जन्म दिया, उनके दिलको शांतकर चले गये। आश्चर्य है ! रात्रिंदिन अर्हत-देवकी आराधना कर, योगियोंकी पादपूजाकर जिन स्त्रियोंने पुत्र होनेकी हार्दिक कामना की, उनके हृदयको शांत किया ! हा ! इन स्त्रियोंके उपवास, व्रत आदिके प्रभावको सूचित करनेके लिए ही मानो ये पुत्र

भी शीघ्र ही चले गये। आश्चर्य! अति आश्चर्य!! उनका व्रत अच्छा हुआ। व्रतोंके फलसे योग्य पुत्र उत्पन्न हुए। परन्तु उन व्रतोंका फल माताओंको नहीं मिला, अपितु संतानको मिला, आश्चर्य है! स्त्रियोंके साथ संसारकर बादमें दीक्षा लेना उचित था, परंतु जब इन लोगोंने ऐसा न कर बाल्यकालमें ही दीक्षा ली तो कहना पडता है कि कहीं मातओंने दूध पिलाते समय ऐसा आशिर्वाद तो नहीं दिया कि तुम बाल्य कालमें ही समवसरणमें प्रवेश करो!

यह मेरे पुत्रोंका दोष नहीं है। मैंने पूर्वभवमें जो कर्मोपार्जन किया है उसीका यह फल है। इसलिए व्यर्थ दुःख क्यों करना चाहिये? इस प्रकार विचार करते हुए अरविंदसे सम्राट्ने कहा! हे अरविंद! तुम अभी आकर मुझे कह रहे हो! पहिलेसे आकर कहना चाहिये था! ऐसा क्यों नहीं किया? उत्तरमें अरविंदने निवेदन किया कि स्वामिन्! हम लोग पहिले यहांपर कैसे आ सकते थे? हम लोगोंको वे किस चातुर्य से कैलासपर ले गये? उसे भी जरा सुननेकी कृपा कीजियेगा। "हमलोग पीछे रहे तो कहीं जाकर पिताजीको कहेंगे इस विचारसे हमलोगोंको बुलाकर आगे रक्खा, वे हमारे पीछेसे आ रहे थे" अरविंदने रोते रोते कहा! 'कहीं पार्श्वभागसे निकल गये तो पिताजीको जाकर कहेंगे इस विचारसे हमें उन सबके बीचमें रखकर चला रहे थे। हमारी चारों ओरसे हमें उन्होंने घेर लिया था" अरविंदने आंसू बहाते हुए कहा! "स्वामिन्! हम लोगोंने निश्चय किया कि आज तपश्चर्या करनेवालोंके साथ हम क्यों जावें? हम वापिस फिरने लगे तो हमें हाथ पकडकर खींच ले गये। बडे प्रेमसे हमारे साथ बोलने लगे। अपने हाथके आभरणको निकालकर हमारे हाथमें पहनाते हैं, और कहते हैं कि तुम्हें दे दिया, इस प्रकार जैसा बने तैसा हमें प्रसन्न करनेका यत्न करते हैं। हमारे साथ बहुत नरमाईसे बोलते हैं। कोप नहीं करते हैं। हमारी हालतको

देखकर हंसते हैं। अपनी बातको कहकर आगे बढते हैं। राजन्! हम सब सेवकोंके मुख दुःखसे काले होगये थे। परन्तु आश्चर्य है कि उन सबके मुख हर्षयुक्त होकर कांतिमान् हो रहे थे। ' स्वामिन्! इस बचपनमें ही आप लोग क्यों दीक्षा लेते हैं? कुछ दिन ठहर जाईये! इस प्रकार प्रार्थना करनेपर उस बातको भुलाकर दूसरे ही प्रसंगको छेड देते हैं व हमें धीरे २ आगे ले जाते हैं। हे सुरसेन! वरसेन! पुष्पक, करुविंद! आवो इत्यादि प्रकारसे हमें बुलाकर, एक कहानी कहेंगे, उसे सुनो इत्यादि रूपसे बोलते हुए जाते हैं। राजन्! उनके तंत्रको तो देखो! हे राम! रंजक! रत्न! सोम! होमल! होम! भीम! भीमांक! इत्यादि नाम लेकर हमें बुलाते थे। एवं कोई प्रसंग बोलते हुए हमें आगे ले जा रहे थे। और एक दूसरेको कहते थे कि भाई! तुम्हारा सेवक सुमुख बहुत अच्छा है। उसे सुनकर दूसरा भाई कहता था कि सभी सेवक अच्छे हैं। इस प्रकार हमारी प्रशंसा करने लगे थे। स्वामिन्! आपके सुकुमार हमसे कभी एक दो बातोंसे अधिक बोलते ही नहीं थे। परंतु आज न मालुम क्यों अगणित वाक्य बोल रहे थे। हम लोग उनके तंत्रको नहीं समझते थे, यह बात नहीं! जानकर भी हम क्या कर सकते थे? मालिकोंके कार्यमें हम लोग कैसे विघ्न कर सकते थे? सामने जो प्रजायें मिल रही थीं उनसे कहीं हम इनके मनकी बात कहेंगे इस विचारसे उन्होंने हमको कहा कि तुम लोगोंको पिताजीका शपथ है, किसीसे नहीं कहना। सो हम लोग मुंह बंदकर कैदियोंके समान जा रहे थे। स्वामिन्! सचमुचमें हम लोग यह सोच रहे थे कि चलो हमे क्या? भगवान् आदिप्रभु इन बच्चोंको दीक्षा क्यों देंगे। समझा बुझाकर इनको वापिस भेज देंगे। इसी भावनासे हम लोग गये। राजन्! आश्चर्य है कि भगवान्ने उन कुमारोंके इष्टकी ही पूर्ति कर दी!

हम लोग परमपापी हैं। स्वामिन्! हम परमपापी हैं। इस प्रकार कहते हुए रविकीर्तिसे वियुक्त अरविंद रविसे वियुक्त अरविंदके समान रोने

लगा। रोते २ अपने साथियोंकी ओर देखता है, वे सब ही रो रहे थे। सम्राट्ने कहा कि आप लोग इतना दुःख क्यों करते हैं ? शांत हो जावो। उत्तरमें उन्होंने कहा कि स्वामिन् ! जन्मदाताओंको भुलाते हुए हमारा उन्होंने पालन किया। हमारे मनकी इच्छाको पूर्ति करते हुए सदा पोषण किया। लोकमें सर्वश्रेष्ठ हमारे स्वामी जब इस प्रकार हमें छोडकर चले गये तो दुःख कैसे रुक सकता है ?

भरतेश्वरने पुनः प्रश्न किया कि अरविंद ! कहो तो सही, उनको वैराग्य क्यों उत्पन्न हुआ ? तब अरविंदने कहा कि स्वामिन् ! हस्तिनापुरके राजा दीक्षित हुए समाचारसे ये सन्यस्त हुए अर्थात् दीक्षा लेनेके लिए उद्युक्त हुए। ' तब क्या रविकीर्तिकुमारने भी यह नहीं कहा कि कुछ दिनके बाद दीक्षा लेंगे '। सम्राट्ने प्रश्न किया उत्तरमें अरविंदने कहा कि स्वामिन् तब तो सुनिये ! हमारी सबसे अधिक बिगाड करनेवाला तो वही कुमार है। उस रविकीर्तिकुमारने ही ध्यानकी खूब प्रशंसा की। दीक्षा की स्तुति की। मनुष्यजन्मकी निंदा की। उसकी बातसे सब कुमार प्रसन्न हुए, उसीसे तो हम लोगोंकी व इस देशकी आज यह दशा हुई।

भरतेश्वरने कहा कि अच्छा ! हम समझ गये। दीक्षा लेनेका जब विचार हुआ, तब पिताको पूछकर दीक्षा लेंगे। इस प्रकार क्या उनमें एकने भी मेरा स्मरण नहीं किया ? उत्तरमें अरविंदने कहा कि स्वामिन् ! कुछ कुमारोंने जरूर कहा कि पिताजीको पूछकर दीक्षा लेंगे, तब कुछ कहने लगे कि पिताजीको पूछनेसे हमारा काम बिघड जायगा। वे कभी सम्मति नहीं देंगे। इस प्रकार उनमें ही विचार चलने लगा। उनमें कोई २ कुमार कहने लगे कि पिताजी तो कदाचित् सम्मति दे देंगे। परंतु मातायें कभी नहीं देंगी। जब अपन दीक्षा लेनेके लिए जा रहे हैं तब उनको पूछनेकी जरूरत ही क्या हैं ? वे कौन हैं ? हम कौन हैं ? हमारा उनका संबंध ही क्या है ? इस प्रकार बोलते हुए आगे बढे।

उस बातको सुनकर भरतेश्वर हसते हुए कहने लगे कि अरे ! वे तो हमारे अंतरंगको भी जानते हैं ! बोलो ! फिरसे बोलो ! उन्होने क्या कहा ! अरविंदने कहा कि स्वामिन् ! वे कहते थे कि कदाचित् पिताजी एक दफे इनकार करेंगे तो फिर समझकर जाने देंगे, परंतु हमारी मातायें कभी नहीं जाने देंगी । वे तो मोक्षांतरायमें सहायक होजायंगी।

चक्रवर्ति भी आश्चर्यान्वित हुए । वयमें ये छोटे होनेपर भी आत्माभिप्रायमें ये छोटे नहीं हैं । इनमें इतना विवेक है, यह मैं पहिले नहीं जानता था । इस प्रकार भरतेश्वरने आश्चर्य व्यक्त किया ।

वहां उपस्थित चक्रवर्तिके मित्रोने कहा कि स्वामिन् ! रत्नकी खानमें उत्पन्न रत्नोंको कांतिका मिलना क्या कोई काठिन है ? आपके पुत्रोंको विवेक न हो तो आश्चर्य है । तब भरतेश्वरने कहा कि, नागर ! दक्षिण ! देखो तो सही ! उनको जाने दो, जानेकी बात नहीं कहता हूं । परंतु जाते समय अखिल प्रपंचको जाननेका चातुर्य जो उनमें आया, इसके लिए मैं प्रसन्न हुआ । सेवकोंको न डांटते हुए ले जानेका प्रकार, मुझे व उनकी मातावोंको न पूछकर जानेका विचार देखनेपर चित्तमें आश्चर्य होता है ।

स्वामिन् ! युक्तिमें वे सामान्य होते तो इस उमरमें दीक्षा लेकर मोक्षके लिए प्रयत्न क्यों करते ? उनकी कीर्ति सचमुचमें दिगंत व्यापी होगई है । इस प्रकार चक्रवर्तिके मित्रोने उनकी प्रशंसा की ।

उस समय मंत्रीने कहा कि अपने पिता प्रतिष्ठाके साथ षट्खंड राज्यका पालन करते हैं तो हम अमृतसाम्राज्यका अधिपति बनेंगे, इस विचारसे प्राज्य [उत्कृष्ट] तपको उन्होंने ग्रहण किया होगा ।

अर्ककीर्ति दुःखके साथ कहने लगा कि पिताजी के सौ भाई उस दिन दीक्षा लेकर चले गये । आज मेरे सौ भाईयोने दीक्षा लेकर मुझे दुःख पहुंचाया । हम लोग बडे हैं, हम लोगोंके दीक्षित होनेके बाद उनको दीक्षा लेनी चाहिए, यह रीत है । वे दुष्ट हैं । हमसे

आगे चले गये, यह न कहकर आश्चर्य है कि आप लोग उनकी प्रशंसा कर रहे हैं।

अर्ककीर्तिके शोकावेशको देखकर भरतेश्वरने सांत्वना दी कि बेटा! शांत रहो। मेरे भाईयोंके समान ये क्या अहंकारसे चले गये? उत्तम वैराग्यको धारण कर ये चले गये हैं, इसलिए दुःख करनेकी आवश्यकता नहीं है। यदि मैं और तुम दोनों दुःख करें तो हमारी सेना व प्रजायें भी दुःखित होंगी। और अंतःपुरमें भी सब दुखी होंगे। इसलिए सहन करो। इसी प्रकार भरतेश्वरने अरविंद आदिको बुलाकर अनेक रत्नाभरणादि उपहारमें दिये व कहा कि आप लोग दुःख मत करो। युवराजके पास अब तुम लोग रहो। युवराज अर्ककीर्तिको भी कहा कि पहिलेके मालिकोंने जिस प्रकार इनको प्रेमसे पाला पोसा, उसी प्रकार तुम भी इनके प्रतिव्यवहार करना। तदनंतर सब लोग वहांसे चले गये।

अब सार्वभौम महलमें अंदर चले गये। तब उनके सामने शोकावेगसे संतप्त रानियोंका समुदाय उपस्थित हुआ। निस्तेज शरीर, बिखरे हुए केशपाश, म्लानमुख व अश्रुपातसे युक्त हुई वे अंगनायें भरतेश्वरके चरणोंमें पडकर रोने लगीं। पतिदेव! हमारे पुत्र हमसे दूर चले गये! आंख और मनके आनंद चले गये! हम उन्हींको अपना सर्वस्व समझ रही थीं। हाय! उन्होंने हमारा घात किया। हम अपने माणिक्यस्वरूपी पुत्रोंको नहीं देखती हैं! राजन्! हमारी आगेकी दशा क्या है! हमारी कामना थी कि वे राज्यका पालन करेंगे। परन्तु वे जंगलके राज्यको पालन करने लिए चले गये! अंतिम वयमें दीक्षा न लेकर अभी दीक्षाके लिए चले गये एवं हमें इस प्रकार कष्टमें डाल गये! हम लोग उनके विवाहके वैभवको देखना चाहती थीं। परंतु हमारी इच्छा पूर्ण नहीं हुई। जिस प्रकार फलकी अभिलाषासे किसी वृक्षको सिंचनकर पाले पोसे तो फल आनेके समय ही वह वृक्ष कटा जा

इस प्रकारकी यह दशा हुई। स्वामिन्! आपको भी न कहकर, हमको भी न कहकर चुपचापके तपश्चर्याको जानेके लिए, हमने उनको ऐसा कष्ट क्या दिया है। देखिये तो सही! हमारे व्रत, नियम आदिका फल व्यर्थ हुआ। उनसे हमें अल्पफल मिला, संपत्ति केवल दीखकर चली गई। हाय! हम कितनी पापिनी हैं। इस प्रकार सम्राट्के सामने अत्यंत दीनताके साथ वे दुःख करने लगीं।

भरतेश्वर उनको सांत्वना देते हुए कहने लगे कि देवियों! शांत रहो, वे अपनेको कष्ट देकर जानेके लिए ही आये हुए थे, अब दुःख करनेसे क्या प्रयोजन है? उन कुमारोंके विवाह मंगलका हम विचार कर रहे थे। उन्होंने ही दूसरा विचार किया, मनुष्य स्वयं एक विचार करता है तो विधि और ही सोचती है, यह वचन प्रत्यक्ष अनुभवमें आया। मैं इन पुत्रोंके योग्य कन्याओंके संबंधमें विचार कर रहा था, परंतु वे कहते हैं कि हमें कन्या नहीं चाहिए, पिताजी कन्या किसके लिए देख रहे हैं? पूर्वजन्मके कर्मको कौन उल्लंघन कर सकता है? नहीं तो क्या इस उमरमें यह विचार? हाथसे जो बात निकल गई उसके लिए दुःख करके क्या प्रयोजन है? अब आप लोग दुःख करें तो क्या वे आ सकते हैं? कभी नहीं। फिर व्यर्थ ही रोनेसे क्या प्रयोजन? इसलिए उनको अब भूलनेका यत्न करो, नहीं तो तुम्हारा विवेक किस कामका? पुत्रोंके रहते हुए रत्नोंके समान समझकर प्रेम करना चाहिए। उनके चले जानेपर काचके समान समझकर उनको भूलना चाहिये। वे तपके लिए गये हैं न? फिर तो अच्छा हुआ कहना चाहिए। कुपथके लिए तो नहीं गये? अपकीर्ति करनेपर रोना चाहिये, निर्मल मार्गमें जानेपर दुःख क्यों? एक बात और है। तपको धारण कर भी मरीचिकुमारके समान उन्होने मिथ्यामार्गका अवलंबन नहीं किया। अपने दादा [आदिप्रभु] के पास ही गये। इसके लिए दुःख क्यों करना चाहिए? और एक बात सुनो! राजा होते तो

उनको मेरे राज्यकी प्रजायें नमस्कार करती थीं। परंतु अब तो पन्नगामरनरलोककी समस्त जनता उनके चरणोंमें मस्तक रखती है।

अनेक स्त्रियोंके पुत्र राज्यको पालन कर रहे हैं। परन्तु आपके पुत्र समस्त विश्वको अपने चरणोंमें झुकाते हैं, इससे बढकर आप लोगोंका भाग्य और क्या हो सकता है? दुःखसे शरीर म्लान होता है। आयुष्यका ह्रास होता है। भयंकर पापका बंधन होता है। आप लोग विवेकी होकर इस प्रकार दुःख क्यों करती हैं। बस! शांत रहो। वीणाजी! विद्रुमवती! सुमनाजी! प्रिये वीणादेवी! आवो! इत्यादि प्रकारसे बुलाते हुए उनकी आंखोंको अपने हाथसे पोंछते हुए भरतेश्वरने कहा कि अब दुःख मत करो, तुम्हे हमारा शपथ है। हे माणिक्यदेवी! मंद्राणि! चंद्राणि! कल्याणाजि! मधुमाधवाजी! जाणाजी! कांचनमाला! आवो! दुःख छोडो! इस प्रकार कहते हुए उनको भरतेश्वरने आलिंगन दिया। मंगलवति! मदनाजी! रत्नावती! श्रृंगारवती! पुष्पमाला! मृगलोचना! नीललोचना! आप लोग पुत्रोंके शोकको भूल जावो! उनको सांत्वना देते हुए भरतेश्वर उनके केशपाशको बांध रहे हैं, शरीरपर हाथ फिराते हुए आंसुओंको पोंछ रहे हैं। मीठे २ बोल रहे हैं। एवं फिर उसी समय आलिंगन देते हैं। इस प्रकार उन स्त्रियोंको संतुष्ट करनेके लिए भरतेश्वरने हर तरहसे प्रयत्न किया। उन्होने पुनः कहा कि देवियो! आप लोग दुःख क्यों करती हैं? यदि आप लोगोंने मेरी सेवा अच्छी तरहसे की तो मैं पुनः आपलोगोंको बच्चा दे दूंगा। आप लोग चिंता न करें। इसे सुनकर वे स्त्रियां हंसने लगी।

तब वे स्त्रिया सम्राट्से यह कहकर दूर खडी हुई कि देव! रोनेवालोंको हंसानेका गुण आपमें ही हमने देखा! जाने दीजिये। आपको हर समय हंसी ही सूझती है। बाहर जब आप जाते हैं तब बडे गंभीर बने रहते हैं। परंतु अंदर आनेपर यहांपर खेल कूद सूझती है। छोटे बच्चोंके जानेपर भी आपको दुःख नहीं होता है। आपका वचन ही इस बातको सूचित कर रहा है।

इस लिए शरीर भिन्न है, मैं भिन्न हूं। इस प्रकारके ध्यानका अभ्यास करनेपर शरीरनाश होकर मुक्तिकी प्राप्ति होती है। लकडीमें आग है, उसे घर्षण करनेपर उसी लकडीको जला देती है इसी प्रकार आत्मा ध्यानाग्निके द्वारा आत्माका निरीक्षण करे तो तीन शरीर जल जाते हैं। कर्म और तीन देह इन दोनोंका एक अर्थ है, धर्मका अर्थ निर्मल आत्मा है। धर्मको ग्रहण करो, कर्मका परित्याग करो। धर्मके ग्रहण करनेपर कर्म अपने आप दूर हो जाता है, एवं मोक्षपदकी प्राप्ति होती है।

बाह्यधर्म सभी व्यवहार या उपचारधर्म है। परन्तु आत्मा ही उत्कृष्ट धर्म है। बाह्यधर्मोंसे देहभोगादिककी प्राप्ति होती है। अंतरंग-धर्मसे देह नष्ट होकर मुक्तिकी प्राप्ति होती है। तीन रत्न अर्थात् रत्न-त्रयोंके ध्यान करना ही मेरी अभिन्नभक्ति है। तब हे भव्य! मेरा वैभव तुम्हे भी प्राप्त होता है, देखो! तुम अपनेसे ही अपनेको देखो। आकाशके समान आत्मा है। भूमीके समान यह शरीर है। आकाश भूमीके अंदर छिप गया है। क्या ही आश्चर्य है। इस प्रकार विचार करनेपर आत्मदर्शन होता है। चंचल चित्तको रोककर, दोनों आंखोंको मीचकर, निर्मल भाव दृष्टिके द्वारा बार २ देखनेपर देहके अंदर वह परमात्मा स्वच्छ प्रकाशके समान दीखता है। बैठे हुए ध्यान करनेपर शरीरमें बैठे हुए स्वच्छ प्रतिमाके समान आत्मा दीखता है। सोकर ध्यान करनेपर सोई हुई प्रतिमाके समान, एवं खडे होकर ध्यान करनेपर खडी हुई प्रतिमाके समान दीखता है पहिले पहिले बैठकर या खडे होकर ध्यानका अभ्यास करना चाहिए। अभ्यास होनेके बाद बैठो, खडे हो जावो, चाहे सोवो वह आत्मदर्शन हो जायगा। शरीर कैसा भी क्यों न रहें परंतु आत्मामें लीन होना चाहिये तब वह देदीप्यमान आत्मा निकटभव्योंको देखनेको मिलता है।

हे भव्य! यही ज्ञानसार है। यही चारित्रसार है। यही सम्य-क्त्वसार है। यही उत्तम तपसार है, ध्यानसे बढकर कोई चीज नहीं।

इसे विश्वास करो। मतिज्ञान आदि केवलज्ञान पर्यंतके ज्ञान भी यही ध्यानरूप है। सिद्धोंके अष्टगुण भी इसीरूप है। विशेष क्या? सिद्ध स्वयं इस स्वरूपमें हैं। यह मेरी आज्ञा है। विश्वास करो। जैसे सूर्य-बिंबके ऊपरसे मेघाच्छादन हटता जाता है तैसे तैसे सूर्यका प्रकाश बढता जाता है, इसी प्रकार आत्मसूर्यसे कर्मावरण जैसे जैसे हटता जाता है वैसे ही मतिज्ञानादि ज्ञानोंमें निर्मलता बढती जाती है। तब ज्ञानके पांच भेद बनते हैं। जैसे मेघपटल पूर्णतः दूर होनेपर सूर्य पूर्ण उज्वल प्रकट होता है वैसे ही जब कि वह कर्ममेघ अशेषरूपसे हट जाता है। तब समस्त विश्वको जाननेमें समर्थ कैवल्य बोधकी (केवलज्ञान) प्राप्ति होती है। धूल वगैरेके हटनेपर दर्पण जैसा निर्मल होता है। उसी प्रकार ध्यानके बलसे यह आत्मयोगी जब नौ कर्मोंको दूर करता है तब केवल दर्शनकी प्राप्ति होती है। मुझे अपने आत्मासे बढकर कोई पदार्थ नहीं है, ऐसा जब दृढीभूत होकर यह भव्य आत्मामें मग्न होता है तब सप्त प्रकृतियोंका अभाव होता है। उस समय क्षायिक सम्यक्त्वकी प्राप्ति होती है।

जैसे पानीमें नमक घुल जाता है वैसें आत्मामें इस मनको तल्लीन करनेपर जब मोहनीय कर्मकी २१ प्रकृतियोंका अभाव होता है तब यथाख्यात चारित्र होता है। रोगके दूर होनेपर रोगी सामर्थ्यसंपन्न होता है। इसी प्रकार आत्मयोगी जब पंच अंतराय कर्मोंको दूर करता है तो तीन लोकको उठानेका सामर्थ्य प्राप्त करता है, वही अनंतवीर्य है। दो गोत्रकर्मोंके अभाव होनेपर वह आत्मा सिद्ध क्षेत्रपर पहुंच जाता है, उसके बाद वह इस भूप्रदेशपर गिरता पडता नहीं है। अगुरुलघुनामक महान् गुणको प्राप्त करता है। दो वेदनीय कर्मोंको जब यह ध्यानके बलसे छेदनीय बना लेता है तो अव्याबाध नामक गुणको प्राप्त करता है जिससे कि उसे किसीसे भी बाधा नहीं हो सकती है। जब यह आत्मा ध्यानके बलसे चार प्रकारके आयु कर्मको दूर करता है तब

अनंतसिद्धिको भी अपने प्रदेशमें स्थान देने योग्य अवगाहन गुणको प्राप्त करता है। इसी प्रकार नामकर्मकी ९३ प्रकृतियोंको ध्यानके बलसे जब यह नष्ट करता है तब पंचेंद्रियोंके लिए अगोदर अतिसूक्ष्म नामक गुणको प्राप्त करता है। इस प्रकार १४८ कर्मप्रकृतियोंको दूर करनेपर आत्मा संपूर्ण आत्मयोगको प्राप्त करता है, एवं लोकाग्रवासी बनता है। वही तो मोक्ष है। इसके सिवाय मोक्षप्राप्तिका अन्य मार्ग नहीं है।

हे भरत ! मैं भी वहीं विहार करता हूं। अनंत सिद्ध यहीं रहते हैं वह ब्रह्मानंद है। इसे विश्वास करो। अनेक अर्थोंको छोडकर मुझे ही देखनेका यत्न करो ! वही तुम्हे मुक्तिकी ओर ले जायगा। अनेक शास्त्रोंको अध्ययनकर, तपश्चर्याकर भी यदि ध्यानकी सिद्धि नहीं होती है तो मुक्ति नहीं है। यह सारभव्योंका कृत्य है। दूर भव्योंको इसकी प्राप्ति नहीं होती है। इसलिए हे भव्य ! ध्यानालंकारको धारण करो। आगे तुम्हे मुक्तिस्त्रीकी प्राप्ति होगी ! आज पंचैश्वर्यकी प्राप्ती होगी। अब उसमें देरी नहीं है, बिलकुल समय निकट आगया है। अभी उन पंचसंपत्तियोंके नामको मैं क्यों कहूं। आत्मयोगको धारण करो। अभी हाल ही तुम्हे उन पंचसंपत्तियोंका दर्शन होगा। विचारकर आंख मीच-कर, ध्यानमें बैठो। इस प्रकार कहकर भगवंतने अपने दिव्यवाणीको रोक दिया। सम्राट्ने भी ' इच्छामि ' कहकर ध्यान करना प्रारंभ किया।

उत्तरीय वस्त्रको निकालकर कटिप्रदेशमें बांधलिया, एवं स्वयं सिद्धा-सनमें विराजमान होकर सुवर्णकी पुतलीके समान एकाग्रतासे बैठ गये।

वायुवोंको ब्रह्मरंध्रपर चढाया, आंखोंको मीचकर मनको आत्मामें लीन किया। अंदर प्रकाशका उदय हुआ। वस्त्र, आभरण आदि शरी-रमें थे, परंतु आत्मा नग्न था। हंस जिस प्रकार पानीको छोडकर दूधको ही ग्रहण करता है, उसी प्रकार परमहंस सम्राट्ने शरीरको छोडकर हंस [आत्मा] का ही ग्रहण किया। अत्यंत गुप्त तहखानेमें एक बिजलीकी

बत्ती जलनेपर जो हालत होती है वही आज सम्राट्की दशा है। उसे कोई नहीं जानते हैं, अंदर आत्मप्रकाश देदीप्यमान होरहा है। शायद भरतेश्वर उस समय उज्वल चांदनीके परिधानमें हैं, बिजलीको शरीरभर धारण किए हुए हैं। इतना ही क्यों, उत्तम मोती या मुक्तिकांताको आलिंगन दे रहे हैं। आकाशमें विहार करनेके समान सिद्धलोकमें विहार कर रहे हैं। इतना ही क्यों ? चाहे जिस सिद्धसे एकांतमें बातचीत कर रहे हैं। वहांपर बोली नहीं, मन नहीं, तन नहीं, इंद्रिय समूह नहीं, कर्मका लेश भी नहीं, केवल ज्योतिस्वरूप ज्ञान ही आत्मस्वरूपमें उस समय दिख रहा है। एक बार तो स्वच्छ चांदनीके समान आत्मा दीखता है, जब कर्मका अंश आता है तो फिर ढक जाता है, फिर प्रकाशित होता है।

इस प्रकार घासकी आगके समान वह आत्मा चमकता रहा है। तेज प्रकाश होनेपर शुक्लध्यान है। उसमें फिर कम ज्यादा नहीं होता है मंद प्रकाश धर्मध्यान है। उसमें कभी २ कम ज्यादा होता है। जब आत्मदर्शन होता है तब आनंद होता है। कर्मका पिंड एकदम झरने लगता है। बाहरके लोग उसे नहीं समझ सकते हैं। या तो भगवंत जानते हैं या वह स्वयं ध्याता जानता है। ज्ञानका अंश बढता जाता है। लाखके घरमें आग लगनेपर जैसे वह पिघल जाता है, उसी प्रकार ध्यानाग्निके बलसे तैजस कार्मण शरीर पिघलने लगे। क्षण-क्षणमें चित्प्रभा बढने लगी। ध्यानाग्निने तुरंत मतिज्ञानावरणीयको जलाया। तब भरतेश्वरको मतिज्ञानसंपत्तिकी प्राप्ति हुई अर्थात् सातिशय मतिज्ञानकी प्राप्ति हुई। परोपदेश व शास्त्रकी सहायताके बिना ही आत्मामें ही पदार्थोंके निर्णयकी सामर्थ्य प्राप्त होती है उसे सातिशय मतिज्ञान कहते हैं। वह सुज्ञान उन्हें प्राप्त हुआ। मतिज्ञानके आवरणको हटानेके बाद वह ध्यानरूपी आग श्रुतावरणमें लग गई। तत्काल ही श्रुतावरण जल गया। सातिशय श्रुतज्ञानकी प्राप्ति हुई। मतिज्ञानपूर्वक शास्त्रोंके अन्य-

यनसे पदार्थोंको विशेषतया जानना यह श्रुतज्ञान है, वह चतुर्दश पूर्वके रूपमें है। वही ज्ञान आत्मयोगके बलसे सम्राट् को होगया। उसके बाद वह ध्यानाग्नि अवधिदर्शनावरण अवधिज्ञानावरणपर लग गई. तुरंत दोनों जलकर खाक हुए। सम्राट्को अवधिज्ञान व अवधिदर्शनकी प्राप्ति हुई। अवधिज्ञानका अर्थ सीमिति ज्ञान है। उससे समस्त लोकको जान नहीं सकते हैं। इसलिए उनको उस समय सीमित ज्ञान दर्शनकी प्राप्ति हुई। पिछले कुछ भवोंको व आगामी कुछ भवोंको वे उसके बलसे जान सकते हैं तो ध्यानसे बढकर कोई तप है ! अब मनःपर्यय ज्ञान है, परन्तु वह गृहस्थोंको प्राप्त नहीं होता है। तथापि मतिज्ञानादि चार ज्ञान क्षायिक नहीं है। क्षायोपशमिक हैं। मार्गमें पडे हुए पुराने घासोंको जैसा जलाते हैं उस प्रकार इन चार ज्ञानोंके आवरणको जलानेपर चार ज्ञानोंकी प्राप्ति होती है। परन्तु जब पांचवां ज्ञान जब प्राप्त होता है तभी यथार्थ आत्मसिद्धि होती है। आवरणके क्षयके निमित्तसे ये चार ज्ञान क्षायिक कहला सकते हैं। परंतु वस्तुतः क्षायिक नहीं हैं। परंतु केवलज्ञान स्वयं क्षायिक ज्ञान है। अब इनका वर्णन रहने दो। वह ध्यानाग्नि अब मोहनीय कर्मको लगी। वहांपर आत्माके ध्रौव्यगुणको दूर करनेवाली सात प्रकृतियोंको उसने जलाना प्रारंभ किया। उन सप्त प्रकृतियोंको ऐसा जलाया कि फिर ऊपर उठ ही न सके। अनंतानुबंधिकषाय चार, मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, व सम्यक्मिथ्यात्व इस प्रकार सप्तप्रकृतियोंको उसने जलाया। सिद्ध व अरहंतके सम्यक्त्वसे वह कुछ भी कम नहीं है। उनकी वृद्धिकी बराबरी करनेवाला वह सम्यक्त्व है। उसे क्षायिक सम्यक्त्व कहते हैं। उसकी प्राप्ति भरतेश्वरको हुई। आत्मासे बढकर कोई पदार्थ नहीं है। आत्मासे ही आत्माकी मुक्ति होती है, इस प्रकार आत्मसंपत्तिमे वह भरतयोगी मग्न हुए। अब अन्य-यसिद्धिका मार्ग उनको सरल बन गया। इस प्रकार मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिदर्शन, अवधिज्ञान व क्षायिक सम्यक्त्वके रूपमें भरतेश्वरको पंचैश्व-

र्यकी प्राप्ति हुई। क्या जगत्पति भगवान् का कथन अन्यथा होसकता है? ग्यारह कर्मोको जलाकर पंचैश्वर्य प्राप्त किया। अब शेष कर्मोको इतने ही समयमें मैं दूर करूंगा यह भी सम्राटने उसी समय जान लिया। आजके लिए इतना ही लाभ है, आगे फिर कभी देखेंगे, इस विचारसे हृन्मंदिरके अमल सच्चिदानंदकी वंदनाकर भरतेश्वरने आनंदसे आंखे खोल दी व उठकर खडे होगये। जय! जय! त्रिभुवननाथ! मेरे स्वामी! आप जयवंत रहें। आपकी कृपासे कर्मोको जीतकर पंचैश्वर्यको प्राप्त किया। इस प्रकार कहते हुए भरतेश्वरने भगवंतके चरणोंमें मस्तक रक्खा। उसी समय करोडों देववाद्य बजने लगे। देवगण पुष्पवृष्टि करने लगे एवं समवशरणमें सर्वत्र जयजयकार होने लगा। अंतरंग आत्मकलाके बढनेपर शरीरमे भी नवीन कांती बढ गई। उसे देखकर कुलपुत्र आनंदसे नृत्य करने लगे एवं आदिप्रभुके चरणोंमें नमस्कार किया। हे भरतराजेंद्र! भव्यांबुजभास्कर! परमेशाग्रकुमार! परमात्मरसिक कर्मारि! तुम जयवंत रहो। इस प्रकार वेत्रधर देव भरतेश्वरकी प्रशंसा करने लगे।

भगवान् अरहंतको पुनः साष्टांग नमस्कार कर मुनियोंकी वंदनाकर एवं शेष सबको यथा योग्य बोलते हुए भरतेश्वर अपने पुत्रोंके साथ नगरकी ओर रवाना हुए। तब सब लोग कह रहे थे कि शाहबास, राजन्! जीत लिया। तनको दंडित न कर मनको दंडित करनेवाले एवं अपने आत्मामें मग्न होकर कर्मोको जीतनेवाले भरतेश्वर अब अपने नगरकी ओर जारहे हैं। वर्षों रटकर ग्रंथोंके पाठ करते हुए मुंह सुखानेवाले शास्त्रियोंकी वृत्तिपर हंसते हुए व क्षणभरमें आगमसमुद्रके पार पहुंचनेवाले सम्राट् जारहे हैं। बहुत दिनतक घोर तपश्चर्या न कर एवं दीर्घकाल तक चित्तरोध न करते हुए ही अवधिज्ञानको प्राप्त करने वाले भरतेश्वर जारहे हैं। मायाको दूरकर, शरीरमें स्थित आत्मामें श्रद्धा करते हुए क्षायिक सम्यक्त्वको पालेवाले भरतेश्वर अपने नगरकी ओर जारहे हैं। शरीर व मस्तकमें वस्त्र व आभूषणके होनेपर भी आत्माको

नम्र कर पंचैश्वर्यको प्राप्त करनेवाले एवं कालकर्मके विजयी राजा जारहे हैं। नूतन दीक्षित अपने पुत्रोंको देखनेके लिए गये हुए अपितु साक्षात् आत्माको देखकर तत्क्षण पंचसंपत्तिको पाकर आये, ऐसे अतिदक्ष संम्राट् जा रहे हैं। ध्यान ही बडे भारी तपश्चर्या है, वह योगीको भी हो सकता है, गृहस्थको भी हो सकता है। इसके लिए मैं ही दृष्टांत-स्वरूप हूं। इस प्रकार लोकके सामने डिंडोरा पीटते हुए भरतेश्वर जारहे हैं। अपने आत्माको जाननेवाला लोकको जान सकता है। अपनेको जाननेवाले ही यथार्थ तपस्वी है। इस बातको सब लोग मुझे देखकर विश्वास करें, यह स्पष्ट करते हुए वह नरनाथ जारहे हैं। अनेक विमानोंमें चढकर पुत्र व गणबद्धदेव भी उनके साथ जारहे हैं।

आनंदके साथ धीरे २ जब सम्राट्का विमान चल रहा था, तब युवराजने कुछ सोचकर भरतेश्वरसे न कहते हुए कुछ लोगोंके साथ आगे प्रस्थान किया एवं बिजलीके समान अयोध्यानगरीमें पहुंचे व वहांपर मंत्री मित्रोंको पंचैश्वर्यकी प्राप्तिका समाचार दिया। सबको आनंदसे रोमांच हुआ। नगरमें आनंदभेरी बजाई गई। सर्वत्र श्रृंगार किया गया, ध्वज पताकादि सर्वत्र फडकने लगे। एवं अनेक हाथी घोडा रथ वगैरेको लेकर सम्राट्के स्वागतके लिए युवराज आया। भरतेश्वरको सामने पहुंचकर युवराजने भेंट चढाया व नमस्कार किया। उसे देखकर सर्व कुमारोंने भी वैसा ही किया। इसी प्रकार राजपुत्र, मंत्रि, मित्रोंने भी अनेक भेंट चढाकर चक्रवर्तिका अभिनंदन किया। सम्राट्ने बहुत वैभवके साथ नगरमें प्रवेश किया। स्तुति पाठकोंकी स्तुति, कवियोंकी कीर्ति, विद्वानोंकी श्रुति और ब्राह्मणोंका आशिर्वाद आदिको सुनते हुए आनंदसे भरतेश्वर अयोध्यामें आ रहे हैं। इसी प्रकार पाठक, मल्ल, वेश्यायें, वेत्रधर आदिकी क्रीडाको देखते हुए वे जारहे हैं। नगरमें अट्टालिकावोंपर चढकर स्त्रियां भरतेशके वैभवको देख रही हैं। परंतु चक्रवर्तिकी दृष्टि उनकी ओर नहीं है। महलमें

पहुंचनेपर बाहरके दीवान खानेसे ही सब पुत्र, मित्र, मंत्री आदिको अपने स्थानको रवाना किया एवं स्वयं महलकी ओर चले गये। वहांपर राणियोंने बहुत आनंदसे स्वागत किया। एवं भक्तिसे रत्नकी आरती उतारी। अपने २ कंठाभरणको निकालकर भरतेश्वरके चरणोंमें रक्खा। पट्टराणीने भी पतिका योग्य सत्कार किया। भरतेश्वरने भी पंचैश्वर्यकी प्राप्तिका सर्व वृत्तांत कहते हुए आनंदसे वह दिन बिताया।

भरतेशके भाग्यका क्या वर्णन करे ?। एक गृहस्थ होते हुए बडे २ यतियोंके लिए भी कष्टसाध्य संपदाको प्राप्त करें यह कोई सामान्य विषय नहीं है। नूतन दीक्षित पुत्रोंको देखनेके लिए समवसरणमें पहुंचते हैं, वहांपर ध्यानके बलसे विशिष्ट कर्मनिर्जरा करते हैं। एवं सातिशय पंचसंपत्तिको प्राप्त करते हैं। यह सब बातें उनके महापुरुषत्वको व्यक्त करती हैं। उनका विश्वास है कि आत्मयोगके रहनेपर किसी भी वैभवकी कमी नहीं हैं। इसीलिए वे सदा इस प्रकारकी भावना करतें हैं कि—

हे चिदंबरपुरुष ! मेरे पास आपके रहनेपर संपत्ति, सुख सौंदर्य, श्रृंगार आदि किस बातकी कमी हो सकती है, इसलिए आप मेरे अंतरंगमें सदा बने रहो।

हे सिद्धात्मन् ! अच्युतानंद ! सद्गुणवृंद, चंद्रमरीच्यमृतांशु प्रकाश ! सुच्युतकर्म ! गुरुदेव, हे निर्वाच्य ! मुझे सन्मति प्रदान कीजिये।

इसी भावनाका फल है कि उन्हें नित्य नये वैभवकी प्राप्ति होती है।

इति पंचैश्वर्य संधिः।

—०—

अथ तीर्थेशपूजा संधिः

भरतेश्वरने पंचसंपत्तिको प्राप्त करनेके बाद सेनाधिपति मेघेशके पुत्रको बुलवाया। अपने मंत्रि, मित्र व राजावोंके सामने उसका सन्मान किया। एवं आनंदके साथ कहने लगे कि इस बालकके पिताको जयकुमार, अयोध्यांक इस प्रकारके नाम थे। परन्तु उसकी वीरतासे प्रसन्न होकर मैंने उसे वीराग्रणि उपाधिके साथ मेघेश्वर नामाभिधान किया था। अब वह जब दीक्षा लेकर चला गया है तो यही बालक अपने लिए उसके स्थानमें है। इसके पिताको बादमें दिये हुए नूतन नामकी जरूरत नहीं। इसे पुरातन नाम ही रहने दो। इसे आजसे अयोध्यांक कहेंगे। उस पुत्रसे यह भी कहा कि 'बालक! तुम्हारी सेवाको देखकर पितासे भी बढकर तुम्हारा वैभव बना देंगे। इस समय तुम पिताके भाग्यमें रहो'। साथमें यह भी कहा कि जबतक यह उमरमें न आवे तबतक मेघेश्वरके द्वारा नियत वीर ही सेनापतिका कार्य करें। परंतु मैं विधिपूर्वक सेनापतिका पट्ट इस बालकको बांधता हूं। इस प्रकार कहते हुए उस बालकका सन्मान किया। पहिलेक अनंतवीर्य नाम अब चला गया। अब उसे लोग अयोध्यांक कहते हैं। उस दिनसे वह बालक आनंदसे बढकर यौवनवेदीपर पैर रखने लगा। 'राजाके हाथ लगनेपर तृण भी पर्वत बन जाता है' यह लोकोक्ति असत्य कैसे हो सकती है? वह बालक सम्राट्की सेनाके अधिपति बना, पुण्यवंतोंके स्पर्शसे मट्टी भी सोना बन जाती है।

आनंदके साथ कुछ काल व्यतीत हुए। एक दिन रात्रीके अंतिम प्रहरकी बात है। भरतेश्वरने एक स्वप्न देखा जिसमें उन्होंने मेरु पर्वतको लोकाग्र प्रदेशपर उडते जानेका दृश्य देखा। 'श्री हंसनाथ' कहते हुए भरतेश्वर पलंगसे उठे। पासमें सोई हुई पट्टरानी भी घबराकर उठी व कंपित हो रही थीं। कारण उसने उसी समय स्वप्नमें भरतेश्वरको रोते हुए देखा था। वह सुंदरी भयभीत होकर कहने लगी

कि स्वामिन् ! मैंने बडे भारी कष्टदायक [अशुभ] स्वप्नको देखा। तब उत्तरमें भरतेश्वरने कहा कि देवी ! घबरावो मत ! मैंने भी आज एक विचित्र स्वप्न देखा है। यह कहते हुए तत्क्षण उन्होने अवधिज्ञानसे विचार किया व कहनेलगे कि देवी ! वृषभेश्वर अब शीघ्र ही मुक्ति जानेवाले हैं। इसकी यह सूचना है। तब राणीने कहा कि हमें अब कौन शरण हैं। उत्तरमें भरतेश्वर कहते हैं कि हमे अपना हंसनाथ (परमात्मा) ही शरण है। उनके समान ही अपनेको भी मुक्ति पहुंचना चाहिये। यह संसार ही एक स्वप्न है। इसलिए उसमें ऐसे स्वप्न पडे तो घबरानेकी क्या जरूरत है ? इस प्रकार पट्टरानीको सांत्वना देते हुए कैलासपर्वतके प्रति अवधिदर्शनका प्रयोग किया। वहांपर नरनाथ भरतेश्वरने प्रत्यक्ष पुरुनाथका दर्शन किया। अब आदिप्रभु समवशरणका त्याग कर चुके हैं। उसी पर्वतपर एक निर्मल-शिलातलपर विराजमान हैं। पूर्वदिशाकी ओर मुख बनाकर सिद्धासनमें विराजमान हैं। भरतेश्वरने समझ लिया कि अब चौदह दिनमें ये मुक्ति सिधारेंगे। उसी समय सभामें पहुंचकर सबको वह समाचार पहुंचाया। युवराज, मंत्री, सेनापति, व गृहपतिने भी रात्रिको एक एक स्वप्न देखा था, उन्होने भी सभामें निवेदन किया। सम्राट्ने कहा कि इन सब स्वप्नोमे आदिप्रभुके मोक्ष जानेकी सूचना है। इस प्रकार भरतेश्वर बोल ही रहे थे, इतनेमें विमानमार्गसे आनंद नामक एक विद्याधर आया। उन्होने वही समाचार दिया, तब भरतेश्वरके ज्ञानके प्रति लोगोंने आश्चर्य किया।

सम्राट्ने सर्व देशोंमें तुरंत खलीता भेजा कि अब भगवंतकी पूजा महावैभवसे चक्रवर्ति करेंगे। इसलिए सब लोग अपने राज्यसे उत्तमोत्तम पूजाद्रव्योंको लेकर आवें। मेरी बहिने अपने नगरमें ही रहें। गंगादेव सिंधुदेव आवें। नमिराज, विनिमिराज, भानुराज आदि सभी आवें। मेरे दामाद सभी कैलास पर्वतपर पहुंचे। मेरी पुत्रियां यहांपर महलमें आकर

रहें। इसप्रकार सबको पत्र भेजकर स्वयं महलमें प्रवेश कर गये। वहांपर राणियोंसे कहा कि मैं वहांपर पूजा करूंगा, आपलोग यहांसे सामग्री व आरती इत्यादिको बनाकर भेजती रहें। इसीसे आप लोगोंको विशिष्टपुण्यकी प्राप्ति होगी। इस प्रकार स्त्रियोंको नियत किया। आनंद व प्रस्थानकी भेरी बजाई गई। कैलासपर्वतके कुछ दूरपर अपनी सारी सेनाका मुक्काम कराया। स्वयं अपने पुत्र, मित्र, राजा व ब्राह्मण आदि आप्तबंधुओंको लेकर विमान मार्गसे कैलासकी ओर चले गए। कैलास पर्वतके तटमें कुछ ठहरकर सम्राटने कुछ विचार किया। निश्चय किया कि दिनमें वैभवसे पूजा करेंगे एवं रात्रिके समय रथोत्सव करायेंगे। इस विचारसे विश्वकर्मको आज्ञा दी कि रथोंकी तैयारी करो। इसी प्रकार उचित सामग्री आदि मंगाना, रथोंका शृंगार करना, सबको समाचार देना, आदि कार्य वहां उपस्थित राजाओंको सोंप दिया। विद्याधरोंको विमान भेजनेका कार्य सेनापतिको सोंप दिया। गंगाके तटमें अपने लिए एकभुक्ति रहेगी यह सूचना रसोईयाको दी गई। एवं आई हुई सर्व जनताको भोजनादिसे तृप्त करनेका कार्य गृहपतिको सोंपा गया। मुनियोंके आहारदानका प्रबंध एवं आगत राजावोंका विनय व समादर सत्कार " हे युवराज! तुम्हारे लिए सोंपता हूं मुझे पूजाकी चिंता है। तुम इन कार्योंमें सावधान रहना " इस प्रकार अर्ककीर्तीको नियत किया वीराग्रणी दामाद व राजपुत्रोंके साथ पंक्तिभोजन व उनका आदर सत्कार करनेका कार्य महाबलकुमार को देदिया गया। ब्राह्मण भोजन व श्रीबलि नैवेद्यकी चिंता बुद्धिसागरको सोंपी गई। आई हुई सर्वजनताओंके योगक्षेमका विचार माकाल व्यंतरको दिया गया। अयोध्यानगरीमें विमानसे पहुंचकर रोज आरती लानेका कार्य शूर वीर विश्वस्तजनोंको दिया गया। इतर महाजनोंको यह आदेश दिया कि मैं भगवंतकी पूजामें लग जाऊंगा। आप लोग व्यंतर, विद्याधर राजावोंके साथ मुझे पूजन सामग्री देते जावें। चिंतित पदार्थको देनेवाले चिंतामणि

रत्नको संतोषसे आदिराजकुमारके हातमें सौंप दिया। विविध इच्छित पदार्थको प्रदान करनेवाले नवनिधियोंको वृषभराज व हंसराजके वशमें देदिया। शेष पुत्र व दामादोंको चामर लेकर खडे होनेका आदेश दिया। इसप्रकार पूजासमारंभकी बाह्य सर्वव्यवस्था कर सम्राट् ऊपर पर्वतपर चले गए।

समवशरण आकाश प्रदेशमें था। किसी मंदिरसे देवके चले जानेपर मंदिरकी जो हालत होती है वही दशा उस समय उसकी थी। जगदीश आदिप्रभु पर्वतपर अलग विराजमान थे, जैसे कोई निस्पृहयोगी घरके झंजालको छोडकर एकांतवास करता हो। इसी प्रकार अन्य केवलियोंकी गंधकुटी भी आकाशमें इधर उधर दिख रही थी। द्वादशगण आश्चर्यके साथ भगवंतकी ओर देख रहे थे। सिद्धशिलाके समान एक स्वच्छशिलाके ऊपर भगवंत बद्धपल्यंकासनसे विराजमान हैं। सिद्धके समान योगमें मग्न भगवंतको देखकर ' जिनसिद्ध ' कहते हुए भरतेश्वरने नमस्कार किया। भगवंतके सामने दुःख उत्पन्न नहीं होता है। इसलिए चक्रवर्तिको कोई दुःख नहीं हुआ। भगवंतको साष्टांग नमस्कार कर सार्वभौमने पूजासमारंभको प्रारंभ किया। एक दो दिन पूजा समारंभ चला तो आसपासके व्यंतर विद्याधर देव वगैरे सभी अनर्घ्यसामग्रियोंको साथ लेकर आये। बडे भारी यात्रा भर गई।

विशेष क्या ? पूर्वसमुद्राधिपति मागधामरको लेकर हिमवंत तकके व्यंतर देव व अन्य विद्याधर आकर भरतेश्वरकी पूजामें सामिल हुए। भरतेश्वरको वे पूजा सामग्री तय्यार कर देरहे थे। सम्राट् भी प्रसन्न हुए। नमि, विनमि गंगादेव, सिंधुदेव, भानुराज व विमलराजने यह अपेक्षा की कि हम भी पूजा करेंगे। तब भरतेश्वरने सम्मति देकर अपने साथ ही उनको भी पूजामें शामिल कर लिया।

शुचिके साथ चक्रवर्तिने अपने कोटाकोटिरूप बनालिए। पर्वतभर सर्वत्र भरतेश्वर दृष्टिगोचर होरहे हैं। फिर व्यंतर विद्याधर

जो सर्व पदार्थ देरहे हैं, उनसे वैभवसे पूजा कर रहे हैं उसका क्या वर्णन करें ? धरा, गिरी व आकाशमें सर्व देव खडे होकर जयजयकार कर रहे हैं। साडेतीन करोड वाद्य तो चक्रवर्तिके, भगवंतकी सेवामें देवेंद्रके द्वारा नियोजित साडेबारह करोड वाद्य इस समय एकदम बजने लगे। उस संभ्रमका क्या वर्णन किया जासकता है ? अंबरचरि गंधर्वकन्यायें, नागकन्यायें, आकाशमें नृत्य कर रहीं थीं। उस समय जंबूद्वीपमें सबको आश्चर्य होरहा था। उस पूजा समारंभका क्या वर्णन किया जासकता है ? सबसे पहिले मंत्रोच्चारणपूर्वक सम्राट्ने जलधाराका समर्पण किया। तदनंतर सुगंधयुक्त चंदनको समर्पण किया। चंदन कोई छोटी मोटी कटोरीमें नहीं था। वह पर्वत चंदनमें डूब गया। अब वह कैलास पर्वत नहीं रहा, मलयज पर्वत (चंदनपर्वत) बन गया। अगणित रूपको धारण किये हुए भरतेश्वर अपने विशाल दोनों हाथोंसे चंदनको लेकर जब अर्चन कर रहे थे वह पर्वतसे जमीनमें भी उतरकर गया, जहां देखो वहां सुगंध ही सुगंध है। जब कि अगणित देवगण जय-जयकार कर रहे थे तब भरतेश्वरने अपने विशाल हाथोंसे उत्तम अक्ष-तावोंको अर्पण कर रहे थे। उस समय वहांपर तंडुल पर्वतका निर्माण हुआ। सुरसिद्ध यक्ष जयजयकार कर रहे हैं, भरतेश्वर सुगंधयुक्त पुष्पोंको लेकर जब अर्पण कर रहे थे तब वहांपर पुष्पपर्वत बन गया। अत्यंत सुगंध व सौंदर्यसे युक्त नैवेद्य, भक्ष्यको जिस समय भरतेश्वरने अर्पण किया तो वह कैलासपर्वत पंचवर्णका बन गया, आश्चर्य है। दीपार्चनमें राणियोंके द्वारा प्रेषित आरतियोंको समर्पण किया, इसी प्रकार यह उल्लेख करते हुए कि यह बहुओंके द्वारा प्रेषित आरतियां हैं, यह पुत्रियोंके द्वारा प्रेषित आरतियां हैं। इस प्रकार अपने अवधिज्ञानसे जानते हुए हसते हुए संतोषसे अगणित आरतियोंको समर्पण किया। सम्राटकी पुत्रियां ३२ हजार हैं। ९६ हजार रानियां हैं। इसी प्रकार हजारो बहुए हैं। सबकी ओरसे आरतियां आई थीं। बहुत भक्तिसे जब

धूपका अर्पण किया, वह धूपका धूम जिस समय जिनेंद्रकी कांतिसे युक्त होकर आकाशमें जारहा था तो लोग यह समझ रहे थे कि स्वर्गका यह सुवर्ण सोपान है। सम्राटके करतलमें उत्पन्न एक रत्नलता इंद्रपुरीमें पहुंचरही हो उस प्रकार वह धूमराजि मालुम हो रही थी। फलोंको जिस समय उन्होंने अर्पण किया, उस समय अनेक पर्वत ही तयार हुए। बडे २ गुच्छ व फलोंसे युक्त उत्तम फर्णोंको सम्राटने अर्पण किया, देवगण उस समय जयजयकार कर रहे थे। वहां जैसे २ फल वढते गये व्यंतर उसे गंगामें निकाल निकालकर डाल रहे थे। पुनः अर्चन करनेके लिए उनके हाथमें नवीन फल मिल रहे थे। वहुत आनंदके साथ पूजा होरही है। भरतेश्वरके ६४ हजार पुत्र हैं। उनमें दीक्षा लेकर जो गये हैं उनको छोडकर बाकीके कुमार चामर लेकर भयभक्ति व आनंदसे डोल रहे हैं। इसी प्रकार भरतेश्वरके दामाद ३२ हजार हैं। वे भी इनके साथ भक्तिसे चामर डुला रहे हैं। इस प्रकार कुछ कम एक लाख चामरको उस समय सम्राटने भगवंतके पूजा समारंभमें डुलाया। इसी प्रकार भरतेश्वरके मित्र भी अनेक विधसे पूजासमारंभमें योग देरहे हैं।

फल पूजाके बाद रत्नसुवर्णादिकके द्वारा निर्मित फलपर्वतके समान करोडों अर्घ्योंका अवतरण किया। देवगण जयजयकार कर रहे थे। भगवंतको अर्घ्य उन्होंने कितना चढाया, इसको समझनेके लिए यही पर्याप्त है कि उन अर्घ्योंके ऊपर जो कर्पूर जल रहे थे, उनको देखनेपर कर्पूरपर्वतकी ही पंक्तियोंको ही आग लग गई हो ऐसा मालुम होरहा था। सुंदर मंत्रपाठको उच्चारण करते हुए रत्नकलशोंसे समस्त विश्वको शांति हो इस उद्देशसे भरतेश्वरने शांतिधारा की। इसी प्रकार रत्न, सुवर्ण, चांदी आदिके द्वारा बने हुए एवं सुगंधित पुष्पोंसे पुष्पवृष्टि की, उस समय देवगण जयजयकार कर रहे थे। इसी प्रकार रत्नवृष्टि की गई। बादमें द्वादशगण अपने पुत्र मित्रोंके साथ बहुत आनंदसे आदिनाथ

स्वामीको तीन प्रदक्षिणा दी। चक्रवर्तिके भक्तिप्रमोदको देखकर देवगण प्रसन्न होरहे थे।

जिनेंद्रकी वंदना कर, योगिगण, ब्राह्मण, नरेंद्रवर्ग आदि सबका यथायोग्य सत्कार कर सम्राट आनंदित हुए। सबको भोजनसे तृप्त कर "हमें पूजाकी चिंता है, आपको आपका भानजा योग्य सत्कार कर रहा है। इस बातको मैं जानता हूं" इस प्रकार नमिराज आदि बांधवोंके साथ सम्राटने कहा। युवराज, बाहुबलीके पुत्र महाबल, गृहपति आदियोंने सबकी इच्छाको जानते हुए सबका सत्कार किया। इसी प्रकार मानव, सुर, व्यंतरादिकोंके साथ योग्य विनय व्यवहार कर स्वयं सार्वभौम गंगा तटमें पहुंचे, वहांपर अपने पुत्रोंके साथ एक-मुक्ति की। दिन तो इस प्रकार आनंदसे व्यतीत हुआ। रात्री भी भगवंतकी देहकांतिसे दिनके समान ही थी। पहिलेसे निश्चित समय सब लोग एकत्रित हुए।

अवधिज्ञानधारी तो सब जानते ही थे, बाकीके लोगोंको सूचना दी गई। सब लोग रथोत्सवके लिए उपस्थित हुए। वहांपर कैलासको लगकर अत्यंत सुंदर आठ रथ खडे हैं। मालुम होते हैं कि आठ पर्वत ही हों, देदीप्यमान पंचरत्नके कलश, प्रकाशमान नवरत्नकी मालावोंसे युक्त सुवर्णके रथ, प्रकाशके पुंजके समान थे। उनको देखनेपर कल्पवृक्ष, या सुरगिरीके समान मालुम होते थे। मेरुपर्वतके चारों ओरसे आठ पर्वत हैं, उनको तिरस्कृत करते हुए कैलासको लगकर ये आठ पर्वत शोभित हो रहे हैं बहुत ही सौंदर्यसे युक्त हैं।

अगणित वाद्योंकी घोषणा हुई। भरतेश्वरके इशारेको पाकर वे रथ आठ दिशावोंमें चले गये। इंद्र, अग्नि, यम, नैरुत्य, वरुण, वायव्य, कुबेर, ईशान, इस प्रकार आठ दिशावोंकी ओर आठ रथ चलाये गये। वे इस बातको कह रहे थे कि भगवंत आठ कर्मोंको नष्ट कर आठगु-णोंको प्राप्त करनेवाले हैं। इसकी सूचना भरतेश्वरने आठ दिशावोंको

भेज दी है। आकाशसे देवगण पुष्पवृष्टि कर रहे हैं। इसके साथ ही रथोंके चक्रका शब्द होरहा है।

इस बीचमें व्यंतर व विद्याधरोंने भी अगणित सुंदररथोंका निर्माण किया था। वे भरतेश्वरकी अनुमतिकी प्रतीक्षामें थे। उसे जानकर भरतेश्वने उन्हें निश्चित बनाया। देवगण! मेरे रथ जमीनपर चले, आप लोगोंके रथोंको आकाशपर चलाईये। उत्सवमें प्रभावना जितने अधिक प्रमाणसे हो उतना ही उत्तम है। आप लोग कौन हैं? मेरे ही तो हैं। षट्खंडके भीतर रहनेवाले हैं। इसलिए आनंदसे चलाईये। मुझे इसमें हर्ष है। इस प्रकार कहनेपर सबको आनंद हुआ। देवदुंदुभिके साथ देवनृत्य होने लगा, तब गंगादेव और सिंधुदेवके रथ चले गये। इसी प्रकार विद्याधरियोंके नृत्यवैभवके साथ नमिराज व विनमिराजके रथ चले गये, सब लोग जयजयकार कर रहे हैं। गणबद्ध देवोंके रत्नरथ जाने लगे। इसी प्रकार महावैभवसे वरतनु, प्रभासेंद्र, विजयार्धदेवके रथ जाने लगे। हिमवंत देवका रथ प्रत्यक्ष हिमवान पर्वतके समान ही मालुम होरहा था। तदनंतर कृतमाल नाट्यमाल देवके रथ चलेगये। इस प्रकार बारह मित्रोंके रथोत्सव होनेपर सम्राट्ने उनको बुलाया व हर्षसे आलिंगन दिया एवं उनको अनेक रत्नादिक प्रदानकर संतुष्ट किया। तब उन मागधादि व्यंतरमुख्योंने सम्राट्के चरणमें नमस्कार किया एवं कहने लगे कि राजन्! आपके ही प्रसादसे हमारी महत्ता है। बडे हाथी आगे बढने पर उसके पीछे बालोंके छोटे छोटे हाथी आते हैं, उसी प्रकार आपके साथ हम भी आत्मसुखका अनुभव करते हैं। इस प्रकार प्रतिनित्य नवीन रथ, नवीन पूजा, नवीन नृत्य एवं नवीन रस रसायनका भोजन, इस प्रकार उस भाग्यशालीको नवीन नवीन आनंद! इस प्रकार चौदह दिन व्यतीत हुए।

अंतिम दिनके तीसरे प्रहरमें उपस्थित सर्वप्रजाओंके सत्कारके लिए सार्वभौमने संघपूजाकी व्यवस्था की। उसका क्या वर्णन करें! चौपदी,

गणधरोंको भक्तिसे नमस्कार कर उनकी अनुमतिसे चतुस्संघको भरतेश्वरने सन्मानित किया। जपसर, पुस्तक, पिंछ, आदि उपकरण मुनियोंको वस्त्रादि अर्जिकाओंको एवं व्रतियोंको प्रदान कर सन्मान किया। इसी प्रकार ब्राम्हणोंको सुवर्ण, रत्न व दिव्यवस्त्रको प्रदान करते हुए करोडों ब्राम्हणदंपतियोंका सन्मान किया। आनंदको प्राप्त ब्राम्हण भरतेश्वरकी शुभकांक्षा करते हुए आशीर्वाद दे रहे हैं। परदारसहोदर हमारे राजा अपने पुत्रकलत्रोंके साथ हजारों वर्ष जीवें, इस प्रकार ब्राम्हणस्त्रियां आशीर्वाद दे रही हैं। इसी प्रकार मागधादि व्यंतरोंका भी पुनः सन्मान किया। चिंतामणि रत्नके होनेपर किस बातकी कमी है। इसी प्रकार गंगादेव, सिंधुदेव, नमि, विनमि आदिका भी रत्नाभरणोंसे सन्मान किया। शेष बचे हुए दामाद, राजपुत्रादिके सन्मानके लिए अपने पुत्रोंको नियत किया। भरतेश्वरने उनसे कहा कि दान, पूजा स्वहस्तसे होनी चाहिये, इसलिए आप लोग मेरे प्रतिनिधि हों। सबका यथायोग्य सन्मान करो। पुत्रोंने भी आनंदसे इस कार्यको स्वीकार किया। आकाशमें कई विमान लेकर खडे हुए एवं ऊपरसे सबको वस्त्ररत्नादि प्रदान करने लगे। दाताके हाथ ऊपर पात्रके हाथ नीचे, यह लोकोक्ति उस समय चरितार्थ हुई। भूमिपर खडे हुए जो हाथ पसार रहे थे, सबको उन्होंने इच्छित पदार्थ प्रदान किया। समुद्रके जहाजके समान उनका विमान आकाशमें सर्वत्र जारहा है एवं लोगोंको किमिच्छक दानसे तृप्त कर रहा है। अनेक प्रकारके दिव्य वस्त्रोंकी बरसात हो रही है। कल्पवृक्ष स्वयं ऊपरसे उतर रहा हो उस प्रकार वे इच्छित पदार्थोंकी वृष्टि कर रहे हैं। आदिराजके हाथमें जो चिंतामणि रत्न था वह चिंतित पदार्थको प्रदान करनेवाला है। फिर किस बातकी चिंता है। उस विशाल प्रजा समूहको वे विनोदमात्रसे संतुष्ट कर रहे थे। दो पुत्रोंके वश नवनिधियोंको सार्वभौमने किया था। वे तो इच्छित पदार्थको तत्क्षण देते हैं। अतः निमिषमात्रसे सबको संतुष्ट किया। विविध

आभरणोंको पिंगलनिधि, वस्त्रको पद्मनिधि, सुवर्ण राशिको शंखनिधि, रत्नराशिको रत्ननिधि, भिन्नरससे युक्त धान्यको पांडुकनिधि, जब प्रदान करती है तो उन पुत्रोंको अगणित प्रजावोंको तृप्त करनेमें दिक्कत ही क्या है ?

इसके बाद सम्राट्ने गंगादेव, सिंधुदेव, नमि, विनमि आदिका सन्मान करते हुए कहा कि आप और हम पूजक थे। इसलिए पहिले आपलोगोंका सन्मान नहीं किया, अब आपका मैं सन्मान करता हूं। लीजिये, यह रत्नादिक। तब उन लोगोने उन आभूषणोंको नहीं लिये तो सम्राट्ने कहा कि तब आप लोग ही दीजिये। मैं लेता हूं। तब उन्होने भरतेश्वरको भेंटमें अनेक अनर्घ्य वस्त्राभरणादि दिये तो भरतेश्वरने आनंदके साथ लिये व फिर भरतेश्वरके देनेपर उन्होने भी लिए। इस प्रकार नमि विनमि, भानुराज विमलराज आदियोने भी परस्पर विनोदके साथ सन्मान प्राप्त किया। विशेष क्या ? लोकमें अब दारिद्र्य नहीं रहा, चौदह दिन महावैभवसे पूजा हुई। किमिच्छक दान हुआ। सम्राट्के पूजाव्रतका यह उद्यापन ही है। उस चौदहवें रात्रीको भी रथोत्सव हुआ। चौदह दिनतक रात्रिंदिन धर्मका अतुल उद्योत हुआ। करोडों वाद्योंकी ध्वनिसे सर्वत्र आनंद छाया था। समुद्रके समान ही गंगातटकी हालत होगई थी। एक दिन नहीं, दो दिन नहीं, चौदह दिनतक जो महावैभवसे पर्वतप्राय सामाग्रियोंसे पूजा हो रही थी। अर्पित पदार्थको देवोंने समुद्रमें डाल दिया था। वहांपर उन फलाक्षतादिकोंको मगर मच्छ तिमिंगिल आदि भी पूर्णतः खा नहीं सके। बचे हुए पर्वतप्राय पदार्थ पानीके ऊपर तेर रहे हैं। गुलाबजल चंदन आदिके कारणसे सर्व दिशा सुगंधित होरही थी। इसी कारणसे वायु भी सुगंध हो चला था, तभी वायुको गंधवाहक नाम पड गया है।

स्वर्गके देव भरतेशके वैभवकी प्रशंसा करने लगे, रथोत्सव होनेके बाद उस अंतिम रात्रीको देवेंद्र ऐरावतपर चढकर स्वर्गसे नीचे उतरा। अनर्घ्य रत्नाभरणको धारण कर रत्नमय मुकुटकी प्रभाको दशों दिशाओंमें फैलाते हुए एवं रंभामेनकाके नृत्यको देखते हुए देवेंद्र आरहा है।

देवेंद्रके साथ स्वर्गकी वे देवियां आरही हैं, एवं गारही हैं, नृत्य कर रही हैं। पूर्वसमुद्रमें पडे हुए पूजा द्रव्य, पर्वतोंके समान उपस्थित रथ व विश्वमें व्याप्त जनताको देखकर देवेंद्र आश्चर्य चकित होरहा है। चक्रवर्तिके द्वारा किये हुए पूजनके चिन्ह सर्वत्र दृष्टिगोचर होरहे हैं, भूमि और पर्वत सर्व सुगंधमय हो गये हैं। चक्रवर्तिकी अतुलभक्तिके प्रति देवेंद्र प्रसन्न होरहा है, शिर डोल रहा है, साथमें आश्चर्य कर रहा है। कैलासके पासमें आनेपर देवेंद्र हाथीसे नीचे उतरा व उन्होंने भगवान् आदि प्रभु व मुनियोंको शची महादेवीके साथ नमस्कार किया। बादमें शची देवीको अलग रखकर स्वयं भरतेश्वरके पास गया व पूजा वैभवसे प्रसन्न होकर सार्वभौमको आलिंगन दिया। एवं प्रशंसा की कि सचमुचमें आदिप्रभुने लोकमें अनर्घ्यताको प्राप्त किया। साथमें उन्होंने तीन लोकको चकित करनेवाले पुत्ररत्नको प्राप्त किया धन्य है। इस प्रकार भगवान् आदिदेव आत्मयोगमें मग्न हैं। उपस्थित सर्व भक्तगण आनंदसे पुण्यसंचय कर रहे हैं।

भरतेशके वैभवको इस प्रकरणमें पाठक देख चुके हैं। वे सुविशुद्ध आत्मज्ञानी हैं, तथापि उन्होंने व्यवहारधर्मकी उपेक्षा नहीं की। व्यवहार धर्ममें भी वे इतने चतुर हैं कि उनके पूजावैभवको देखकर विश्वकी प्रजायें चकित होजाय एवं देवेंद्र भी आश्चर्य करें। इसलिए वे सदा व्यवहारको न भूलते हुए ही निश्चयकी आराधना करते थे। उनकी सदा यह भावना रहती थी कि—

हे चिदंबरपुरुष! व्यवहार धर्मका उद्यापन कर सुविशुद्ध निश्चयकी प्राप्तिके लिए हे अमृतमाधव! मेरे हृदयमें सदा अविचलरूपसे बने रहो!

हे सिद्धात्मन्! आप विश्व विद्याधर हैं, विश्वतो लोचन हैं, विश्वतो मुख हैं, विश्वतोऽशु हैं, विश्वेश हैं। इसलिए हे दुष्कर्मतृणलोहिताश्व! प्रभु निरंजनसिद्ध! मुझे सन्मति प्रदान कीजिये।

इति तीर्थेशपूजासंधिः।

अथ जिनमुक्तिगमनसंधिः

भगवंतके पूजा महोत्सवमें रात बीत गई, प्रातःकालमें सूर्योदय होनेपर उपस्थित सर्व जनता जयजयकार करते हुए भगवंतकी वंदनाके लिए सन्नद्ध हुई। सूर्यका उदय होनेपर भी कोटि सूर्यचंद्रके प्रकाशको धारण करनेवाले भगवंतके सामने सूर्यका तेज फीका ही दिख रहा है, एक मामूली दीपकके समान मालुम होरहा है। एक सुवर्णकी थालीके समान दिख रहा है। घातिक चतुष्टयको नाशकर भगवंत पहिले परंज्योति बन गये हैं। अब चार अघातिया कर्मोंको नष्ट करनेके लिए भगवंत तैयार हुए। घातिया कर्मोंकी ६३ प्रकृति तो पहिलेसे खाली होगई हैं। अब घातिया कर्मोंकी ८५ प्रकृतियोंको नष्ट करनेके लिए भगवंतने तैयारी की। इन ८५ प्रकृतियोंका समूह अब दो भेदसे विभक्त होकर नाशको पाते हैं। भगवंत उनको अपने आत्मप्रदेशसे दूर करते हैं।

असाता वेदनीय, देवगति, औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्मण शरीर, पंच बंधन, पंच संघात, संस्थान छह, अंगोपांग तीन, षट्संहनन, पंच प्रशस्तवर्ण, (पंच अप्रशस्तवर्ण,) गंधद्वय, पंच प्रशस्तरस, (पंच अप्रशस्त रस,) अष्ट स्पर्श, देवगत्यनुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, अप्रशस्त विहायोगति, अपर्याप्तक, प्रत्येक शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति, निर्माण व नीच गोत्र इस प्रकार ७२ प्रकृतियां अयोगकेवली गुणस्थानके द्विचरम समयमें आत्मासे अलग होती हैं। इसी प्रकार सातावेदनीय, मनुष्यायु, मनुष्यगति, पंचेंद्रिय जाति, मनुष्य गति प्रायोग्यानुपूर्वी, त्रस, बादर, पर्याप्तक, सुभग, आदेय, यशःकीर्ति, तीर्थकर व उच्चगोत्र इन प्रकृतियोंका अयोगकेवली गुणस्थानके चरम समयमें अंत होता है। इस प्रकार अघातिया कर्मोंके समस्त

८५ प्रकृतियोंको तीर्थंकरयोगी आत्मासे अलग करते हैं। आत्माको छोडकर शेष सर्व पदार्थ मेरे नहीं हैं, उनसे मेरा कोई संबंध नहीं है इस बातका निश्चय पहिलेसे तीर्थंकर योगीको है। जगत्‌के अग्रभागमें स्थित सिद्ध भी जब उनसे भिन्न हैं तो जगत्‌की बात ही क्या है! अब तीन शरीरोंको दूरकर मुक्ति प्राप्त करना ही शेष है। इसलिए उस कार्यमें भगवान् उद्युक्त हुए। अब तो उनकी दशा तो ऐसी है कि स्फटिकके पात्रमें दूध भरा हो तो जो निर्मलता है, उससे भी बढकर निर्मलताको प्राप्त शरीरमें आत्मा विशुद्ध भावोंमें डुबकी लगा रहा है। अत्यंत विशाल क्षीरसमुद्रको एक घडेमें भरनेके समान विशाल आत्माको इस देहमें भर दिया है, उसका साक्षात्कार भगवंत कररहे हैं। आकाशको एक गजसे मापनेके समान, त्रिलोकको भी न कुछ समझनेके समान एवं करोडों समुद्रोंको सरलतासे पार करनेवालेके समान अत्यंत निराकुलता वहां छाई हुई है। शरीररूपी कुंभमें स्थित आत्मरूपी क्षीरसमुद्रमें सम्यक्त्व पर्वतरूपी मंथनको चिद्भावकी रस्सी लगाकर मथित कररहे हों, उस प्रकार उस ध्यानकी दशा थी। वहांपर घडा, दूध, मंथा, रस्सी आदि सभी भिन्न २ हैं। यहांपर केवल घडा भिन्न है, बाकी सर्व एक रूप होकर मंथनक्रिया होरही है। आठ क्षायिक गुणोंमें चार गुणोंकी प्राप्ति तो पहिलेसे ही भगवंतको होचुकी है। अब रहे हुए चार गुणोंकी प्राप्तिके लिए गुणगुणी भेदको भुलाकर भगवान् अपने आत्मस्वरूपकी ओर देखरहे हैं एवं दुर्गुण कर्मोंको दूर कररहें हैं। कर्मके स्वरूपमें ही स्थित तैजसकार्मणोंको परमात्माने अब निस्तेज बना दिया है। अब तो वे प्रकाशमें ही डुबकी लगारहे हैं, प्रकाशमें ही स्नान कररहे हैं, प्रकाशमें ही जलक्रीडा कररहे हैं। इस प्रकार प्रकाशमय परमात्मामें वे मग्न हैं। एक दफे प्रकाश तेज व फिर मंद, इस प्रकारके परिवर्तनसे युक्त धर्मध्यान वहां पर नहीं है। वहांपर परमशुक्लध्यान है, इसलिए शरीरमें सर्वत्र निर्मलात्माका ही दर्शन होरहा है। शरीररूपी घडा फूट-

कर आत्मारूपी दूध लोकमें सर्वत्र व्याप्त होरहा हो, इस प्रकार वहांपर आत्मदर्शनमें निर्मलता बढी हुई है। उस ध्यानकी महिमाको भगवंत ही जाने।

आयु कर्म तो वृद्ध होचुका है। वेदनीय, नाम व गोत्र कर्म अभीतक जवानीमें हैं। उनको अब प्रयत्नसे वृद्ध करना चाहिये। इसलिए अब भगवंतने वेदनीय नाम व गोत्रको वृद्ध बनानेका उद्योग किया। विशेष क्या, दंडके बलसे तीन शत्रुओंको दमन कर उनको चौथे शत्रुके वशमें देते हुए चारोंको एकदम नष्ट करनेके उद्योगमें अब वीतराग लगे हैं। आत्माको अब दंडाकारके रूपमें विचार किया तो वह निर्मल आत्मा शरीरसे बाहर दंडके आकारमें उपस्थित हुआ। पाताल लोकसे लेकर सिद्धलोकतक वह आत्मा अत्यंत शांतरूपसे चौदह रज्जुके प्रमाणमें दंडाकारमें उपस्थित है। स्वतःके शरीरसे तिगुने आयत प्रमाणमें परमात्मा उस समय तीन लोकके लिए एक स्फटिकके खंभेके समान खडा है। उसे अब हस्तपादादिक नहीं है। पुनः कपाट आकृतिके लिए विचार किया तो एकदम दक्षिणोत्तर फैलकर तीन लोकके लिए एक किवाडके समान बनगये। अब सातरज्जु चौडाईमें, चौदह रज्जु ऊंचाईसे एवं स्वशरीरके तिगुने घनप्रमाणमें अब वह परमात्मा विद्यमान है। उसके बादर प्रतरका प्रयोग हुआ तो त्रिलोकरूपी विशाल कुंभमें आत्मामृत तत्क्षण भरगया। जिस प्रकार ओस त्रिलोकमें भरजाती है उसी प्रकार आत्मा त्रिलोकमें भर गया है। अब लोकपूरणकी ओर बढगया, पहिले वातवलयके प्रदेश छूट गये थे। अब उन वातवलयोंके प्रदेशको भी लेकर आत्मा सर्वत्र भरगया। तीन लोकमें अब यत्किंचित् स्थान भी शेष नहीं है। कैलासकी शिलापर औदारिक था। परंतु तैजस कार्माण तो तीन लोकमें व्याप्त होगये थे। और उनके साथ ही परमात्मकला भी थी। तदनंतर लोकपूरणके बाद पुनः प्रतर, कपाट व दंडाकारमें आकर अपने शरीरमें वह परमात्मा प्रविष्ट हुआ। जिस प्रकार एक गीले वस्त्रको निचोडकर फैलानेपर हवासे वह सूख जाता है, उसी प्रकार आत्माको फैलानेपर परमात्माके कर्मरूपी द्रव्यपरमाणु सूख गये।

आदिराजसे तपोवनको चलनेके लिए कहनेसे पहिले ही वह उठ खडा हुआ। और दोनों दीक्षाके लिए निकले। सेवकोंने चमर ढोलते हुए दो सुंदर विमानको लाकर सामने रख दिया तो एक विमान पर अर्ककीर्ति चढ गया। दूसरे विमानपर आदिराजको चढनेके लिए कहा। आदिराजने उसको निषेध किया कि मैं सामान्य रूपसे ही आवूंगा। वहांपर उसने कहा कि वह राजनीतिको छोडना नहीं चाहता है। चमर, विमान आदि तो पट्टाभिषिक्त राजाके लिए चाहिए, युवराजके लिए क्या जरूरत है? अविवेकके आचरणको कौन कर सकते हैं। इसे मैं नहीं चाहता हूं।

अर्ककीर्तिने अग्रह किया कि भाई! अब तो अपने मोक्षपथिक हैं, इसे मोक्षयान समझकर बैठनेमें हर्ज नहीं, तथापि वह तैयार नहीं हुआ कहने लगा कि दीक्षा लेनेतक राज्यांगके संरक्षणकी आवश्यकता है।

बडे भाईके उस विमान और चमरके साथ चढनेपर आदिराजने भी एक पलकीपर चढकर वहांसे प्रयाण किया। महलमें उन छोटे बच्चोंको पालनेवाली दो दासियां रहगई हैं। बाकी सभी स्त्रियां उनके योग्य सुवर्ण पलकियोंपर चढकर इनके पीछेसे आ रही हैं। सारा देश ही निर्वेगरसमें मग्न हुआ है, इसलिए वहांपर रोनेवाले रोकनेवाले वगैरे कोई नहीं है। अतएव विशेष देरी न करके ही राजेंद्र अर्ककीर्ति आगे बढे। नगरसे बाहर पहुंचकर भरतेश्वरने जिस जंगलमें दीक्षा ली, थी उसी जंगलमें प्रविष्ट हुए। और वहांपर एक चंदनवृक्षके समीप अपने विमानसे उतरे। सबलोग जयजयकार कर रहे थे। पलकीसे उतरे हुए आदिराजको भी बुलाकर अपने पास ही खडा करलिया। बाकी सभी जरा दूर सरककर खडे हुए और स्त्रियां भी कुछ दूर अलग खडी होगई।

गुरु हंसनाथको ही अपना गुरु समझकर दूसरोंकी अपेक्षा न करते हुए अपने आप ही दीक्षित होनेके लिए सन्नद्ध हुए। वे भरतेश्वरके ही तो पुत्र हैं।

पिताकी दीक्षाके समय जिस प्रकार परदा धरा था उसी प्रकार इनका भी परदा धरा गया। पिताने जिस प्रकार दीक्षा ली उसी प्रकार इन्होंने भी दीक्षा ली, इतना ही कहना पर्याप्त है। भरतेशके समान ही

दीक्षा ली। परंतु भरतेशके समान अंतर्मुहूर्त समयमें कर्मोंका नाश उन्होंने नहीं किया। कुछ समय अधिक लगा।

निर्मल शिलातलपर दोनों भाई कमलासनमे बैठ गये। और सम-ऋजुदेहसे विराजमान होकर आंख मींचली एवं चंचलमनको स्थिर किया।

आंखमीचने मात्रसे भाई भाईका संबंध भूल गये। अब वहांपर कोई भ्रातृमोह नहीं है। मनकी स्थिरता आत्मामें होते ही उन्हें शरीर भिन्न रूपसे अनुभवमें आने लगा।

हरपदार्थका मोह तो पहिलेसे नष्ट हुआ था। सहोदरस्नेह भी अब दूर हो गया है। इसलिए अब उन योगियोंको परमात्मकलाकी वृद्धिके साथ कर्मका निर्जरा हो रही है।

लोकमें स्नेह (तेल) का स्पर्श होनेपर अग्नि अधिक प्रज्वलित होती है। परन्तु ध्यानाग्नि तो स्नेह मोह] के संसर्गसे बुझ जाती है। स्नेह जितना दूर हो जाय उतना ही यह ध्यान बढता है, सचमुचमें यह विचित्र है।

बाहिरके लोग समझते थे कि यह बडा भाई है, बडा तपस्वी है, यह छोटा भाई है, छोटा तपस्वी है। परन्तु अंदर न छोटा है और न बडा है। दोनोंके हृदयमें चिदानंदमय प्रकाश बराबरीसे बढ रहा है।

लोकमें वय, शरीर, वंश आदिके द्वारा मनुष्योंमें भेद देखनेमें आता है, परन्तु परमार्थसे आत्माको देखनेपर वहां कुछ भी भेद नहीं है।

हाय! उनके ध्याननिष्ठुरताका क्या वर्णन करना। कपासकी राशिपर पडी हुई चिनगारीके समान कर्मकी राशिको वह ध्यानाग्नि लग गई। वर्णन करते हुए विलंब क्यों करना चाहिये। उन दोनों तपोधनोंने अपने विशुद्ध ध्यानबलके द्वारा घातियाकर्मको एक साथ नष्ट किया। आश्चर्य है, ढाई घटिकामें कर्मोंको नष्ट करनेका महत्व मिनटोंके लिए रहने दो, शायद इसीलिए कुछ अधिक समय लेकर करीब चार घटिकामें उन्होंने घातिया कर्मोंको नष्ट किया।

पिताने दीक्षा लेते ही केवलारोहण किया। परन्तु इन्होंने थोड़ा लेकर चार घटिका तक आत्मारामने विश्रान्ति लेकर केवलारोहण किया। प्रेमियोंमें तो अंतर्मुहूर्त ही लगा।

कर्मोंको उन्होंने किस क्रमसे नष्ट किया यह भुजबलियोगीके श्रेण्यारोहणके समय गिनाया है, उसी प्रकार समझ लेना चाहिए। कर्मोंके नाश होनेपर भरत बाहुबलीके समान ही गुणोंको प्राप्त किया।

कर्कश कर्मोंके दूर होनेपर अर्ककीर्ति और आदिराज कोटिचंद्रार्क प्रकाशको पाकर इस भूतलसे ५००० धनुषप्रमाण आकाश प्रदेशमें जा विराजे। चारों ओरसें सुर नरोरगदेव जयजयकार करते हुए आये। विशेष क्या? दोनों केवलियोंको अलग २ गंधकुटीका निर्माण किया गया। कमलको स्पर्श न करते हुए कमलासनपर दोनों परमात्मा विराजमान हैं। सर्व भव्य जनोंने आकर पूजा की, स्तोत्र किया। वहां महोत्सव हुआ।

देवेंद्रके प्रश्न पूछनेपर भरत सर्वज्ञने जिस प्रकार उपदेश दिया उसी प्रकार इन केवलियोंने भी धर्मचर्चा की। भरतजिनने जिस प्रकार स्त्रियोंको दीक्षा दी थी, उसी प्रकार इन्होंने भी स्त्रियोंको दीक्षा दी।

उद्दंडमति, अष्टचंद्रराजा, अयोध्यांक एवं कुछ अन्य राजावोंने भी दीक्षा ली। ज्ञानकल्याणकी पूजा कर देवेंद्र स्वर्गलोकको चला गया। परन्तु प्रतिनित्य अनेक भव्यगण, तपोधन आनंदसे वहांपर आते थे एवं केवलियोंका दर्शन लेते थे। श्री कुंतलावती व कुसुमाजी साध्वीको बहुत ही हर्ष हो रहा। अभी उनके हृदयमें पुत्रभावनाका अंश विद्यमान है। इन दोनोंके हृदयमें मातृमोह नहीं है। परंतु मातावोंके हृदयमें अभीतक पुत्रभावना विद्यमान है। यह तो कर्मकी विचित्रता है। वह शरीरके अस्तित्वमें बराबर रहता ही है।

पाठकोंको पहिलेसे ज्ञात है कि बाहुबलिके तीनपुत्र और अनंतसेनेंद्र आदि राजा पहिलेसे ही दीक्षा लेकर चले गये हैं। अर्ककीर्ति और आदिराजने स्वयं ही दीक्षा ली। परंतु उन सबने गंधकुटी पहुंचकर जिनगुरु साक्षीपूर्वक दीक्षा ली है। परंतु ये तो पिताके तत्वोपदेशको बार २ सुनकर पिताके समान ही आत्माको देखते हुए स्वयं दीक्षित हुए। अन्य लोगोंको वह सामर्थ्य क्योंकर प्राप्त होसकता है।

अपने अंतरंगको देखकर जो आत्मानुभव करते हैं, उनको आत्मा ही गुरु है। परंतु जिनको आत्मानुभव नहीं है, उनको दीक्षित होनेके लिए अन्य गुरुकी आवश्यकता है। यही निश्चय व्यवहारकला है। स्याद्वादका रहस्य है।

किसी वस्तुके खोनेपर यदि स्वयंको नहीं मिले तो दूसरे अपने स्नेही बंधुवोंको साथ लेकर ढूंडना उचित है। यदि वह पदार्थ स्वयंको ही मिल गया तो दूसरोंकी सहायता क्या जरूरत है।

इन सहोदरोंके दीक्षित होनेके बाद कनकराज, कांतराज, आदि सालोंने भी दीक्षा ली, इसी प्रकार उनके माता पिता, भाई आदि सभी दीक्षित हुए। एवं सर्व बहिनोंनें भी दीक्षा ली। मावाजी रत्नाजी, कनकावली आदि बहिनोंनें भी अपने पतियोंके साथ ही वैराग्यभरसे दीक्षा ली।

भरतेश्वरके रहनेपर तो यह भरतभूमि संपत्ति वैभवसे भरित थी। परंतु उसके चले जानेपर वैराग्य समुद्र उमड पडा। एवं सर्वत्र व्याप्त होगया।

मोहनीय कर्मका जब सर्वथा अभाव हुआ तभी ममकारका अभाव हुआ। अब तो ये केवली परमनिस्पृह हैं। इसलिए दोनों केवलियोंकी गंधकुटी भिन्न २ प्रदेशके प्राणियोंके पुण्यानुसार भिन्न २ दिशामें चली गई। सब लोग जयजयकार कररहे थे।

पिताने घातियाकर्मोंको नष्ट कर दूसरे ही दिन मोक्षको प्राप्त किया। परंतु इनको घातिया कर्मोंको नष्ट करनेके बाद कुछ समय विहार करना पडा। पिताके समान घातिया कर्मोंको तो शीघ्र नष्ट किया। परंतु अघातिया कर्मोंको दूर करनेके लिए कुछ समय अधिक लगा।

पिताने अपने आयुष्यके अवसानको जानकर दीक्षा ली थी। परंतु इन्होंने आयुष्यका बहुतसा भाग शेष रहनेपर भी दीक्षा ली है। इसलिए आयुष्यको व्यतीत करनेके लिए गंधकुटीमें रहकर कुछ समय विहार करना पडा, जिससे जगत्को परमानंद प्राप्त हुआ।

अर्ककीर्ति और आदिराजकेवलीका विहार कलिंग, काश्मीर, [illegible], कर्णाट, पांचाल, सौराष्ट्र, नेपाल, मालव, [illegible], काशि, [illegible], [illegible], बर्बर, सिंधु, पल्लव, मगध, और तुर्कस्थान आदि सभी देशोंमें हुआ। सर्वत्र उपदेशामृतको पान कराकर सबको संतुष्ट किया।

जहां तहां भव्योंने उपस्थित होकर केवलियोंकी अर्चा की पूजा की, वंदना की, और आत्महितको पूछनेपर दिव्यध्वनिसे आत्मसिद्धिके मार्गको निरूपणकर उनका उद्धार किया।

विशेष क्या वर्णन किया जाय ! बहुत समयतक धर्मवर्षा करते हुए दोनों केवलियोंने विहार किया एवं लोकमें धर्मपद्धतिका प्रकाश किया। अब आयुष्यका अंत समीप आया तो उन्होंने समाधियोगको धारण किया।

अर्ककीर्ति केवलीने रौप्यपर्वतसे अघातिया कर्मोंको नष्ट कर मुक्ति प्राप्त किया। देवेंद्र आया व निर्वाणपूजा कर चला गया। इसी प्रकार कुछ दिनके बाद आदिकेवलीने भी अघातिया कर्मोंको नष्ट कर उसी पर्वतसे मुक्तिको प्राप्त किया। अंतिममंगलविधि तो पूर्वोक्त प्रकारसे ही की गई। वृषभनाथ हंसनाथ आदि भरतपुत्रों एवं बाहुबलिके पुत्रोंने भी जहां तहां गिरिवननदीतटोंमे तपश्चर्या कर मुक्तिको प्राप्त किया।

अर्जिकावोंने घोर तपश्चर्याकर स्त्रीपर्यायको नष्ट करते हुए पुरुष होकर स्वर्गमें जन्म लिया।

आदिप्रभुके निर्वाणके बाद चक्रवर्तिकी माताओंको स्वर्गलोककी प्राप्ति हुई। भरतेशके मोक्ष जानेके बाद उनकी रानियोंको भी स्वर्गलोकमें पुरुषत्वकी प्राप्ति हुई। आदिनाथके नंतर ही कच्छ महाकच्छ योगियोंको मोक्षकी प्राप्ति हुई, और भरतेशके बाद बाहुबलि नमि विनमि व वृषभसेन को मुक्तिकी प्राप्ति हुई। प्रणयचंद्र, गुणवसंतक मंत्रीने आदिचक्रेशकी अनुमतिसे आदिनाथसे दीक्षा ली, एवं तपश्चर्याकर मोक्षको चले गये। दक्षिण नागर आदि भरतेशके आठ मित्र, मंत्री व सेनापति भी दीक्षित होकर मुक्ति चले गये। वे भरतेशको छोडकर अन्य स्थानमें कैसे रह सकते हैं!

अब किस किसका नाम लें ! मरीचिकुमारको छोडकर बाकीके सर्व भरतेश्वरके पुत्र व भाई सबके सब मोक्षधाममें पहुंचे।

सम्राट्के जामाताओंमें कुछ तो स्वर्गमें और कुछ तो मोक्षमें चले गये, और पुत्रियोंने विशिष्ट तपश्चर्याकर स्वर्गलोकमें पुरुषत्वको प्राप्त किया।

विमलराज, कमलराज और भानुराजने मुक्तिको प्राप्त किया। शेष बांधवोंमें किसीने स्वर्ग और किसीने मोक्षको क्रमसे प्राप्त किया।

देवकुलको दीक्षा नहीं है, इसलिए गंगादेव और सिंधुदेव अपनी देवियोंके साथ घरमें ही रहे। नहीं तो वे भी घरमें नहीं रह सकते थे। इसी प्रकार मागधामरादि व्यंतरेंद्र भी विवश होकर महलमें ही रहे। वे दीक्षित नहीं हो सकते थे, नहीं तो उस गुणोत्तम आदिचक्रेशके वियोग सहन करते हुए इस भूभागमें कौन रह सकते हैं?

वह भरतेश्वर गुरुहंसनाथपर मुग्ध होकर चेतोरंगमें उसे देखते थे तो सागरांत पृथ्वीके प्रजाजन उनकी वृत्तिपर प्रसन्न थे। आत्माराम-पर कौन मुग्ध नहीं होंगे?

उसे जाने दो। वायुकी सामर्थ्यसे वृद्धत्वको प्राप्त न करते हुए सदा जवानीमें रहना क्या आश्चर्यकी बात नहीं है? ९६ हजार रानियोंमें यत्किंचित् भी मत्सर उत्पन्न न होने देते हुए रहनेवाले विवेकीपर कौन मुग्ध नहीं होंगे? परिग्रहोंको त्याग कर सभी मनःशुद्धिको प्राप्त करते हैं। परंतु परिग्रहोंको ग्रहण करते हुए आत्मविशुद्धि करनेवाले कौन हैं? संपत्तिके होनेपर नीचवृत्तिसे चलनेवाले लोकमें बहुत हैं, भरतेश्वरके समान सकलैश्वर्यसे संपन्न होकर गंभीरतासे चलनेवाले कौन हैं? दूरद-र्शितासे विषयको जाननेका प्रकार, बुद्धिमत्तासे बोलनेका क्रम, प्रजा परिवारके पालनका प्रबंध, आजके सुख और कलकी आत्मसिद्धिकी ओर दृष्टि, यह सब गुण भरतेश्वरमें भरे हुए थे। मित्रोंका विनय, मंत्रियोंका परामर्श, सेनापति, मागधामरादिका स्नेह, सत्कवि और विद्वानोंका समादर लोकमें चक्रेशके समान और किसे प्राप्त होसकते हैं?

माता पिताओंकी भक्ति, बहिनोंकी प्रीति, सालोंकी सरसता, पुत्र पुत्रियोंका प्रेम और सबसे अधिक स्त्रियोंका संतोष भरतेश्वरके समान किसे प्राप्त हो सकते हैं। राज्यपालनके समय कोई चिंता नहीं, तपश्च-र्याके समय कोई कष्ट नहीं। संतोषमें ही थे, और संतोषके साथ ही मुक्ति गये। धन्य है।

मुक्तात्मा सभी सदृश हैं। परंतु संसारमें अतुल भोगके बीच रहने-पर भी आत्मशक्तिको जानकर क्षणमात्रमें मुक्तिको प्राप्त करनेवाली

युक्तिके प्रति मेरा हृदय आकृष्ट हुआ। पिताको दो रानियोंके रहनेपर भी हजार वर्ष तपश्चर्या कर मुक्ति जाना पडा, कुछ कम लाख रानियोंके होते हुए भी भरतेश्वरने क्षणमात्रमें मोक्ष प्राप्त किया। यह आश्चर्य है। इसमें छिपानेकी बात क्या है? प्रथमानुयोगमें प्रसिद्ध त्रेसठशलाका पुरुषोंमें इस पुरुषोत्तम—भरतेश्वरको सर्वश्रेष्ठ समझकर उसकी प्रशंसा संतोषके साथ मैंने की।

भोगोंके बीचमें रहते हुए भी हंसनाथके योगमें मग्न होकर क्षण-मात्रमें मुक्तिको प्राप्त होनेवाले भरतभास्करका यदि वर्णन नहीं करें तो रत्नाकरसिद्ध आत्मसुखी कैसे हो सकता है, वह तो गंवार कहलाने योग्य है।

श्रृंगारके वशीभूत होकर भोगकथाओंको सुनते हुए भव्यगण न बिगडे इस हेतुसे अंगसुखी और मोक्षसुखी भरतेश्वरका कथन श्रृंगारके साथ वर्णन किया।

मैंने काव्यमें दुष्ट, दुराचारी व नीच सतियोंका वर्णन नहीं किया है। सातिशय पुण्यशील भरतेश्वर व उनकी स्त्रियोंका वर्णन किया है। जो इसे स्मरण करेंगे उनको पुण्यका बंध होगा।

इस कथानकको मैंने जब वर्णन किया तब लोकमें बहुतसे लोगोंको हर्ष हुआ। परंतु ८-१ गुंडोंको बहुत दुःख भी हुआ। मैंने कोई लाभ व कीर्तिकी लोलुंपतासे इस कृतिका निर्माण नहीं किया। कीर्ति तो अपने आप आजाती है। परंतु कुछ धूर्त कीर्तिकी अपेक्षा करते हुए उसकी प्रतीक्षा करते हैं। कीर्तिकी कामनासे वे कविता करने लगजाते हैं। परंतु वह आगे नहीं बढती है, और न कानको ही शोभती है। फिर कुछ भी न बने तो "जाने दो, इस नवीन कविताको" कहकर प्राचीन शास्त्रोंमें गडबड करते हैं। वे लोग एक महीनेमें जो शास्त्रका अध्ययन करते हैं वे मुझे एक दिनमें अवगत होते हैं। तथापि उन बाह्यविषयोंके प्रतिपादनसे क्या प्रयोजन है, यह समझकर मैं अंतरंगमें मग्न रहा। बाह्य वाक्प्रपंचोंको छोडकर मैं रहता था। परंतु खापीकर मस्त भट्टारकोंके समान वे अनेक भारोंसे युक्त होनेपर भी भवसेन गुरुके समान बोलते थे।

शरीरमें स्थित आत्माको नग्नकर उसका मैं निरीक्षण करता था। परंतु वे शरीरको नग्नकर आत्माको अंधकारमें रखते हुए दुनियामें फिर

रहे थे । किसी भी प्रयत्नसे भी वे मेरा कुछ नहीं बिगाड सके और उल्टा उनकी ही निंदा लोकमें होने लगी तो उस दुःखसे वे अज्ञानी मेरे काव्यकी निंदा करने लगे । सूर्यको तिरस्कृत करनेवाले उल्लूके समान तर्क पुराण आदिके बहाने मेरी कृतिकी निंदा करने लगे । मैं तो उनकी परवाह न कर मौनसे ही रहा, परन्तु विद्वान् व राजावोंने ही उनको दबाया । ध्यानमें जब चित्त नहीं लगा तो मेरे आत्मलीलाकी वृद्धिके लिए मैंने काव्यकी रचना की, किसीके साथ ईर्षा व स्पर्धाके वशीभूत होकर ग्रंथका निर्माण नहीं किया । इसलिए मौनसे ही रहा ।

हंसनाथकी शक्तिसे विरचित काव्यको लोकादर मिलनेमें संशय क्या है ! मेरी सूचनाके पहिले ही विद्वान्, मुनिगण व राजाधिराज इसे चाहकर उठाकर ले गये ।

कवि-परिचय

मुझे लोकमें क्षत्रिय वंशज, कर्नाटक क्षेत्रका अण्ण कहते हैं, परन्तु यह सब मेरे विशेषण नहीं है, इनको मैं अपने शरीरका विशेषण समझता हूं । मैं सिद्धपदके प्रति मुग्ध हूं, इसलिए रत्नाकरसिद्ध कहनेमें कभी २ मुझे प्रसन्नता होती है ।

शुद्धनिश्चय विचारसे निरंजनसिद्ध ही मैं कहलाता हूं । जन्म, मरण रोग शोकादिकसे युक्त माता-पिताके परिचयसे अपना परिचय लोग कराते हैं । परंतु मैं तो श्रीमंदरस्वामीको अपने पिता कहनेमें आनंद मानता हूं । मेरे जीवनमें एक रहस्य है, सिद्धांतके तत्वको समझकर, लोकमें विशेष गलबला न करते हुए उसका मैं आचरण करता हूं । चारित्रमें प्रतिपादित रहस्य कोई विशेष नहीं है । आत्मरहस्य और भी अधिक है । उसे कोई सीमा नहीं है ।

मेरे दीक्षा गुरु चारुकीर्ति योगी हैं, मोक्षाग्रगुरु हंसनाथ है । यह सद्गुणभव्य रत्नाकरसिद्ध व्यवहार निश्चयमें अतिदक्ष है । देशिगणाग्रणि चारुकीर्त्याचार्यने जब दीक्षा दी तो श्री गुरुहंसनाथने उसमें प्रकाश देकर मेरी रक्षा की ।